जैन-बौद्ध तत्वज्ञान।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

जैन बौद्ध तत्वज्ञान।

सम्पादक व प्रकाशकः—
जैनधर्मभूषण धर्मदिवाकर ब्र० सीतलप्रसाद,
व्यवस्थापक, आत्मधर्म संमेलन, चन्दावाड़ी-सूरत।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६० [प्रति १०००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस-सूरतमें मूलचंद किसनदास कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य-बारह आना।

प्रकाशकका वक्तव्य।

इस ग्रंथके प्रकाश करनेका हेतु यह है कि जगतकी हिन्दी भाषा ज्ञाता विद्वन्मंडलीको इस बातका निश्चय कराया जावे कि प्राचीन जैनधर्म और बौद्ध धर्ममें किस तरहसे साम्यता है। उभय दर्शनोंके माननीय ग्रन्थोंके आधारसे दोनोंकी समता प्रदर्शित करनेका काम ग्रंथोंके वाक्योंको दे कर किया गया है।

यह भी उचित समझा गया कि इस ग्रन्थको अधिकतर भेटमें देकर प्रचार किया जावे जिससे शीघ्र ही इस तत्वका प्रकाश हो जावे कि जैन और बौद्ध तत्वज्ञान एक है। सागरमें जब मैंने सन् १९३२ में वर्षाकाल व्यतीत किया था तब ही यह ग्रंथ वहां लिखा गया था।

वहां दिहली निवासी धर्मात्मा लाला मिट्ठनलाल लालचंदजी अग्रवाल दिगम्बर जैनका फर्म है। यह भारतके प्रसिद्ध बीड़ीके व्यापारी हैं। आपसे इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिये कहा गया। आपने सहर्ष ग्रन्थके मुद्रणका व प्रकाश होनेका खर्च देना स्वीकार किया। इस उदारताके लिये वे धन्यवादके पात्र हैं। जो कोई इस ग्रंथको खरीदना चाहें उनके लिये इस पुस्तकका दाम बहुत अल्प सिर्फ बारह आना रक्खा गया है। पुस्तक विक्रीसे जो दाम आवेगा वह पुस्तक दान खाते ही जमा किया जायगा जिससे और भी पुस्तकोंका दान किया जा सके। यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है, हरएक तत्वखोजीको पढ़कर लाभ उठाना चाहिये।

अगास
(आनन्द)
२३-९-१९३४

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद, व्यवस्थापक
आत्मधर्म सम्मेलन, चंदावाड़ी-सूरत।

संक्षिप्त परिचय–

लाला रामजीदासजी-देहली।

इस पुस्तकको अपने ज्ञान दानसे प्रकाश कराने वाले वयोवृद्ध लाला रामजीदासजी जैनी हैं। जिनकी आयु ७७ वर्षकी है। आपका चित्र इस पुस्तकके साथ है। शहर दिहली सदर बाजारमें लाला रामजीदास एंड कम्पनीका प्रसिद्ध फर्म है। आपको जैन धर्मसे व उद्योग व व्यापारसे बहुत प्रेम है। आपने अपने गाढ़ परिश्रमसे स्वदेशी उद्योगकी आशातीत उन्नति करके यह दिखला दिया है कि जैन समाज पश्चिमीय व्यापारियोंसे किसी तरह पीछे नहीं है।

सन् १९२१ दिसम्बरमें जब देहलीमें इन्डियन नेशनल कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन हुआ था उस समय लाला साहबके दिलमें स्वदेश प्रेम ऐसा जागृत हुआ कि आपने सोचा कि कोई ऐसी स्वदेशी चीज तय्यार की जावे जिससे विदेशमें भारतका पैसा जाना बन्द हो और भारतीय भाई व बहिनोंको आजीविकाका साधन मिले।

वर्तमान जगतकी वायुके अनुसार भारतमें भी सिगरेट पीनेका बहुत रिवाज़ होगया था। विदेशोंसे लाखों रुपयोंकी सिगरेट भारतमें आती और भारतका पैसा विदेशमें जाता था व भारतीय कंगाल होते थे। तब आपने यही निश्चय किया कि स्वदेशी बीड़ी तैयार कराके विक्रय की जावे। पहले आपने कुछ मध्यप्रांतके बीड़ी बनानेवालोंकी एजंसी ली और बीड़ीका प्रचार पंजाब व युक्तप्रांतमें करना प्रारम्भ किया। परन्तु कतिपय भारतीयोंके भीतर कुछ ऐसी कमजोरी है कि पहले तो वे माल अच्छा देते हैं फिर खराब देने लगते हैं, इस दोषके कारण इनको व्यापारमें सफलता नहीं हुई। तब आपने विचार किया

कि स्वयं कारखाने खोलकर ठीक माल तैयार करना चाहिये और सचाईके साथ विक्रय करना चाहिये तब ही सफलता होगी। सत्यसे ही विश्वास जमता है और विश्वाससे ही व्यापार चमकता है।

तब प्रवीण लाला रामजीदासने अपने उत्साही सुपुत्र मिट्ठनलालजी और लालचंदजीको मध्यप्रांतमें भेजा कि वे वहां कारखाने खोलकर अपनी देखभालमें अच्छा माल तैयार करावें। धर्मात्मा और उद्योगी भाइयोंने पिताकी आज्ञानुसार कारखाने खोले और अपनी बीड़ीका नाम पानका इक्का रखा। इस नामकी बीडीको पबलिकने बहुत ही पसन्द किया और इसका प्रचार इतना बढ़ा कि इस फर्मकी तरफसे आजकल सागर, दमोह, कटनी, खुरई, गढ़ाकोटा आदिमें बहुतसे कारखाने खुले हुये हैं जिनमें हजारों गरीब भाई बहन बीडी बनाकर अपना उदर पोषण करते हैं। सचाई व सफाईसे व्यापार करनेके कारण इनको व्यापारमें बहुत लाभ हुआ। धर्म प्रेम होनेके कारण उन्होंने अपने धनको उपयोगी ज्ञान दान आदिमें खरचना अपना कर्तव्य समझा। आप जैन समाजकी तन, मन, धनसे अच्छी सेवा करते हैं, देहलीका हीरालाल जैन हाईस्कूल व अन्य संस्थाओंको आवश्यक अच्छी मद्‌द देते हैं तथा सागर व दमोहकी जैन संस्थाओंको भी अच्छी सहायता देते रहते हैं। आपके उद्योगसे लाखों रुपया विदेश जाना बंद हो गया व भारतीयोंको लाभ हुआ। आपका परिचय बताता है कि जैन व्यापारियोंको स्वदेशी मालकी उन्नतिमें उद्योगशील होना चाहिये। आपने जो उचित दान इस पुस्तक प्रकाशनके लिये दिया है उसके लिये हम कृतज्ञ हैं।

—प्रकाशक।



श्रीमान् लाला रामजीदासजी–देहली ।

[इस ग्रंथके दानी महोदय]

Jain Vijaya Press, Surat.

शुद्धाशुद्धि।

पृष्ठ	लाइन	अशुद्धि	शुद्धि
भू० ९	१२	४५ वर्ष	४२ वर्ष
११	१०	समण	समण कहते हैं
,,	१५	इन्द नियस	डालानियस
१२	२३	मोगोत	मोगोल
१३	अंत	Litle	Titlo
१५	१५	Hado	Had
१७	६	Riso	Rise
,,	१७	सभ्यता	समता
,,	२०	१२ वें	११ वें
२१	१३	Sousora Nervel	Sansara Narad
४	१	मयमेख	भयभैरव
,,	१४	विपित्तं	पि चित्तं
६	११	भावकी	कायकी
,,	१५	भग्गो	मग्गो
७	१	व्रत्तं	वुत्तं
८	२	तीन....	ति न मण्णति
,,	४	पहिनिस्सगा	पटिनिस्मग्गा
,,	५	वद्दामीति	वदामीति
९	११	बन्धप्रसंगेन	बन्धप्रसंगो न
११	३	घ्राव	घाव
१३	२	अव्यायज्ञ	अव्यापज्ञ
१५	२	Incomporable	Incomparable
१६	१५	भागे मग्न है	जो निमग्न है

१८	११	श्रूमि–मि भिच्चु	भूमि भिच्चु
१९	४	Valition	Volition
,,	११	सभ्यता	समता
२१	१०	Leaving	Living
२५	८	अह	अट्ट
२९	१	त्यक्तं	व्यक्तं
३२	१९	मनकी	न मनकी
३३	४	अपनेको	अपनेसे
३५	१४	समुदथ	समुदय
३६	अंत	येय मगवा	येन मगवा
३७	१०	युट्ठो	पुट्ठो
४०	१५	धम्मदीया	धम्मादीपा
४१	१	आदिय	अदिय
४३	१४	संखाए	संखारा
४६	२०	सलापतनवग्गे	सलायतनवग्गो
४७	२०	अरणतयो अतानि	अण्णतमोअत्त नि
४९	१	Than	Then
,,	२	quich	quick
,,	३	wn away	blown away
५२	३	As	us
५५	२०	life	left
५६	अंत	He	He exists or
६१	१७	ज्ञान	ज्ञानघन
६४	४	बाह्य	ब्रह्म
७	१८	सुत्यक्त	सुव्यक्त

७२	२	अप्प	अप्पा
८०	२१	संकप्नलायो	संकप्पलापो
,,	,,	अमिज्झा	अभिज्झा
,,	,,	आपोदा	व्यापादो
८३	१३	आयं	अयं
,,	१९	निक्खेयो	निक्खेपो
८९	१९	कोत्थ	फोत्थ
८६	६	संकस्सजा	संफस्सजा
,,	८	कम्स	फस्स
९०	१९	भानानुसयं	मानानुसयं
,,	,,	सम्मूहनिला	समूहनि त्वा
९९	४	निधि	त्रिधि
१०४	१३	So	Which is so great
१०९	२१	होता है	माल्हम होता है
११९	१७	जप	जय
११६	२२	यहीयंति	पहीयंति
,,	२४	असवा दस्सता	आसवा दस्सना
११९	१६	उप्पज्जे खुं	उप्पज्जेप्पुं
१२०	१२	संकस्सानं	संफस्सानं
१३३	१३	सुदु सहावं	सुद्धु सहावं
१३४	१	वुज्मि	वुज्झि
१३६	१२	मोहरूपी	मोक्षरूपी
१४२	१६	ब्रह्मचर्या	बुद्धचर्य्या
,,	२३	आति है	आर्ति है
१४४	४	जलती	चलती

१४७	२०	Though	Through
१५५	१९	पूर्व	सूर्य
१६८	१४	श्लोकर्न आर्त्त मनता	श्लोकैर्मात्तमनता
१६९	८	उठना	न उठना
१७०	६	परस्प	परस्य
,,	२१	महायोग	महाभोग
१७२	१०	अहिंसासे	हिंसासे
१७३	३	करुसा	फरुसा
,,	४	सम्फछ्यलापा	सम्फफ्फलापा
१७७	१०	अंतंग	अंतरंग
,,	१८	निर्जरा	निर्वाण
१८०	२२	Inentifying	Identifying
१८२	६	अमि धर्म	अभिधर्म
१८५	१९	साद्बुद्ध	स्याद्बुद्ध
१८६	१७	स्यानपि	न्यानपि
१८७	११	मांसभक्ष्यं	मांसमभक्ष्यं
१९२	११	माँषादिव	माँषद्भि
,,	१७	लंकावार	लंकावतार
१९५	९	स्नावय	सार
२०२	१७	एक मुक्त	एक भुक्त
२१४	११	लीओ	लोओ
,,	११	मुडो	फुडो
,,	१७	लाल	ताल
२१७	१०	Crewling blings	Crawling beings
२१८	१९	ज्ञानभ्यास	ज्ञानाभ्यास
२२०	७	वचनों	बन्धनों

सम्मति-पं० अजितप्रसादजी वकील एम. ए. एल एल. बी.
भूतपूर्व जज हाईकोर्ट बीकानेर।

जैन-बौद्ध तत्वज्ञान।

इस पुस्तकको मैंने उस समय भी देखा था जब श्री० जैनधर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने उसे मेरे पास छपनेके लिये छोड़ दी थी; और अब फिर छपी हुई यह पुस्तक मैंने आद्योपांत पढ़ी।

इसके पढनेसे यह विचार जो चिरकालसे मेरे मनमें स्थान पारहा था दृढ़ होगया। ब्रह्मचारीजीने बीसियों बौद्ध और जैन ग्रन्थोंके वाक्योंको उद्धृत करके, और उनपर तुलनात्मक दृष्टिसे सूक्ष्म विचार करके यह सिद्ध कर दिया है कि इन दोनों धर्मोंमें ऐसा अन्तर तथा विरोध नहीं है जैसा सामान्यतया समझा जाता है।

एक समय था जब कि विद्वानोंने भिन्नर धर्मोंमें पारस्परिक विरोधको बढानेका प्रयत्न किया, धार्मिक ग्रन्थोंको नष्ट किया, धार्मिक तत्वोंको अर्थका अनर्थ करके दिखलाया, जैनोंको नास्तिक, बौद्धोंको क्षणिक, निर्वाणको अभाव कह दिया, खेद है कि वह भावना आजकल भी कुछ संकुचित हृदय विद्वानोंमें चली आरही है, जो सांप्रदायिक विरोधको बढाना ही अपना धर्म समझते हैं। किंतु समयमें शुभ परिवर्तन होगया है, और अधिकतर विद्वानोंका विचार धर्मसमन्वयकी ओर है।

ब्रह्मचारीजी सीलोनके विद्यालंकार कालिज केलेनियांमें एक मास ठहरे। रंगूनमें बौद्ध मंदिरोंका निरीक्षण किया। वहां और अन्य स्थानोंमें बौद्ध विद्वानोंसे तात्त्विक चर्चा की। पाली भाषाकी बौद्ध पुस्तकों और उनके अंग्रेजी अनुवादोंको पढ़ा, और इस प्रकार खोज, अध्ययन और अनुभव करके उन्होंने यह पुस्तक तय्यार की।

इस पुस्तकमें ब्रह्मचारीजीने यह सिद्ध कर दिया है कि गौतम

बुद्धने २९ सालकी उमरमें घर छोड़ा। पहले दिगम्बर जैन मुनिका चारित्र ग्रहण किया और दुर्धर तपश्चरण किया, फिर उन्होंने ऐसे चारित्रको अनावश्यक या दुस्साध्य समझकर वस्त्र सहित साधुचर्या चलाई। जैसी कि श्वेतांबर जैन साधुओंकी प्रवृत्ति है। तात्विक दृष्टिसे विचार करनेपर यह झलकता है कि जीव तत्वके ध्रुव रूप अस्तित्वमें और शाश्वत मोक्षकी प्राप्तिमें बौद्ध और जैनागममें विरोध नहीं है। बौद्ध साहित्यमें निर्वाणको "नाश" वा "अभाव" रूप नहीं कहा है, बल्कि ज्ञानमय, नित्य, अमर, तृष्णा रहित, विशुद्ध, केवल, अमूर्तीक, जन्मरहित जीव अवस्था रूप कहा है। बौद्ध ग्रंथोंमें यह तो स्पष्ट देखनेमें नहीं आया कि मुक्तात्मा पुरुषाकार ध्यानमय सिद्धक्षेत्रमें लोकके शिखरपर अनंतकालके लिये विराजित है। किन्तु तात्विक सिद्धांत तो आत्माका स्वरूप है न कि उसका आकार वा स्थिति स्थान। मोक्ष मार्ग और कर्म विपाक, कर्म सिद्धांत अहिंसा धर्मके विवेचनमें तात्विक अंतर विशेष नहीं है। केवल शाब्दिक भेद है। बौद्ध वाक्योंमें दिखलाया है कि स्थावर व त्रसकी रक्षा करे, देखकर चले; घासको न रौंदे, रात्रिको भोजन न करे। लंकावतार सूत्रके आधारपर बौद्धोंके यहां मांसाहार मना है तथापि उनमें मांसाहारका प्रचार होरहा है, यह खेदकी बात है। बौद्ध विद्वानोंको विचार करके मांसाहारके प्रचारको बंद करना चाहिये, जिससे बौद्धधर्म पर धब्बा लगता है। और जैन-साहित्यका अध्ययन करके बौद्ध वाक्योंका मन्तव्य समझना चाहिये। पुस्तक समयोपयोगी, लाभदायक, शिक्षाप्रद और विचारोत्पादक है।

अजिताश्रम—लखनऊ }
ता० १४—६—३४ }

अजितप्रसाद।

भूमिका।

पाली भाषाका कुछ बौद्ध साहित्य देखनेसे तथा पाली भाषाके बौद्ध ग्रंथोंके इंग्रेजीमें उल्था पढ़नेसे व स्वतंत्र लिखित इंग्रेजीमें बौद्ध पुस्तकोंको देखनेसे मुझे यह प्रतीत हुआ कि प्राचीन बौद्ध मतके सिद्धांत जैन सिद्धांतसे बहुत मिल रहे हैं। बौद्ध विद्वान साधुओंसे वार्तालाप करनेके निमित्त मैं सीलोन गया और वहां विद्यालंकार कालेज केलेनि-यामें एक मास ता० १४ मईसे ता० १३ जून सन १९३२ तक ठहरा तथा कई स्थानोंमें घूमकर वहांका अनुभव प्राप्त किया। बहुतसा विषय श्रीयुत बौद्ध साधु आनन्द कौसल्यायन और बुद्धचर्याके कर्ता श्रीयुत राहुल सांकृत्यायनसे मिलकर प्राप्त किया। मेरे मनमें उत्कंठा हुई कि मैं जैन तत्वज्ञान व बौद्धतत्वज्ञानको प्रत्येकके ग्रंथोंके वाक्य देकर मुकाबला करके दिखलाऊं। जिससे पाठकोंको दोनोंकी साम्यताका पता चले। जहां-तक मैंने बौद्धोंके निर्वाण और निर्वाणके मार्गका अनुभव करके विचार किया है तो उसका बिलकुल मिलान जैनियोंके निर्वाण और निर्वाणके मार्गसे होजाता है। इस पुस्तकको भले प्रकार पढ़नेसे यह बात पाठकोंको ज्ञात होजायगी। पाठक देखेंगे कि गौतमबुद्धने गृह त्याग करनेपर कुछ कालतक दिगम्बर जैन मुनिका बाहरी चारित्र पाला था, फिर अपना मध्यम मार्ग प्रगट किया। सवस्त्र साधुका मार्ग चलाया—सिद्धांत एक ही रक्खा। बौद्धका जो कुछ प्राचीन साहित्य प्रथम शताब्दीका लिखा पाली भाषाका मिलता है, उसमें चारित्र सम्बन्धी वर्णन विशेष है जिन बातोंमें अनुमान प्रमाणकी आवश्यक्ता होती है व न्यायशास्त्रकी शरण लेनी पड़ती है, उन बातोंको गौतम बुद्धने पूछनेवालोंको व्या-ख्यान करनेसे निषेध कर दिया जैसे आत्मा क्या है, निर्वाण क्या है,

मरणके पीछे क्या होता है। इन बातोंका वर्णन दूसरे ढंगसे किया है जिससे किसीसे वादविवाद तो हो नहीं और समझनेवाले स्वयं समझ जावें और निर्वाणके लिये उद्योग कर सकें। हमें तो ऐसा अनुमान होता है कि जैसे जैनोंमें एक सिद्धांत मानते हुए भी दिगम्बर व श्वेताम्बर दो भेद पड़ गए हैं, उसी तरह श्री महावीर स्वामीके समयमें ही वस्त्र सहित साधुचर्या स्थापित करनेसे बौद्ध संघ जैन संघसे पृथक् होगया। और जैसा पाली साहित्यसे प्रगट है, गौतमबुद्ध व महावीरस्वामीमें परस्पर अनमेल दिखलानेवाले बहुतसे सूत्र हैं परन्तु इन सूत्रोंमें जैसा अनमेल दिखाया गया है वह जैन साहित्यको देखनेसे अनमेल नहीं ठहरता है किंतु मेल होजाता है। हम नीचे उन सूत्रोंके कुछ नाम देते हैं जिनमें श्री भगवान महावीरका कथन निगंथ नात्तपुत्तके नामसे कहा गया है। प्रथम शताब्दीमें जब बौद्ध साहित्य लिखा गया तब जैन और बौद्धमें कैसा परस्पर ईर्षा भाव या द्वेष था इसका यह नमूना है—

बुद्धचर्यामेंसे-सूत्रोंके नाम नीचे प्रकार हैं—

(१) पृ० ९१-(जटिल) सुत्त (सं० नि० ३-१-१) राजा प्रसेनजित कौशल भगवानसे बोले-" हे गौतम! वह जो श्रमण ब्राह्मण संघके अधिपति, गणाधिपति, गणके आचार्य, ज्ञाता, यशस्वी, तीर्थङ्कर बहुत जनोंद्वारा साधु-सम्मत हैं जैसे निगंठनाटपुत्त (निर्ग्रंथ ज्ञातपुत्र)।

(२) पृ० ११०-असिबंधक पुत्त-सुत्त-(अं० नि० अ० क० ३-४-५) तथा (सं० नि० ४०-१-९)

एक समय कोसलमें चारिका करते हुए बड़े भारी भिक्षुसंघके साथ भगवान जहां नालिन्दा है वहां पहुंचे....उस समय बड़ी भारी निगंठो (जैन साधुओं)की परिषद्के साथ निगंठ नाटपुत्त (महावीर) नालंदा हीमें वास करते थे।

(३) पृ० १४८ सीहसुत्त (अं० नि० ८, १, २, २)—

"एक समय भगवान वैशालीमें थे....उस समय निगंठों (जैनों) का श्रावक सिंह सेनापति उस सभामें बैठा था....तब सिंह सेनापति जहां निगंठ नाथपुत्त थे वहां गया।

सिंह ! तुम्हारा कुल दीर्घकालसे निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है। उनके जानेपर पिंड न देना ऐसा मत समझना।

(४) पृ० २२८ चूलदुःख खन्ध सुत्त (म०नि० १: २: ४)

"एक समय मैं राजगृहके गृद्धकूट पर्वतपर विहार करता था उस समय बहुतसे निगंठ (जैन साधु) ऋषिगिरिकी काल शिलापर खड़े रहनेका व्रत ले तीव्र वेदना झेल रहे थे।

निगंठो ! तुम क्यों वेदना झेल रहे हो ? तब उन निगंठोंने कहा—" निगंठ नातपुत्त (जैन तीर्थंकर महावीर) सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आप अखिल ज्ञान दर्शनको जानते हैं। चलते, खड़े, सोते, जागते, सदा निरंतर (उनको) ज्ञान दर्शन उपस्थित रहता है।

(५) पृ० २६९—महासुकुलुदायि-सुत्त-(म० नि० २: ३: ७)

"राजगृहमें वर्षावासके लिये आए हैं। निगंठ नाथ-पुत्त।"

(६) पृ० २८० चूल सुकुलदायि सुत्त—म० नि० २-३-९)

कौन हैं—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निखिलज्ञानसम्पन्न होनेका दावा करते हैं। भंते—निगंठनाथपुत्त।

(७) पृ० ३४१ देवदहसुत्त (म० नि० ३: १: १)

उन निगंठोंने मुझे कहा " निगंठनातपुत्त सर्वज्ञ सर्वदर्शी अखिल ज्ञानदर्शनको जानते हैं।"

(८) पृ० ४४९—उपालिसुत्त—(म० नि० २: २: ६)

उस समय निगंठ नातपुत्त निगंठों (जैन साधुओं) की बड़ी परिषद्के साथ नालंदामें विहार करते थे।

उपालीसे भगवान बुद्ध कहते हैं–"दीर्घकालसे तुम्हारा कुल निगंठोंके लिये प्याउकी तरह रहा है। उनके जानेपर पिंड नहीं देना चाहिये यह मत समझना।" "भगवान तो मुझे निगंठोंको भी दान करनेको कहते हैं।" "दीर्घतपस्वी निगंठ जहां **निगंठ नाथपुत्त** थे वहां गया।

(९) पृ० ४५६ **अभयराजकुमारसुत्त** (म० नि० ५: १: ८)
अभयराजकुमार जहां निगंठ नातपुत्त थे वहां गया।

(१०) पृ० ४९९ **सामजलफलसुत्त** (दी० नि० १: १: २)
किसीने कहा–"**निगंथ नात पुत्त**"

(११) पृ० ४८१–**सामगामसुत्त** (ब० नि० ३: १: ४)

(विक्रम पूर्व० ४२८)–एक समय भगवान शाक्यदेशमें सामगाममें विहार करते थे। उस सयय **निगंठनाथ-पुत्त** (जैन तीर्थंकर महावीर) अभी अभी पावासे निर्वाण हुये।

नोट–इस समय गौतमबुद्धकी आयु (५०५जन्मबुद्ध–४२८)=७७ वर्षकी थी, उनकी पूर्ण आयु ८० वर्षकी थी।

(१२) पृ० ५२०–**महापरिनिव्वाणसुत्त** (दी० नि० २:३:१६)
"प्रसिद्ध यशस्वी तीर्थंकर **निगंठ नातपुत्त**"

(१३) **मज्झिमनिकाय चूल सारोपम सुत्त (३०)**
"ये इमे भो गोतम समण ब्राह्मणासंधिनो गणाचरिया ज्ञाता यसस्सिनो तित्थकरा साधुसम्मता बहुजनस्स सेय्यचिदं-**निगंठो नाथपुत्तो**।

(१४) **दीर्घनिकाय तृ० २९ पसादिक सुत्त**—
"एक समयं भगवा सक्केसु विहरति–तेन खोपन समयेन **निगंठो नाथपुत्तो** पावायं अधुना कालकतो होति (श्रीमहावीरका निर्वाण हुआ)।

(१५) **मज्झिमनिकाय** महासच्चिकसुत्त (३६)
सच्चिकनिग्गंथपुत्तो महावनं उपसंकामि।

" निगंथं नाथपुत्तं वादेन " ।

इन उल्लेखोंसे यह भी पता चलता है कि गौतमबुद्धके समयमें निर्ग्रंथ मतके अनुयायी दीर्घकालसे प्रचलित थे तथा महावीर स्वामीको तीर्थंकर व सर्वज्ञ लोक कहते थे। जैसे आजकल जहां दिगम्बर हैं वहां श्वेताम्बर जैन हैं वैसे उस प्राचीनकालमें जैन बौद्धका साथ२ प्रचार था। बुद्धचर्या पृ० ९७७ से प्रगट होता है कि राजा अशोकके पुत्र महेन्द्र सीलोनमें बुद्ध निर्वाणके २३६ वें वर्ष विक्रम पूर्व १९० में गए थे। विदित होता है कि या तो वहां पहलेसे निग्रन्थ मत (जैन मत था) या महेन्द्रके साथ साथ जैन मत प्रचारक भी वहां गए होंगे, क्योंकि बौद्ध ग्रन्थ महावंशसे पता चलता है कि अनुराधापुरमें निर्ग्रंथ साधु थे व निर्ग्रंथ लोग थे। बौद्धानुयायी एक राजाने उनसे रुष्ट हो उनको हटाकर उनके देवस्थानके स्थानपर अपना विहार बनवाया। पालीके वाक्य नीचे प्रकार हैं—

महावंश अध्याय ३३—

वासितो व सदा आसी एकवीसति राजसु ।
तं दिस्वान पलायंतं निगंठो गिरिनामको ॥ २ ॥
पलायति महाकाल सीहलोति भुसं रवि ।
तं सुतान महाराजा सिद्धे मम मनोरथे ॥
विहारं एत्था कारेस्सं इच्चेवं चिंतई तदा ।
पाठिंक दमिलं हत्वा सयं रज्जं अकारई ॥
ततो निगंठारामं तं विद्धं सेत्वा महीपतिः ।
विहार कारई तस्स द्वादस्सपरिवेणिकं ॥

भावार्थ—इकवीसवें राजकुमार सीलोनके अनुराधापुरमें राज्य करते थे। गिरि नामके किसी निर्ग्रंथने भागते हुए देखकर जोरसे कहा कि महाकाल सिंहल भागे जारहे हैं। यह सुनकर महाराजा सिंहलने

ऐसा मनमें विचार कर लिया कि यदि मेरा मनोरथ सिद्ध होगया (मैं जीत गया) तो यहाँ विहार बनवाऊँगा। दाठिकदमिलको मारकर स्वयं राज्य करने लगा तब उसने निग्रंथोंका स्थान विध्वंश करके बारह प्रवीणका विहार बनवाया।

नोट—यह बात सन् ई०से दूसरी शताब्दी पूर्वकी कही जाती है।

सीलोनमें किसी समय जैन थे यह बात ऊपरके कथनसे अवश्य सिद्ध होती है तथा यह भी सिद्ध होता है कि परस्पर प्रेम न था।

इस पुस्तकको पढ़नेसे पाठकोंको विदित होगा कि जिस सिद्धांतका पालीकी पुरानी पुस्तकोंमें कथन है उनका विस्तारसे वर्णन जैन साहित्यमें पाया जाता है। यदि जैन साहित्य पढ़ा जावे तो बौद्ध साहित्यका विशेष महत्व झलक जाता है।

आजकल प्रचलित बौद्धसे प्राचीन बौद्धमें कुछ भिन्नता थी ऐसा आधुनिक विद्वान मानते भी हैं। नीचे उनके कुछ वाक्य हैं—

(1) Sacred book of the East Vol. XI (1881).

Translated by T. W. Rys Davids from Pali, edited by Max Muller.

Intro. *Page 21*—Pali Suttas have preserved for us at least the belief of the earliest Budhists. The Budhists of India—as to what the original doctrines taught by Budhha himself had been.

Page 22—First record we have of the Budhist scriptures being reduced into writing is the well-known passage in Dipa Vansa, which speaks of their being recorded in books in Ceylone towards the beginning of the first century before the commencement of our era. Date of Dipa Vansa may be placed about 4th century A. D.

Budhism of Pali Pitakas is not only a quite different thing from Budhhism as hitherto commonly received, but is ntogonistic to it.

Page 34—No record of his actual words could have been preserved. It is quite evident that the speeches placed in the Teacher's mouth, though formulated in the first person, in direct narrative, are only intended to be summaries and very short summaries of what was said on those occasions.

भावार्थ-पाली सूत्रोंने प्राचीनसे प्राचीन बौद्धोंके विश्वासको बतानेकी अवश्य रक्षा की है। भारतके प्राचीन बौद्धोंकी मूल शिक्षाएं क्या थीं जिनको स्वयं गौतमबुद्धने सिखाया था, इनमें हैं—पहले पहल हम दीपवंशमें यह प्रसिद्ध लेख पाते हैं कि बौद्धोंका साहित्य पुस्तक रूपमें सीलोनके भीतर प्रथम शताब्दी ईसासे पूर्व लिखा गया था। यह दीपवंश चौथी शताब्दीके अनुमानका ग्रन्थ माना जासक्ता है। इन पाली पिटकों (पिटारों) का बौद्धधर्म साधारण प्रचलित बौद्ध धर्मसे मात्र बिल्कुल भिन्न ही नहीं है किन्तु उससे विरुद्ध है।

गौतमबुद्धके खास वाक्योंका कोई लेख सुरक्षित नहीं रक्खा जासका। यह बिलकुल साफ है कि जो भाषण गौतमबुद्धके मुखसे कहलाए गए हैं और प्रथम पुरुषमें मानों वे कह ही रहे हैं ऐसे दिखाए गए हैं वे मात्र बहुत कुछ संक्षेपमें उन बातोंको कहते हैं जो उन अवसरोंपर कही गई थीं—

II. The doctrine of the Buddha by george Grimm.

Preface:—The fixing of the Tipitaka in writing followed only a few decades before beginning of the era under King Veltagamini of Ceylone to which island canon was brought by Mihinda, the son of King Asoka. This definite fixing of Pali canon took place about 400 Years after Budha's death. The present work sets forth the original genuine teaching of the Budha.

भावार्थ—सन ई० से कुछ वर्ष पहले त्रिपिटकका लिखना सीलोनके राजा वत्तगामिनिके नीचे हुआ। इस सीलोनमें ये सिद्धान्त

राजा अशोकके पुत्र महिन्द्र द्वारा लाया गया था। इससे सिद्ध है कि बुद्धके निर्वाणके ४०० वर्ष पीछे पाली सिद्धान्त लिखा गया। इस पुस्तकमें बुद्धकी असली मूल शिक्षाएं हैं।

नोट—इसीसे प्रगट है कि वर्तमानका बौद्ध पुराने बौद्धसे कुछ अंतर जरूर रखता है।

III. The life of the Budha by Edward J. Thomas M. A. (1927).

Intero. *Page 18*—As the authoritstive teaching repre- nted by the dogmatic utterances and discourses of the Founder were not recorded in writing, but were memorised by each school, differences inevitably began to appear.

Pali chronicles of Ceylon are corroborated in their main outlines by the puran'c and Jain traditions, The chronolcgical relations with general history have been determined by Sir William Jones that the Chandragupta of the chronicles and puranas is the sandrocotus of strabs and Justin. The Indian King who about 303 B. C. made a treaty with Selewcus Nacatia and at whose court Myasthenes resided some years as an ambassodar.

Page-204 They all agree in holding that primitive teaching must have been something different from what the earliest scriptures and commentators thought it was.

भावार्थ—क्योंकि बुद्धके प्रमाणिक उपदेश जिनको बुद्धका उपदेश कहा जाता है लिखे नहीं गए थे परन्तु हरएक स्कूल उसे कंठ कर लेता था। इसीसे पीछे अंतर दिखाई पड़ने लगा। सीलोनकी पाली कथाओंका मिलान पौराणिक व जैन कथाओंसे होता है। सर विलियम जोन्सने इतिहासके सम्बंधमें खोज करके कहा कि पुरानोंका चन्द्रगुप्त वही हैं जो श्ट्रेबो और जष्टिनका संद्रोकोटस है। इस महाराजाने सेल्युकस नेकेसियासे संधि करली थी। चन्द्रगुप्तके दरबारमें मेगस्थनीज एलची होकर कई वर्ष रहा।

इस बातमें सब सहमत हैं कि प्राचीन शिक्षा अवश्य उससे कुछ भिन्न है जो प्राचीन ग्रन्थ व उनकी टीकाएं बताती हैं। अब हमें यह देखना है कि जब जैन व बौद्ध सिद्धांत एक है मात्र बाहरी साधु चारित्रका अन्तर है कि निर्ग्रन्थ जैन साधु नग्न रहते थे जब कि बौद्ध साधुओंने वस्त्र स्वीकार किया था तब गौतम बुद्धने घर त्यागनेपर जो दिगम्बर जैन मुनिकी चर्या पाली थी उस समय श्री महावीर-तीर्थङ्करका उपदेश प्रारम्भ हुआ था या नहीं। यदि प्रारम्भ नहीं हुआ था तो यह मानना पड़ेगा कि महावीरस्वामीके उपदेशके पहले जैन धर्मका उपदेश प्रचलित था। बुद्धचर्या पृ० ४८१ सानगाम सुत्त म० नि० ३-१-४ से प्रगट है कि जब गौतम बुद्ध ७७ वर्षके थे तब महावीर स्वामीका निर्वाण ७२ वर्षमें हुआ था। जैन शास्त्रोंमें प्रगट है कि महावीर स्वामीने ४२ वर्षकी आयुतक अपना उपदेश नहीं दिया था। अंतिम ३० वर्ष उपदेश दिया अर्थात् जब गौतमबुद्ध ४७ वर्षके थे तब महावीर स्वामीका उपदेश प्रारम्भ हुआ। गौतमबुद्धने २९ वर्षकी आयुमें घर छोड़ा तथा ६ वर्ष पीछे अर्थात् ३५ वर्षकी आयुमें अपनी शिक्षा प्रारम्भ की। इससे प्रगट होता है कि महावीर स्वामीका उपदेश गौतमबुद्धके उपदेशके १२ वर्ष पीछे प्रारम्भ हुआ। तब २९ और ३५ वर्षके बीचमें जो दिगम्बर जैन मुनियोंका व्यवहार था वह महावीर स्वामीसे पहलेसे ही किसीके द्वारा प्रचलित था। नौमी शताब्दीके जैनाचार्य देवसेनजी दर्शनसारमें लिखते हैं कि गौतमबुद्ध जैनियोंके २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथके सम्प्रदायमें आए हुए श्री पिहिताश्रव मुनिके शिष्य हुए थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ महावीर स्वामीके निर्वाणके २५० वर्ष पूर्व निर्वाण जाचुके थे अर्थात् महावीर स्वामीके जन्मसे १७८ पूर्व निर्वाण प्राप्त कर चुके थे।

"निव्वानं परियेसमानं अजातं अनुत्तरं योगक्खेमं निव्वानं अज्झगमं। अजरं अब्याधि अमतं (अमृतं) अशोकं, असंक्लिट्टं। अधिगतो खोमें अयं धम्मो गंभीरो दुद्दसो दुरनुबोधो संतो पणीतो, अतक्कावचरो, निपुणो, पंडितवेदनीयो।

भावार्थ—जो निर्वाण खोजने योग्य है वह किसीसे उत्पन्न नहीं है। इसलिये अजात है अर्थात् स्वाभाविक है, उससे बढकर कोई नहीं है इससे अनुत्तर है। योग अर्थात् ध्यानद्वारा अनुभवगम्य है इससे योगक्षेम है, जरा रहित है, व्याधि रहित है, मरण रहित है, इससे अमृत है, शोक रहित है, संक्लेश रहित है, मैंने वास्तवमें इस धर्मको जान लिया यह धर्म गंभीर है जिसका देखना व जानना कठिन है, यह शांत है, उत्तम है, तर्कके गोचर नहीं है, निपुण है, तथा पंडितोंके द्वारा अनुभव करने योग्य है।

नोट—ऐसा वर्णन होते हुए निर्वाण अभावरूप नहीं होसक्ता है। यह निर्वाण वास्तवमें शुद्ध आत्माका स्वभाव है जो अजात है, अमर है, अनुभवगम्य है, ध्यानगम्य है, परम श्रेष्ठ है।

❖ ❖ ❖ ❖

(७)

मज्झिमनिकाय महामालुक्यसुत्तंचतुर्थं (६४)

इसका कुछ भाग है " सो यदेव तत्थ होति वेदनागतं संज्ञागतं संखारागतं, विज्ञानागतं ते धम्मे अनिच्चतो दुःखो रोगतो गंडता पल्लतो अघतो आबाधतो परतो वलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटिवायेति, सो तेहि धम्मेहिं चित्तं पटवायेत्वा अमताय धातुया चित्तं उपसंहतिः। एतं संतं एतं पणीतं यदितं सब्ब संखार समथो सब्बुयाधिपटिनिस्सग्गो तराह खयो विरागो निरोधोः निब्बानंति सोतत्थट्ठितो आसवानं खयं पापुणाति।

Page 122—Socrates speaks of the soul as at present confined in the body as in a species of prison. This was the doctrine of the Pythogorus, even in its most striking peculiarities bears such a close resemblance to the Indians as greatly to favour the supposition that it was directly borrowed from it. There was even a tradition that Pythogorus had visited India.

भावार्थ–प्राचीन भारतमें तत्वज्ञान मानवको सुखकारी लाभ देता हुआ जैन सूफी नामके भारतीयोंमें बहुत दीर्घकालसे फैला था। श्रमण जिनको ऐथोंने जर्मन व पारकीरपसने समण एक भिन्न धर्मके साधु हैं जो शायद जैनधर्मके या अन्य किसीके होसकते हैं।

जब सिकन्दर तक्षिलामें गया था तो उसने भारतीय जैन सूफियोंको (जैन साधुओंको) देखा था। उनकी सहनशीलताको उसने मान्य किया था और उनमेंसे एकको लेजानेकी इच्छा प्रगट की थी। इन साधुओंमें जो सबसे वृद्ध थे जिनके साथ दूसरे रहते थे वे इन्दनियस थे। उन्होंने स्वयं जाना स्वीकार न किया और न दूसरोंको जानेकी आज्ञा दी। तब सिकन्दरने उनमेंसे एक कालानस साधुको जानेको राजी कर लिया।

शुकरातने कहा है कि आत्मा वर्तमानमें उसी तरह शरीरमें कैद है जैसे कैदखानेमें। यह पैथोगोरसका सिद्धांत था जिसका तत्वज्ञान अपने आश्चर्यकारी भेदोंके साथ भारतीय तत्वज्ञानसे इतना अधिक मिलता है जिससे यह खयाल किया जाता है कि वह भारतसे लिया गया था। यह भी बात प्रसिद्ध है कि पैथोगोरसने भारतकी मुलाकात ली थी।

Science of comparative religions by Major General J. S. R. Forlong F. R. B. E. F. R. A. S. M. A. I. etc. (1897)

नामकी पुस्तकमें यह दिखलाया है कि जैन और प्राचीन बौद्ध

एक ही मत है तथा यह धर्म भारतमें व भारतके बाहर दीर्घकालसे फैला हुआ था। तथा इसहीका प्रभाव ईसाई धर्म, यहूदी धर्मपर पड़ा है।

Intro. *Page 14*—The selection of these short studies has enabled us to virtually embrace and epitomise all the faiths and religious ideas of the world, as well as, to lay bare the deep-seated taproot from which they sprang, viz, the crude yatism, Jati or ascetism of thoughtful Jatis or Jains, who in man's earliest ages have on all lands separated themselves from the world and dwelt upon pious motives in lonely forests and mountain caves.

भावार्थ-इस कुछ पठन–पाठनसे हमने दुनियांके सर्व विश्वास व विचारोंका विचार किया है तथा वे भाव कहांसे उठे उस जड़को ढूंढ़ा है तो कहना होगा कि वे भाव विचारशील जैन साधुओंसे उठे हैं। ये जैन साधु मानव अति प्राचीन कालमें सर्व पृथ्वीपर रहते थे जो संसार त्यागकर पवित्र उद्देश्यसे एकांत वनों व पर्वतकी गुफाओंमें वास करते थे।

Page-19 It is clear that the Gotam of early Tibetans, Mougals and Chinese must have been a Jain, for the latter say he lived in the 10th and 11th centuries B. C. Tibetans say he was born in 916, became a Budha in 881, preached from his 35th year and died in 831 B. C. which closely corresponds with the saintly **Parsva.**

भावार्थ–यह बात साफ है कि प्राचीन तिब्बतवासी, मोंगोल तथा चीनोंका गौतम अवश्य कोई जैन होना चाहिये क्योंकि चीन कहते हैं कि १० वीं तथा ११ वीं शताब्दी पूर्व था। तिब्बतवाले कहते हैं कि वह ९१६ में जन्मा था, ८८१ में बुद्ध हुआ। ३५ वें वर्षसे धर्मोपदेश दिया व ८३१ वर्ष पूर्व निर्वाण हुआ। यह वर्णन पार्श्वनाथ साधुसे करीब२ मिल जाता है।

Page 2—Through what historical channels did Budhism influence early christianity, we must widen the enquiry by making it embrace Jainism—the undoubtedly prior faith of very many millions through untold milleniums-though one little known in Europe except to the few.

भावार्थ–कितने ऐतिहासिक द्वारोंसे बौद्धधर्मने प्राचीन ईसाई धर्मपर असर डाला इसकी यदि जांच की जावे तो यह पता चलेगा कि इसने जैनधर्मको स्वीकार किया, जो धर्म निश्चयसे अनगिनती सहस्रों वर्षोंसे करोड़ोंका प्राचीन मत रहा है। यद्यपि इस समय यूरुपमें कुछोंके सिवाय इसका ज्ञान नहीं है।

Page 23—So slight seemed to Asoka the difference between Jainism and Budhism that he did not think it necessary to make a public profession of Budhism till about his 12th reignal year (247 B. C.) so that nearly if not all his rock-inscriptions are really those of a Jain sovereign

भावार्थ–जैन और बौद्धके मध्यमें राजा अशोकको इतना कम भेद दिखता था कि उसने सर्व साधारणमें अपना बौद्ध होना अपने राज्यके १२वें वर्ष (२४७ वर्ष पूर्व) कहा था। इसीलिये करीब २ उसके कई शिलालेख वास्तवमें जैन सम्राट्के रूपमें हैं।

Page 28—From Aina-Akbari of Abul Fazl, it is clear that Asoka supported Jainism in Kashmir, when Vicery of Ujjain about 260 B. C., as had his father Bindusara and grandfather Chandragupta throughout Magadh Empire.

Budhism was apparently for about a centure after Gotam's death thought by all who did not trouble themselves with details to be mere a form of Jainism. Amongst beyond these millions, Asoka laboured assidously to propogate his mild and kindly Jainism, especially the sacredness of life, as well as peace charity and universal botherhood. In all his rock-inscriptions he designates himself by favourite Jain litle "Devanam Priya."

भावार्थ—अबुलफजलकी आईने-अकबरीसे यह साफ २ प्रगट है कि अशोकने काश्मीरमें जैनधर्मकी स्थापना की, जब वह उज्जनका प्रबंधक था। २६० वर्ष पूर्व जब उसके पिता बिंदुसार व दादा चन्द्रगुप्तने मगध राज्यभरमें धर्मको फैलाया था। गौतमबुद्धके निर्वाणके १०० वर्ष पीछे बौद्धदर्शनको वे सब लोग, जो सूक्ष्म भेदोंके जाननेका कष्ट नहीं उठाते थे, एक जैनधर्मका ही मात्र रूपक समझते थे। करोड़ों मानवोंके भीतर अशोकने बड़े परिश्रमसे नम्र और दयामय जैनधर्मका विस्तार किया। खासकर जीवकी पवित्रता शांति, दान और जगत मात्रसे भ्रातृभावको फैलाया। अपने सब शिलालेखोंमें उसने अपनेको जैनोंकी देवानांप्रिय उपाधिसे लिखा है—

This then was the theory and practice of the great Jaino—Budhist religion which flourished in India many centuries before and after the teaching of Gotam Sakya Muni... ...It was certainly long prior to Parsva and Mahavira......... Whilst India was certainly the fruitful centre of religion from 7th century P. C., yet Trans—Himalaya, Oxiana, Baktria and Kasp'ana seem to have still earlier developed similar religious views and practices as Indian Jains und Budhist claims and almost historically show, that about a score of their saintly leaders perambulated the Eastern world long prior to 7th Century B. C. We may reasonably believe that Jains Budhism was very anciently preached by them from China to Kaspia. It existed in Oxiana and north of Himalayas 2000 years before Mahavira.

भावार्थ—यह इस महान् जैन बौद्ध धर्मका सिद्धांत तथा आचरण था जो भारतमें गौतम शाक्य मुनिके बहुतसी शताब्दियों पहले व पीछे फैला हुआ था। यह धर्म श्री पार्श्व और महावीरके बहुत पहलेसे था। जब भारत ७वीं शताब्दी पूर्वसे इस धर्मका वास्तवमें फैलता हुआ केन्द्र था। हिमालयके पार, ओक्सियाना, बैक्ट्रिया, कास्पि-

याना। इससे भी बहुत पहलेसे ऐसे ही धार्मिक सिद्धांत व आचरणमें उन्नति कर रहे थे जैसे भारतीय जैन और बौद्धोंके है। लगभग ऐतिहासिक दृष्टिसे यह प्रगट होता है कि सातवीं शताब्दी पूर्वसे बहुत पहलेसे २०से अधिक साधु तीर्थंकरोंने पूर्वीय संसारमें धर्मका प्रचार किया था। हम बहुत उचित रीतिसे विश्वास कर सकते हैं कि जैन बौद्ध धर्म बहुत ही प्राचीन कालसे उनके द्वारा चीनसे कास्पिया तक उपदेशित होता था। यह धर्म ओक्सियाना और हिमालयके उत्तर महावीरस्वामीसे २००० वर्ष पूर्व मौजूद था।

Page 32—In these moves, we see how Baktrian faith passed west and how in 7th and 6th centuries B. C. or earlier, Xalmoxis and Pythogories were preaching and teaching like the Butha—gurus of Jains and Budhists. Strabo says "They were a Thrakian sect who lived without wives—Their brethren the Maesi religiously abstained from eating any thing that hade life. Homer of 7th century B C. or earlier called them most just men...livers on milks...devoid of desire for riches. John baptist, Jesus and their disciples are common examples of Essenick life in Asia. Josephus says the Essenick brethren like the ancient *Durae* neither married, drank wine, nor kept servants, living apart. They offer no sacrifices and teach immortality of the soul, as do Jains.

भावार्थ–इन आंदोलनोंमें हम देखते हैं कि किसतरह बेक्टियाका मत पश्चिममें गया। और किन तरह सन् ई०से सात या छ शताब्दी पूर्व या इससे भी पहले झैलमोक्सिस और पेथोगोरस जैन और बुद्ध गुरुओंके समान शिक्षा लेरहे थे।

स्ट्रेबो कहते हैं–वे थ्रेकियन जातिके थे जो विना स्त्रीके रहते थे। उनके भ्रातृगण मेसी धार्मिक रूपसे उस वस्तुको नहीं खाते थे जिसमें जीव हो। सातवीं शताब्दी पूर्व या उससे पहलेके होमर उनको बहुत

ही न्यायवान मानव कहते हैं। वे दूधपर रहते थे। धनकी कोई इच्छा न थी। जानवैंबष्टि, जीसस जो उनके शिष्य साधु जीवनके साधारण दृष्टांत हैं जो एसियामें गए हैं। जोज़फस कहते हैं कि ये साधु डाईकी तरह न तो शादी करते थे, न मदिरा पीते थे, न नौकर रखते थे, एकांतमें रहते हैं। वे बलि नहीं करते थे व जैनोंके समान आत्माका अमरत्व सिखाते थे।

Page 35 Xalmosis taught more than the Jain doctrine of the immortality of the soul.

Page 36 He thought the Indian doctrines of transmigration etc, and considered no animal should be injured—all having souls like men.

भावार्थ–शैलमोशिस आत्माका अमरत्व जो जैनसिद्धांत है उसको सिखाते थे। वह पुनर्जन्मका भारतीय सिद्धांत बताते हैं और यह ध्यान था कि किसी पशुको कष्ट न दिया जावे, सबमें मानवोंके समान आत्मा हैं।

Page 40—The Savans of Alexander found Jaino—Budhism strongly in the ascendant throughout Baktria, Oxiana, and all the passes to and from Afghanistan and India.

भावार्थ–सिकन्दरके आदमियोंने जैन बौद्ध धर्मको बेक्ट्रिया, ओक्सियाना व अफगानिस्तान और भारतके बीचकी सर्व घाटियोंमें उन्नति रूपमें फैला हुआ पाया था।

Page 46—Aristotle saying (about 330 B. C.) that "Jews of Cale-syria, were Indian philosophers" called in the East Calani and Ikshvaku or Sugar-cane people and only Jews because they lived in India. These gews (evidently Essenes) derived from Indian philosophers wanderful fortitude in life, diet and continence. They were in fact Jain-Budhist, whom the great Greek confounded with syrians.

भावार्थ–अरस्तूने सन् ई०से ३३० वर्ष पूर्व कहा है कि काले-सीरियाके वासी यहूदी भारतीय तत्वज्ञानी थे जिनको पूर्वमें कालनी

और इक्ष्वाकुवंशी कहते थे और वे जुदियामें रहनेसे यहूदी कहलाते हैं। ये यहूदी प्रगट साधु थे जिन्होंने भारतीय तत्वज्ञानियोंसे आश्चर्यकारक जीवनमें धैर्य, भोजन और संयमकी शक्ति पाई थी। वे वास्तवमें जैन—बौद्ध थे, जिनको बड़े यूनानियोंने सीरिया निवासी भूलसे मान लिया था।

Page. 61—202-193 B C. Riso of Chinise Han dynasty before which say compilers of sui dynasty about 600 A. D., Budhism was unknown in China, so that all prior to 200 B. C was Jaino—Budhism.

भावार्थ—२०२ से १९३ पूर्व जब चीनके हन वंशकी उन्नति हुई, इसके पहले ६०० ई० के करीब के सुई वंशके स्थापक कहते हैं कि चीनमें पहले बौद्ध धर्मको कोई जानता न था। सन् ई० से २०० वर्ष पूर्व वहां जैन-बौद्ध फैला हुआ था।

पाठकोंको विदित होगा कि जैन-बौद्ध तत्वज्ञान एकसा ही है। तथा यह सन् ई० से हजारों वर्ष पहले जानी हुई दुनियामें फैला हुआ था। तथा यहूदी व ईसाई मतपर इसीका प्रभाव पड़ा है।

जैन और बौद्धकी सभ्यताके प्रमाण यह भी हैं कि जहां जैनोंके मुख्य स्थान हैं वहां बौद्धोंके हैं व जहां बौद्धोंके हैं वहां जैनोंके हैं। ऐसे भारतमें बहुतसे स्थान हैं। कुछोंके नाम हैं—

(१) **सारनाथ बनारस**—यह जैन तीर्थंकर १२ वें श्रेयांशनाथका जन्मस्थान है, अब भी वहां जैन मंदिर व धर्मशाला स्थापित है। जैन यात्रा करते हैं। ठीक जैन मंदिरके सामने ही बौद्ध स्तूप है व यही वह स्थान है जहां गौतम बुद्धने प्रथम मध्यम मार्गकी शिक्षा दी थी। यहां जो खुदाई हुई है उसमें बौद्ध मूर्तियोंके साथ जैन मूर्ति भी मिली हैं जो वहां स्थापित हैं।

(२) **राजग्रही विहार**—यहां जैनियोंके मंदिर हैं—पांच पर्वत हैं।

यहां बौद्ध लोग भी दूर २ से दर्शन करने आते हैं। प्रायः जैन मंदिरोंमें स्थापित मूर्तियोंकी भी भक्ति करते हैं।

(३) **श्रावस्ती सहेठ महेठ** जि० गोंडा (विलरामपुर राज्यमें) यह जैनियोंके तीसरे तीर्थङ्कर संभवनाथका जन्मकल्याणक है। यहां जैनियोंकी मूर्ति निकली हैं जो लखनऊके मजायबघरमें है। यह बौद्धोंका भी मुख्य स्थान रहा है।

(४) **नासिक** (बम्बई प्रांत)-यहां पांडुलेना गुफाएं हैं जिनमें बौद्धोंके स्थान हैं, वहीं एक गुफामें जैन मूर्तियां विराजित हैं।

(५) **एलोरा** (औरंगाबाद, हैदराबाद दक्षिण) की गुफाएं। यहां प्राचीन बौद्ध और जैन गुफाएं साथ२ हैं। दोनोंकी मूर्तियां विराजित हैं।

(६) **तक्षिला** (रावलपिंडी)-यहां बौद्धोंके स्तूप आदि बहुत हैं परन्तु कुछ मंदिरके चिह्न ऐसे मिले हैं जो जैनके विदित होते हैं।

A guide to Taxila by Sir John Marshall (1921)

Page 17—At **Jandial**, a little to the north of Kachcha Kota are two conspicuous mounds, on one of which is a spacious temple dedicated, there is good reason to believe, to fire-worship; and a little beyond these again, another remains of two smaller Stupas which may have been either Jain or Budhist (probably the former.)

भावार्थ-जंडियाला पर कच्चा कोटके कुछ उत्तर दो प्रसिद्ध टीले हैं उनमेंसे एक बड़ा मंदिर बहुतकके अग्नि पूजाका है। उन्हींके कुछ आगे दो छोटे स्तूपोंके भग्नावशेष हैं जो या तो जैन हों या बौद्ध, बहुत करके जैन होने चाहिये।

Sircap city-P.—*68* Among these buildings is a spacious apsidal temple of Budhist and several small sh-ines belong either to Jain or to Budhist,

भावार्थ–सरकैपनगरके मकानोंमें एक विशाल मंदिर बौद्धका है व कई छोटे मंदिर हैं वे या तो जैनके होंगे या बौद्धके।

P-74 In several houses, is a Stupa shrine occupying in each case a court which opens into the high street. The best preserved of these shrines are to be seen in blocks G. & F. both probably of Jain origin. The reason for regarding these Stupas as of Jain rather than Budhist origin is that they closely resemble certain Jain Stupas depicted in reliefs from Mathura.

भावार्थ–कई घरोंके भीतर स्तूप मंदिर हैं जिनमें अंगन है जिसका द्वारा सड़कपर है। उन मंदिरोंमें दो बहुत सुरक्षित हैं। ये दोनों बहुत करके जैनोंके मालूम होते हैं; क्योंकि ये स्तूप मथुरामें पाए गए जैन स्तूपोंसे मिलते हैं। बौद्धोंकी अपेक्षा इनका जैन होना अधिक संभव है। जितना अधिक प्राचीन जैन साहित्य और बौद्ध साहित्यका अध्ययन किया जायगा उतना अधिक दोनोंके मूल सिद्धांतोंमें साम्यता प्रगट होगी। श्वेताम्बर जैनोंका साहित्य जो प्राकृत भाषामें है उसका अध्ययन हम नहीं कर सके हैं। दिगम्बर जैन साहित्यके अध्ययनसे हमने मुकाबला किया है। यदि कोई श्वेताम्बर जैन साहित्यको भले प्रकार पढ़के मुकाबला करेगा तो और विशेष प्रभाव जैन और बौद्धकी एकताका प्रगट होगा। दुनियांके तत्वखोजी जैन और बौद्धकी एकतापर सूक्ष्मतासे मनन कर सकें इसलिये इस पुस्तकको लिखनेका प्रयास किया गया है।

शक्तिके अनुसार विषयका प्रतिपादन ठीक तौरसे किया गया है। यदि कहीं त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन ठीक करलें व हमें सूचित करें।

सागर सी० पी० }
२४–७–३२ }

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जैन,

चन्दावाड़ी–सूरत।

नाम पुस्तक जिनके आधारसे यह ग्रन्थ लिखा है—

बौद्ध पुस्तकें।

1–Budhist wisdom, the mystery of the self by George Grimm Munich, Germany.

(२) मज्झिमनिकाय भयभैरव सुत्त चतुर्थ।

(३) ,, सति वट्टान सुत्त दसम।

(४) ,, मूल परिपाय सुत्त प्रथम।

(५) ,, अरिय परियेसन सुत्त २६।

(६) ,, महामुल्ंद सुत्तं चतुर्थं ६४।

7–The word of the Budha by Nana Filika Mahathera Dodundwa (Ceylone) late professor Tokio University.

8–The doctrine of the Budha by George Grimm Germany (1926

9–Same sayings of the Budha, according to pali Canon translated by F. L. Woodward M. A. Cantab. Ceylon (1925)

10–Dhammapada translated by F. Maxmuller sacred book of the East Vol. X (1881)

11–Sutta Nipata translated by G. V. Fanshold (1881)

12–Visudha Magga of Budha Ghosh translated by P. Maung Tui.

13–Life of Budha by Edward J. Thomas M. A, D. litt. (1927)

14–Sacred book of the East vol. XLIX by F. Max Muller. Budha Charita by Asvaghosha.

(१५) बुद्धचर्या हिन्दी साधु राहुल सांकृत्यायन (वि. सं. १९८८

(१६) संयुक्तनिकाय अवकतसंयुक्त नं० १०।

(१७) ,, चुंदो (१३)

(१८) मज्झिमनिकाय अलगद्दुपम सुत्त २२।

(१९) संयुक्तनिकाय (४) सलायतन वग्ग।

20-Sacred book of the East vol. XI (1881) Mahapari Nibhan Sutta transl. by T. W. Rys. Davids.

21-Trivataka Sutta and Sutta Nipata by Fanshold (1881)

22-*Sacred book of east vol. III* by T. w. Rys Davids. dialogue of Budha from D. N. P. II (1910)

(२३) मज्झिमनिकाय सम्मादिट्ठिसुत्त नवम।

24-Manuscript remains of Badhist literature in Eastern Turkastana by A. F. Rudolf Hoerule (1916)

(२५) मज्झिमनिकाय सर्वासवसुत्त द्वितीय।

(२६) दिग्घविकाय संगीत सुत्तन्त ३-३३।

27-Sonsora by Bhiksu Nervel Ceylone (1930)

28-Bodhi Satta Ideal by Do.

(२९) मज्झिमनिकाय सल्लेखसुत्त अट्ठम।

(३०) दिग्घनिकाय (३) सिगालोवादसुत्त ३२।

(३१) अंगुत्तरनिकाय ५-१७७।

(३२) सुत्तनिपात धम्मिक सुत्त।

(३३) मज्झिमनिकाय वत्थुपम सुत्त सत्तम।

(३४) लंकावतारसूत्र संस्कृत, प्रकाशक—

Bunyin Nanjni M. A. Otani University Kyoto (Japan)

(३५) मज्झिमनिकाय महासीहनाद सुत्त १२।

नोट—ये सब बौद्ध पुस्तकें नीचे ठिकानेपर मिल सकेंगी।

(१) महाबोधि सोसायटी सारनाथ, बनारस।

(२) ,, ४।९=कालेज स्क्वाइर, कलकत्ता।

3-Imperial library Calcutta.

जैनधर्मकी पुस्तकें।

(१)	समयसार	आचार्य	कुन्दकुन्द	प्रथम शताब्दी पूर्व वि. सं. ४९
(२)	अष्टपाहुड	,,		
(३)	पंचास्तिकाय	,,		
(४)	नियमसार	,,		
(५)	तत्वार्थसूत्र	आचार्य	उमास्वामी	वि. सं. ८१ प्रथम शताब्दी।
(६)	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्य	समंतभद्र	प्रथम शताब्दी।
(७)	सर्वार्थसिद्धि	,,	पूज्यपाद	चतुर्थ शताब्दी।
(८)	समाधिशतक	,,	,,	,,
(९)	पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय	,,	अमृतचंद	१० शताब्दी।
(१०)	तत्वार्थसार	,,	,,	,,
(११)	समयसार कलश	,,	,,	,,
(१२)	श्रावकाचार	,,	अमितिगति	,,
(१३)	एकत्व भावना	,,	पद्मनंदि	,,
(१४)	सिद्ध स्तुति	,,	,,	,,
(१५)	एकत्व सप्तति	,,	,,	,,
(१६)	आत्मस्वरूप			
(१७)	सारसमुच्चय	,,	कुलभद्र	
(१८)	तत्वानुशासन	मुनि	नागसेन	
(१९)	इष्टोपदेश	आचार्य	पूज्यपाद	चौथी शताब्दी।
(२०)	आत्मानुशासन	,,	गुणभद्र	नौमी शताब्दी।
(२१)	लघु सामायिक पाठ	,,	अमितिगति	१० शताब्दी।
(२२)	निश्चय पंचाशत	,,	पद्मनंदि	,,
(२३)	योगसार	,,	योगेन्द्र	
(२४)	परमात्मा प्रकाश	,,	,,	

(२५) तत्वसार	आचार्य	देवसेन	नौमी शताब्दी।
(२६) द्रव्यसंग्रह		नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती	,,
(२७) वैराग्यमाला		चन्द्रकृत	१६ शताब्दी।
(२८) बृहत् सामायिक पाठ	आचार्य	अमितिगति	१० शताब्दी।
(२९) सद्बोध चन्द्रोदय	,,	पद्मनंदि	,,
(३०) स्वयंभूस्तोत्र	,,	समन्तभद्र	प्रथम शताब्दी।
(३१) ज्ञानलोचन स्तोत्र	,,	वादिराज	
(३२) सुभाषित रत्नसंदोह	,,	अमितिगति	१० शताब्दी।
(३३) गोम्मटसार	,,	नेमिचंद सिद्धांत.	१० शताब्दी।
(३४) मूलाचार	,,	वट्टकेर	
(३५) ज्ञानार्णव	,,	शुभचन्द्र	११ शताब्दी।

ये पुस्तकें नीचे लिखे ठिकानेसे मिलेगी—

(१) दिगम्बर जैन पुस्तकालय, कापडिया भवन–सूरत।

नोट–नं० १३, १४, १५, २२, २९ पद्मनंदि पंचविंशतिकामें गर्भित हैं।

नं० १६, १७, २३, २८, ३१ संस्कृत मूल सिद्धांतसारादि संग्रह माणिकचंद ग्रंथमाला नं० २१ में गर्भित है।

नं० १८, २१, २५, २७ मूल संस्कृत तत्वानुशासनादि संग्रह माणिकचन्द ग्रंथमाला नं० १३ में गर्भित हैं।

नं० १, ३, ४, ५, ६, ९, १९, २०, २१, २४, २६, ३३ का इंग्रेजीमें उलथा होगया है। वे नीचे ठिकानेसे मिलेंगी—

(१) जैन पब्लिशिंग हाऊस, अजिताश्रम–लखनऊ।

(२) परिषद् पब्लिशिंग हाऊस–बिजनौर (यू० पी०)

(३) जैन गजट आफिस, मल्हीपुर (सहारनपुर)

जैन-बौद्ध तत्वज्ञान।

प्रथम अध्याय।

निर्वाण या मोक्ष।

निर्वाणका अर्थ बुझ जाना है। मोक्षका अर्थ छूट जाना है। संसार अवस्थाका बुझ जाना निर्वाण है। तथा उसका छूट जाना मोक्ष है। दोनों ही शब्दोंका एक ही अर्थ है। ऐसा वर्तमानमें प्रसिद्ध है कि बौद्ध मत क्षणिकवाद है, आत्माको या निर्वाणको नित्य नहीं मानता है, इसलिये इस भावको लेते हुए बौद्धोंमें निर्वाणके अर्थ सर्वथा नाश व अभावके होजाते हैं। परन्तु बौद्ध पाली पुस्तकोंसे यह अर्थ नहीं बैठता है। बौद्धोंका निर्वाण अभावरूप नहीं है किन्तु सद्भाव रूप है ऐसा झलकता है। सीलोनमें विद्योदय कालेज कोलम्बो और विद्यालंकार कालेज केलनियाके विद्वान बौद्ध साधुओंसे, जो कालेजोंके अधिष्ठाता हैं व श्रीयुत बौद्ध साधु नारद मैत्रेयसे, जो वज्राराम बम्बलपिटिया (सीलोन) के विद्वान इंग्लिश ज्ञाता देशना दाता हैं इनसे व अन्य बौद्ध साधुओंसे इस सम्बन्धमें चर्चा करते हुए यही तात्पर्य निकला कि निर्वाण न शून्य है न अभाव है किन्तु अवक्तव्य है। जो विशेषण पाली पुस्तकोंमें हैं उन्हींको वे सामने रख देते हैं। उनकी विशेष

व्याख्याको स्पर्श न करते हुए यह शून्य नहीं है ऐसा ही वे जोरसे कहते हैं व मानते हैं। हम यहां बौद्ध पुस्तकोंमें निर्वाणके लिये जो २ कथन हमें मिला है उसको पाठकोंके ज्ञान हेतु प्रगट करते हैं। जिससे यह बात स्वयं समझमें आजायगी कि बौद्धोंका निर्वाण अभाव या सर्वथा नाश (Annihilation) नहीं है।

❖ ❖ ❖ ❖

(१)

हिन्दू आर्गन जाफ्ना (सीलोन)।

Hindu Organ Jaffna (Ceylone)—

पत्र ता० १९ मई १९३२ में श्रीयुत बौद्ध साधु बी० आनन्द मैत्रेय वेलनुगोड़ा (सीलोन) ने इंग्रेजीमें एक लेख दिया है, जिसका कुछ अंश यह है—

Nirvana is not Nothingness.

As regards those things which do not tend to Freedom from sorrow, the Budha was silent. This is because his only aim was to lead the suffering world to real happiness. Nirvana is holiness. Though it is neither this nor that, Nirvana is not nothingness, yet it is a third possibility.

भावार्थ—निर्वाण अभावरूप नहीं है। जो विषय ऐसे हैं जिनसे दुःखकी निवृत्ति नहीं होती है उनके सम्बन्धमें गौतमबुद्ध मौन रहे। इसका कारण यही था कि उनका मात्र यही उद्देश्य था कि दुःख माननेवाली जनता असली सुखको प्राप्त कर लेवे। निर्वाण पवित्रता है। यद्यपि निर्वाण यह या वह नहीं है, तथापि अभावरूप नहीं है, उसमें तीसरी ही संभावना है।

❖ ❖ ❖ ❖

(२)

Budhist wisdom, the mystery of the self—

By George Grimm (Munich, Germany) akademicstrasse 19/II)—

नामक पुस्तकमें निर्वाणके सम्बंधमें कुछ वाक्य हैं:

P. 86–It is characteristic of modern materialism to have chosen the first alternative, that of absolute annihilation despite the Budha's repeated assurances that he does not teach annihilation, but on the contrary, shows a way to the imperisbable, the Deathless.

Page 57–The Budha further explains and teaches that extinction applies only to the three " flames " of lust, hate and delusion (the three kinds of ' thirst ' for sensation) and for this reason he defines Nibhanam the goal of sainthood, as *Tanha-Nibbanam*–literally, the extinction of thirst. " The holy life with the sublime one is lived for the extinction of craving ".

भावार्थ–वर्तमान जड़वादने निर्वाणके अर्थ बिलकुल नाश समझ लिये हैं। यद्यपि बुद्धने वारवार इस वातका विश्वास दिलाया है कि वह अभावके लिये शिक्षा नहीं देता है किन्तु इसके विरुद्ध मृत्युरहित अविनाशी अवस्था पानेका मार्ग बताता है—

बुद्धने यही समझाया तथा सिखाया है कि राग, द्वेष, मोह (इंद्रियसुखकी तृष्णाके तीन भेद) मई तीन अग्नियोंका बुझाना निर्वाण है। इसीलिये साधु धर्मका उद्देश्य जो निर्वाण बताया है वह तृष्णाका निर्वाण है। तृष्णाके नाशसे उन्नतम दशाके साथ पवित्र जीवन शेष रह जाता है।

(३)

मज्झिमनिकाय भयभेरवसुत्त चतुर्थ—

इस सूत्रमें गौतमबुद्धने अपनी उन्नतिकी दशा बताई है, जिससे बोध होता है कि निर्वाण अभावरूप नहीं है किन्तु परमानंदरूप है। कुछ वाक्य हैं—

पाली भाषा।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनंगणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये थिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खय णाणाय चित्तं अभिनिन्नमेसिं सो:—इयं दुक्खंति यथाभूतं अभण्णासिं अयं दुक्खसमुदयो ति यथाभूतं अभण्णासिं अयं दुक्खनिरोधो ति यथाभूतं अभण्णासिं, अयं दुक्खनिरोध गामिनी पटि पदाति यथाभूतं अभण्णासिं, इमे आसवातियथाभूतं अभण्णासिं, अयं आसव समुदयोति यथाभूतं अभण्णासिं, अयं आसव निरोधो ति यथाभूतं अभण्णासिं, अयं आसव निरोधगामिनी पटिपदति यथाभूतं अभण्णासिं, तस्स मे एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा विपित्तं विमुच्चित्थ विमुत्तस्मिं विमुत्तं इति णाणं अहोसि, खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं नापरं इत्थत्थायाति अभण्णासिं अयं खो मे ब्राह्मण रत्तिया पच्छिमे यामे तमो विहतो आलोको उप्पन्नो, यथा तं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो"

भावार्थ—सो इस तरह चित्तके समाधान होनेपर परम शुद्ध होनेपर उज्वल होनेपर मलरहित होनेपर क्लेशोंसे दूरवर्ती होनेपर, आनन्द रूप होनेपर, क्रियाओंके स्थिर होनेपर, वशमें होनेपर आस्रवोंका क्षय होजानेसे चित्तमें यह ज्ञान हुआ:—

यह दु:ख है, उसका यथार्थ स्वरूप जाना गया, यह दु:खका कारण है इसका यथार्थ स्वरूप जाना गया, यह दु:खका निरोध है

इसका यथार्थ स्वरूप जाना गया, यह दुःखके निरोधका मार्ग है इसका यथार्थ स्वरूप जाना गया; ये आस्रव हैं इनका यथार्थ स्वरूप जाना गया, यह आस्रवका कारण है इसका यथार्थ स्वरूप जाना गया, यह आस्रवका निरोध है इसका यथार्थ स्वरूप जाना गया, यह आस्रव निरोधका मार्ग है इसका यथार्थ स्वरूप जाना गया। जब मैंने ऐसा जान लिया, देख लिया तब कामास्रव भावोंने (इच्छाओंने) मेरे चित्तको छोड़ दिया। इच्छाओंसे छूट जानेपर मैं विमुक्त होगया ऐसा मुझे ज्ञान हुआ। मेरा जन्म (पुनर्जन्म) क्षय होगया। मेरा ब्रह्मचर्य पूर्ण होगया। जो कुछ करना था सो मैंने कर लिया। मेरे लिये और कुछ करना बाकी नहीं रहा, ऐसा मुझे ज्ञान हुआ। इस तरह हे ब्राह्मण! मुझे रात्रिके पिछले पहर यह तीसरा ज्ञान उत्पन्न हुआ। अविद्या नाश होगई, विद्या पैदा होगई, अंधकार दूर होगया, प्रकाश उत्पन्न होगया। जैसा कि उस अप्रमत्त वीर्यवान तत्वभावनामें रत विहार करनेवालेके होता है।

नोट–इस वर्णनसे यही प्रगट होता है कि निर्वाण भाव पूर्ण या अपूर्ण जब जागृत होता है तब ज्ञानका प्रकाश उदय होजाता है, इच्छाएं बंद होजाती हैं, आस्रवके कारण नहीं रहते हैं। इस वर्णनसे कोई भी विचारवान निर्वाणको अभावरूप न मानकर सुखमय व ज्ञानमय व वीतरागमय ही मानेगा।

नोट–इस वर्णनमें आस्रव और अप्रमत्त शब्द जैन सिद्धांतसे मिलते हुए हैं। राग, द्वेष, मोह भाव मुख्य आस्रव हैं। अप्रमत्त साधु ही निर्वाणके योग्य होता है। जैसा कहा है—

श्री कुंदकुंदाचार्य कृत समयसार आस्रव अधिकार।

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥ १९८ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी तत्वज्ञानीके रागद्वेष, मोह आस्रव नहीं होते हैं। इसलिये आस्रवभावके विना द्रव्यकर्म सत्तामें बैठे हुए नवीन कर्मबंधके कारण नहीं होते हैं।

सारसमुच्चयमें श्री कुलभद्राचार्य कहते हैं—

ज्ञानभावनया सिक्ता निभृतेनान्तरात्मना।

अप्रमत्तं गुणं प्राप्य लभन्ते हितमात्मनः॥ २१८॥

भावार्थ—जो ज्ञानकी भावनामें लीन हैं वे निश्चल अंतरात्मा होकर अप्रमत्त गुणको पाकर आत्माका हित प्राप्त करते हैं।

❖ ❖ ❖ ❖

(४)

मज्झिमनिकाय सतिपट्ठान सुत्तं दसमं—

इस सूत्रमें निर्वाणके उपायोंमें चार प्रकारकी स्मृति या धारणाका वर्णन है–(१) भावकी अनित्यता व अपवित्रताका विचार (२) सुख दुःखकी वेदनासे वैराग (३) चित्तके भावोंका विचार। रागद्वेष मोहके त्यागका व वीतरागताके उपादेयपनेका स्मरण (४) नाना-प्रकार धर्मोंका या भावोंका स्मरण। जैसे दुःखके कारणोंका विचार इन्द्रिय विषयमें लग्नता बंध रूप मल है ऐसा विचार, आत्म समाधिकी उत्तमताका विचार। सूत्रके अंतमें इस स्मृतिकी भावनाका फल इन शब्दोंमें बताया है:—

"योहि कोचि भिक्खवे इमे चत्तारो सति पट्ठाने एवं भावेय्य सत्ताहं, तस्स द्विन्नं फलानं अण्णतरं फलं पाटिकं खंः दिट्ठे वा धम्मे अण्णा, सति वा उपाधि सैसे अनागामिता। एवं अयं भिक्खवे भग्गो सत्तानं विसुद्धिया सोक परिद्दवानं समति कमाय दुक्खदो मनस्सानं अत्थगमाय णायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छिकिरियाय; यदि

दं चत्तारो सति पट्ठानाति। इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तंति इदमवोच भगवा अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनंदुंति"

भावार्थ—जो कोई भिक्षु इन चार स्मृति उपस्थनोंको इस तरह भावेगा सात दिन (भी) उसको दो फलोंमेंसे एक फलकी संभावना है:— यातो वह इस ही शरीरमें रहते हुए निर्वाणका अनुभव करे या यदि कोई उपाधि शेष रह जाय तो अनागामी हो (अर्थात् भविष्यमें निर्वाण हो)। हे भिक्षुओं! इस तरहका यह मार्ग प्राणियोंकी विशुद्धिके लिये शोक-रुदनादिके दूर करनेके लिये दुःख व अशुद्ध मनको अस्त करनेके लिये, सत्यके जाननेके लिये निर्वाणका साक्षात्कार करनेके लिये, ऐसा ही यह चार स्मृति उपस्थान है। जैसा कहा है वैसा प्रतीतिमें लाना चाहिये। ऐसा भगवानने कहा-प्रसन्न मन होकर उन भिक्षुओंने भगवानके भाषणका आनन्द लिया।

नोट—इस कथनसे स्पष्ट प्रगट है कि निर्वाण अभाव नहीं है किंतु स्वानुभवरूप है—आत्म साक्षात्कार है—शुद्ध भावरूप है।

(२)

मज्झिमनिकाय, मूल परियायसुत्तं पठमं—

इस सूत्रमें जगतके सर्व पदार्थोंसे भिन्न मैं हूं ऐसा विशेष कथन किया है। मोहका निराकरण कराया है। इसके कुछ वाक्योंसे भी निर्वाणका सत् स्वरूप झलकता है। कुछ वाक्य हैं—

"योपि सो भिक्खवे भिक्खु अरहं खीणासवो वुसितवा कतकरणीयो ओहितभारो अनुप्पत्तसदत्थो परिक्खीणभव संयोजनो सम्मद् अण्णा विमुत्तो सोपि पथविं पथवितो अभिजानाति....पथविं मेति न मण्णति....आपं....तेजं....मे न मण्णति: तं किस्सहेतु खया मोहस्स.. वीतमोहत्ता।

तथागतोपि भिक्खवे अरहं सम्मा संबुद्धो पथविं पथवि तो अभिजानाति....पथविं मे तीन नग्णति....तं किस्सहेतुः नंदी दुःक्खस्स मूलंति इति विदित्वा भवा जाति भूतस्सजरामरणंति तस्मादिह भिक्खवे तथागतो सब्बसो तण्हानं खया निरागा निरोधा चागा पहिनिस्सग्गा अनुत्तरं सम्मा संबोधिं अभिसंबुद्धोति वदामीति इदमवोचभगवा अत्तमनाते भिक्खू भगवतोभासितं अभिनंदुंति ॥"

भावार्थ–हे भिक्षुओं! जो भिक्षु अरहंत है, क्षीणास्रव है, पूर्ण ब्रह्मचारी है, करनेयोग्य था सो कर चुका है, भारको पटक चुका है, सत्य पदार्थको प्राप्त कर चुका है, भवका बंध क्षीण कर चुका है, भले प्रकार ज्ञाता होगया है, विमुक्त होगया है, वह पृथ्वीको पृथ्वीरूप जानता है। पृथ्वी मेरी है ऐसा नहीं मानता है। इसी तरह जलको जलरूप, अग्निको अग्निरूप....जल मेरा है, अग्नि मेरी है इत्यादि नहीं मानता है। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि मोहके क्षय होनेसे वह वीतमोह होगया है। इसी तरह हे भिक्षु! तथागत (यथार्थ भेदज्ञानी या यहां गौतमबुद्ध) भी अरहंत है। भले प्रकार संबुद्ध है पृथ्वीको पृथ्वीरूप जानता है। पृथ्वी मेरी है ऐसा नहीं जानता है इसका क्या कारण है? कारण यह है कि तृष्णा दुःखका मूल है। ऐसा जानकर कि भवसे जन्म होता है—जन्म प्राप्त प्राणीके जरा व मरण होता है (अर्थात् भवभवमें भ्रमना जन्म मरणका हेतु है)। हे भिक्षुओ! इसीलिये तथागत सर्व ही तृष्णाके क्षयसे उससे विरागी होनेसे, उसके निरोध होनेसे, उसके त्यागसे, उसके छूटनेसे परमश्रेष्ट सम्यक् संबोधि या ज्ञानको प्राप्त हो अभिसंबुद्ध या ज्ञानी होता है ऐसा कहता हूं। ऐसा भगवानने कहा। प्रसन्न मन हो उन भिक्षुओंने भगवानके भाषनसे आनंद प्राप्त किया।

नोट–यह सब कथन जीवन्मुक्त अवस्थाका है। अरहंत, क्षीणा–

-स्रव, वीतमोह शब्द जैन सिद्धान्तमें भी मिलते हैं।

अरहंत स्वरूप—नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कृत द्रव्यसंग्रहमें—

णट्ठचदुघाइ कम्मो दंसणसुहणाण वीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्प सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

भावार्थ—जिसने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अंतराय इन चार घातीय कर्मोंका नाश कर दिया है, जो अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्यमई हैं। शुभ देहमें स्थित हैं व शुद्ध हैं (वीतरागी हैं) ऐसे आत्माको अरहंत विचार करो।

क्षीणाश्रव—अमृतचंद्राचार्यकृत तत्वार्थसारमें—

जानतः पश्यतश्चोर्ध्वं जगत् कारुण्यतः पुनः।
तस्य बन्धप्रसंगेन सर्वास्रवपरिक्षयात् ॥ ९ ॥मोक्ष०॥

भावार्थ—सर्व आस्रवके क्षय हो जानेसे जगतको देखते जानते हुए भी बन्धका प्रसंग नहीं होता है।

वीतमोह या क्षीणमोह—समयसारमें—

जिद मोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया दु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जब जितमोह साधुका मोह क्षय होजाता है तब उसको निश्चयके ज्ञाता क्षीणमोह या वीतमोह कहते हैं।

❖ ❖ ❖ ❖

(६)

मज्झिमनिकाय अरियपरियेसन सूत्र २६—

इस सूत्रमें यह कथन है कि गौतमबुद्धने घर छोड़नेके बाद आलार कालार व उदको रामपुत्र साधुओंकी संगति की। फिर उरुवेलापर जाकर ज्ञान पाया। इसके अंतमें जिस निर्वाणकी खोज की उसका स्वरूप इन शब्दोंमें है—

"निब्बानं परियेसमानं अजातं अनुत्तरं योगक्खेमं निब्बानं अज्झगमं। अजरं अब्याधि अमतं (अमृतं) असोकं, असंक्लिट्ठं। अधिगतो खोमें अयं धम्मो गंभीरो दुद्दसो दुरनुबोधो संतो पणीतो, अतक्कावचरो, निपुणो, पंडितवेदनीयो।

भावार्थ—जो निर्वाण खोजने योग्य है वह किसीसे उत्पन्न नहीं है। इसलिये अजात है अर्थात् स्वाभाविक है, उससे बढकर कोई नहीं है इससे अनुत्तर है। योग अर्थात् ध्यानद्वारा अनुभवगम्य है इससे योगक्षेम है, जरा रहित है, व्याधि रहित है, मरण रहित है, इससे अमृत है, शोक रहित है, संक्लेश रहित है, मैंने वास्तवमें इस धर्मको जान लिया यह धर्म गंभीर है जिसका देखना व जानना कठिन है, यह शांत है, उत्तम है, तर्कके गोचर नहीं है, निपुण है, तथा पंडितोंके द्वारा अनुभव करने योग्य है।

नोट—ऐसा वर्णन होते हुए निर्वाण अभावरूप नहीं होसक्ता है। यह निर्वाण वास्तवमें शुद्ध आत्माका स्वभाव है जो अजात है, अमर है, अनुभवगम्य है, ध्यानगम्य है, परम श्रेष्ठ है।

❖ ❖ ❖ ❖

(७)

मज्झिमनिकाय महामालुम्वसुत्तंचतुर्थं (६४)

इसका कुछ भाग है " सो यदेव तत्थ होति वेदनागतं संज्ञागतं संखारागतं, विज्ञानागतं ते धम्मे अनिच्चतो दुःखो रोगतो गंडतो पक्ततो अघतो आवाधतो परतो वलोकतो सुन्नतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटिवायेति, सो तेहि धम्मेहि चित्तं पटवायेत्वा अमताय धातुया चित्तं उपसंहतिः। एतं संतं एतं पणीतं यदिदं सब्ब संखार समथो सब्बुपाधिपटिनिस्सग्गो तराह खयो विरागो निरोधोः निब्बानंति सोतत्थहितो आसवानं खवं पापुणाति।

भावार्थ—वह वेदना सम्बन्धी, संज्ञा सम्बन्धी, संस्कार संबंधी, विज्ञान संबंधी स्वभावोंको (जो पांच इंद्रिय व मनके द्वारा होते हैं) अनित्य, दुःखरूप, रोग, ग्राव, शल्य, पाप, बाधारूप, पर, ऐसा देखते हुए उनसे रहित अपनेको देखता है। उन स्वभावोंसे चित्तको हटाता है। उनसे चित्त हटाकर अमृतरूप व धातु (निर्वाण) के लिये चित्तको जोडता है कि वह निर्वाण शांतरूप है, सर्वोत्तम है, जहां सर्व संस्कार शमन होगए हैं, सर्व उपाधियें चली गई हैं, तृष्णाका क्षय होगया है, विराग होगया है, निरोध होगया है वही निर्वाण है। इसीमें स्थित होते हुए आस्रवोंका क्षय प्राप्त कर लेता है।

* * * *

(८)

The word of the Budha

बुद्ध वाक्य पुस्तक—

इंग्रेजीमें रचयिता—न्याणतिलोक महाथेरा बौद्ध साधु दोद्रंदवा (सीलोन) टोक्यो यूनिवर्सिटीके गत प्रोफेसर, उदान ८ वर्गमें निर्वाणके सम्बन्धमें लिखते हैं—

There is an unborn, unoriginated, uncreated, unformed. If there were not this unborn, this unoriginated, this uncreated, this unformed escape from the world of the born, the originated, the created, the formed, would not be possible. But since there is an unborn, unoriginated, uncreated, unformed, therefore is escape possible from the world of the born, the originated, the created, the formed.

इसके मूल पाली वाक्य हैं—अत्थि भिक्खवे अजातं अभूतं अकतं असंखतं नोचेद् भिक्खवे अभविस्सा अजातं अभूतं अकतं असंखतं न इध जातस्स भूतस्स कतस्स संखतस्स निस्सरणं पञ्ञायेथ

यस्मा च खो भिक्खवे अत्थि अजातं अभूतं अकतं असंखतं तस्मा जातस्स भूतस्स कतस्स संखतस्स निस्सरणं पञ्ञायति।

भावार्थ–हे भिक्षुओं! कोई अजन्मा, न होनेवाला, न बनाया हुआ, न बदला हुआ है। यदि ऐसा कोई अजात, अभूत, अकृत व असंस्कृत न हो तो इस जन्मरूप, पैदा होनेवाले, कृत व संस्कृत जगतसे निकलना न होवे, परन्तु क्योंकि भिक्षुओं! ऐसा अजात, अभूत, अकृत व असंस्कृत है इसीसे जात, भूत, कृत व संस्कृतसे निकलना होसक्ता है।

नोट–इस कथनसे स्पष्ट प्रगट है कि निर्वाणमें कोई ऐसा है जो अजन्मा है जो किसीसे बना नहीं है। ऐसा कोई सिवाय शुद्धात्माके और कौन होसक्ता है। जब सर्व विभाव छूट गए, सर्व शरीर व संस्कार छूट गए, सर्व संकल्प विकल्प मिट गए, सर्व इंद्रियजनित सुख दुःख वेदनाएं बंद होगई तब जो एक शुद्ध पदार्थ था सो शेष रह गया, वही निर्वाण है। यही जैनोंकी मान्यता है।

❖ ❖ ❖ ❖

(९)

श्रीयुत बौद्ध साधु धर्मानन्द प्रिन्सपल विद्यालंकार कालेज केलेंनिया (सीलोन) एक दिन वार्तालाप करते हुए निर्वाणके सम्बन्धमें कहने लगे—

"शून्यं वक्तुं न शक्यते, सुखं च अस्ति"

अर्थात्–निर्वाणको शून्य नहीं कह सक्ते, वहां सुख है। तब आपने पाली निघंटकोषसे निर्वाणके सम्बन्धमें नीचे लिखे शब्द लिखवाए जो पाली ग्रंथोंमें आते हैं—

मुखो (मुख्य), निरोधो, निब्बानं, दीपं, तण्हक्खय (तृष्णांका नाश), तानं (रक्षक), लेनं (लीनता), अरूपं, संतं (शांतं), असंखतं

(असंस्कृत), सिवं (आनंदरूप), अमुत्तं (अमूर्तीक), सुद्दुसं (अनुभव करना कठिन है), परायनं (श्रेष्ठ मार्ग), सरणं (शरणभूत), निपुणं, अनंतं, अक्खरं (अक्षय), दुःखक्खय, अव्यायज्झ (सत्य), अनालयं (उच्चगृह), विवट्ट (संसार रहित), खेम, केवल, अपवग्गो (अपवर्ग), विरागो, पणीतं (उत्तम), अच्चुतं पदं, (अविनाशी पद), योगखेमं (ध्यान गम्य), पारं, मुत्ति (मुक्ति), विसुद्धि, विमुत्ति (विमुक्ति), असंखत धातु (असंस्कृत धातु), सुद्धि (शुद्धि), निव्वुत्ति (निर्वृत्ति)।

(१०)

The Doctrime of the Budha—

By George Grimm, published by Verlog W. Drugulin. Leipzig, Germany 1926—

इस नामकी पुस्तकमें निर्वाणके सम्बन्धमें नीचे लिखे कथन हैं–

Page 212. Unshakeable is my deliverance, this is the last birth, there is no becoming a new (Majhim I. P. 167)

भावार्थ–मेरी मुक्ति निश्चल है। यह अंतिम भव है। अब नया भव नहीं लेना है।

Page 350-351. Whose once has experienced this state within himself, is lost to the turmoil of the world, even if he again awakes to it; " his mind inclines to solitude, bends towards solitude, sinks itself in solitude. For to him this is highest blessedness (M. I P. 301) Thus Nibhan shows itself to be eternal rest, eternal stillness (M. II P. 110), the great Peace (Augultor N. I P. 132), whose realm the delivered one enters even during his life time and which he completely realizes at death and in which he has taken possession forever of every thing that is true and real. Bliss is Nibhan, bliss is Nibhan. Sariputti explains (A. V.

P. 414) Hunger is the worst disease, the activities of senses are the worst suffering. Having recognized this, verily one reaches $\frac{\text{Nibhan}}{\text{Verse}}$ highest bliss (Dhammapada A 203)

भावार्थ–जिसने एक दफे अपने भीतर इस दशाका अनुभव किया है वह जगके प्रपंचसे छूट जाता है। यदि वह फिर भी जागता है उसका मन एकांतकी तरफ झुकता है। एकांतमें ही मग्न होता है क्योंकि इसीसे उसे परमानंद होता है। (न० १ पृ० २०१) इस तरह निर्वाण स्वयं अविनाशी शांति व अविनाशी स्थिरता है। (म० २ पृ० ११०) महान शांति है (अंगुत्तर १ पृ० १३२) जिसमें मुक्त जीव इस अपने जीवनमें ही पहुंच जाता है, इसे वह मरणके समय पूर्ण अनुभव करता है। उसने सदाके लिये सत्य व असली पदार्थका स्वामित्व कर लिया है। सारिपुत्रने कहा आनन्द निर्वाण है, आनन्द निर्वाण है (अंग० ४१४) तृष्णा सबसे बुरा रोग है। इंद्रियोंके विषयभोग सबसे बुरे क्लेश हैं। जिसने इस बातका अनुभव करलिया है वह अवश्य निर्वाणको पहुंचता है जो परमानंदमय है (धम्मपद श्लो० २०३)।

Page 475–Librated from what is called corporeality, Vachha, the perfected one is indefinable, insoluable, immeasurable, like the Ocean (M. I P 487).

भावार्थ–भौतिक भावोंसे मुक्त होता हुआ हेवच्छ, सिद्ध प्राप्त समुद्रके समान अनिर्वचनीय है, अतर्कनीय है व अगाध है।

❖ ❖ ❖ ❖

(११)

Some sayings of Budha—

(according to Pali canon translated by F. L. Woodward I, A. (Cantab) Ceylone 1925.

उक्त पुस्तकमें निर्वाण सम्बन्धमें नीचे प्रकार वाक्य हैं—

Page 2-3-4. Search after the unsurpassed perfect security which is Nibhana. Goal is incomporable security which is Nibhana (M. I. P. 166). 'This reality (Dhamma) that I have reached is profound, hard to see, hard to understand, excellent, pre-eminent, beyond the sphere of thinking, subtle, and to be penetrated by the wise alone. Destruction of craving passionlessness, cessation which is *Nibhana*. (D. N. II P. 312).

भावार्थ—अनुपम व पूर्ण शरणकी खोज करो, यही निर्वाण है, अनुपम शरण ही निर्वाण है यही उद्देश्य है। मैं जिस धर्मपर पहुंच गया हूं वह गंभीर है, देखना कठिन है, समझना कठिन है, उत्तम है, श्रेष्ठ है, तर्कसे अतीत है, सूक्ष्म है, मात्र बुद्धिमानोंके ही गम्य है, तृष्णाका नाश, वीतरागता व (आस्रव) निरोध ही निर्वाण है।

P. 116. And I, friend, by the destruction of the *Asavas* have entered on and abide in that emancipation of mind, which is free from the *Asavas*, having realised it by mine own super knowledge even in this present life (Sanyutt) Nikaya II 220)

भावार्थ—हे मित्र! आस्रवोंके नाशसे मैं ऐसी चित्तविमुक्तिमें पहुंच गया हूं जो आस्रवोंसे मुक्त है। मैंने उसे अपनी ही प्रज्ञासे इसी जीवनमें अनुभव कर लिया है।

Page 188. Impermanent, alas ! are all compound things. Their nature is to rise and fall. When they have risen, they cease. The bringing of them to an end is Bliss (D. N. II 198).

भावार्थ—खेद कि सर्व ही स्कंध अनित्य हैं, उनका स्वभाव उत्पत्ति व विनाश है। जब वे पैदा होजाते हैं वे नाश भी होते हैं, इन सबका अंत करना आनन्द है।

Page 204-Nibhan is the resort of release. plunged in Nibhan is the holy life lived, with Nibhan for its goal, and ending in Nibhan (S. N. V 217-19).

भावार्थ–निर्वाण ही रक्षाका स्थान है। जो निर्वाणमें मग्न होते हैं, निर्वाणको ही उद्देश बनाते हैं, निर्वाण ही जिनका अंत है, उन्होंने ही पवित्र जीवन विताया है।

Page 321–F. N. Nibhan is a state beyond mind–consciousness.

भावार्थ–निर्वाण एक ऐसी दशा है जिसको मन जान नहीं सक्ता है।

P. 326–The delightful stretch of level ground is a name for Nibhana (S. N. III 106).

भावार्थ–साम्यभूमिके आनन्दमय विस्तारको निर्वाण कहते हैं।

P. 327–The destruction of craving is Nibhana [S. N. III 188].

तृष्णाका क्षय निर्वाण है।

P. 329–Release means Nibhana, Rooted in Nibhana, the holy life is lived. [S N. III 187].

भावार्थ–मोक्ष निर्वाणको कहते हैं। निर्वाणमें आगे मग्न है वह पवित्र जीवन विताता है।

P. 331–Possessing naught and clearing unto naught, that is the Isle, the incomparable isle. That is the ending of decay and death. Nibhana do I call it Kappa (said the exalted one) that is the Isle (S. N. V 1091–4).

भावार्थ–जहां कुछ भी परिग्रह नहीं है, न जहां कोई इच्छा है, वही वह (निर्वाण) द्वीप है। वह अनुपम द्वीप है जहां जरा मरणका अंत होजाता है। हे कप्प ! भगवानने कहाकि उस द्वीपको ही मैं निर्वाण कहता हूं।

❖ ❖ ❖

(१२)

धम्मपद।

Dhammapada—

(Sacred book of the East Vol. X translated by Maxmuller (1881)—

पुस्तकसे निर्वाणके वाक्य नीचे प्रकार हैं—

(१) अध्याय १९ सुख ।

Health is the greatest of gifts, contentedness, the best riches, trust is the best of relationships, *Nirvana* is *the highest happiness.*

भावार्थ—स्वास्थ्य सबसे बड़ी न्यामत है, संतोष सबसे बड़ा धन है, विश्वास सबसे बड़ा साथी है, निर्वाण सबसे ऊंचा सुख है ।

❖ ❖ ❖ ❖

(१३)

सुत्तनिपात ।

Sutta Nipata—

Translated by G. V. Fausbold (1881)

निर्वाणके सम्बंधमें नीचेके कुछ वाक्य हैं—

(१) विजयसुत्त । Vijay Sutta II

203[12] such a Bhikkhu who has turned away from desire and attachment, and is possessed of understanding in this world has (already) gone to the immortal peace, the unchangeable state of *Nirvana.*

भावार्थ—जिस भिक्षुने तृष्णा और मोहसे पीठ करली है। जो इस जगतमें प्रज्ञावान है वह वर्तमानमें ही उस अमर शांतिको तथा न बदलनेवाली निर्वाणकी दशाको पहुंच गया है ।

(२) हेमक मानव पुक्खा ।

Hemaka Manava-Pukkha—

1085[3] In this world (much) has been seen, heard and hought, the destruction of passion and of wish for the dear bjects that have been perceived, O Haemaka, is the imperishable state of *Nibhana.*

२

भावार्थ—इस जगतमें बहुत कुछ देखा, सुना व विचारा गया है; परन्तु इनमें जिसने कषायको व इष्ट वस्तुओंमें तृष्णाको क्षय कर दिया है उन्होंने निर्वाणकी अविनाशी अवस्थाको प्राप्त करलिया है।

(३) कप्प मानव पुक्खा।

Kappa-Manava-Pukkha—

2/1094 This matchless island, possessing nothing (and) grasping after nothing, I call Nibbana, the destruction of decay and death. पाली वाक्य है—

अकिंचनं अनादानं, एतं दीपं अनापरं।
निब्बानं इति नं ब्रूमि, जरा मिच्चु परिक्खयम्॥

भावार्थ—मैं उसे निर्वाण कहता हूं जो अनुपम द्वीप है जहां न कुछ लेना है न कुछ इच्छा ही है व जहां न जरा है न मृत्यु है।

(४) पिंजय मानव पुक्खा।

Pinjaya Manava Pukkha—

26/1149 To the insuperable, the unchangeable (Nibbana), whose likeness is nowhere, I [shall] certainly go, in this [Nibbana] there will be no doubt [left] for me, so know [me to be], of a dispossessed mind.

पाली वाक्य है—

असंहीरं असंकुप्पं,
यस्स नत्थि उपमा क्वचि।
अद्धा गमिस्सामि न मेत्थ कंखा,
एवं धारेहि अधिमुत्तचित्तं॥

भावार्थ—मैं अवश्य उस निर्वाणमें जाऊंगा जो अजेय है, अमिट है, अनुपम है; मुझे इसमें कोई शंका नहीं है, मैं निष्कामचित्त हूं ऐसा मुझे जानो।

(१४)

विसुद्धमग्ग—

Path of purity of Budha Ghosh, translated by P. Maung Tui P. I & II.

इस पुस्तकमें निर्वाणका कथन नीचे प्रकार है—

Page 57—Virtue is abstention, Valition, restraint, nontransgression in regard to all things. Such kind of virtue conduces to absence of mental remorse, to gladness, rapture, tranquility, joy, practice, culture, developement, adornment, requisites of concentration, fulness, fulfilment, certain disgust, dispassion, cessation, quiet, higher knowledge, *perfect knowledge*, Nibhana.

भावार्थ—सर्व वस्तुओंसे संयमित होना धर्म है, यह धर्म मानसिक पश्चाताप मिटाता है। हर्ष, आनंद, सभ्यता, उन्नति, शोभा, ध्यान, पूर्णता, वैराग्य, निष्कषायता, निरोध, शांति, उच्च ज्ञान, **पूर्ण ज्ञान**, व निर्वाणका साधक है।

नोट—यहां निर्वाणको पूर्ण ज्ञानमय भी कहा है।

Page 248—*Nibhana* with its intrinsic nature of eternity, deathlessness, refuge, shelter, and so on is well proclaimed.

भावार्थ—निर्वाण स्वभावसे ही नित्य है, अमर है व शरण है।

Page 338—Nibhana (is) ageless and permanent.

भावार्थ—जरा रहित अविनाशी निर्वाण है।

❖ ❖ ❖ ❖

(१५)

The life of Budha—

by Edward J. Thomas M. D. Litt [1927].

इस पुस्तकमें निर्वाणके सम्बन्धमें कहा है:—

Page 187—*Nirvana*—The state to which the monk has now attained is the other shore, the immortal [*i. e.* permanent] fixed state, The word Nirvana, blowing out extinction, is not

peculiarly Budhistic. For the Budhist, it is, as is clear, the extinction of craving.

From lust and from desire detached
The monk with in sight here and now
Has gone to the immortal peace,
The unchangeable N:rvana state,

It is unnecessary to discuss the view that Nirvana means the extinction of the individual, no such view has ever been supported from the texts and there is abundant evidence as to its real meaning, the extinction of craving in this life.

Page 191. *Amatam Padam*—Nirvan they implied some state inconceivable to thought, inexpressible by language F.N, [Professor Radha Krishna admits the silence of Budha and speaks of his "avoidance of all metaphysical themes; but he holds that "Budha" evidently admitted the positive nature of Nirvana".

भावार्थ–साधु संसारके दूसरे तटपर जाता है, यही निर्वाण है, यह अमर है, निर्वाणको अभाव कहना वौद्ध मत नहीं है। वौद्धोंके यहां साफ २ इसके अर्थ तृष्णाका क्षय है। काम व तृष्णासे विरागी साधु यहीं अभी ही प्रज्ञाके वलसे अमर, शांतिमय, अमिट निर्वाणकी दशाको पहुंच जाता है। इससे यह तर्क करना व्यर्थ है कि निर्वाणके अर्थ आत्माके नाश हैं। पुस्तकोंसे इस वातकी कभी पुष्टि नहीं होती है। तृष्णाका क्षय इसी जीवनमें होजाता है। इस असली निर्वाणके अर्थके लिये वहुतसे प्रमाण हैं।

निर्वाण अमृतमई पद है जो वचनसे कहा नहीं जासक्ता, विचारसे विचारा नहीं जासक्ता। प्रोफेसर राधाकृष्ण मानते हैं कि गौतम वुद्ध इस सम्वंधमें मौन थे क्योंकि वह सर्व गूढ़ तात्त्विक वातोंको छोड़ना चाहते थे। तौभी यह तो झलकता है कि वुद्धने प्रगट रूपसे निर्वाणको कोई वास्तविक स्वभाव माना है।

(१६)

Sacred book of East Vol. XLIX by F. Maxmuller.

बुद्धचरित अश्वघोष कृत।

Budha Charita by Asvaghosh—

Book XIV P. 186-After accompalishing in due order the entire round of the preliminaries of perfect wisdom, I have now attained that highest wisdom and I am become the all wise Arhat and Jina. My aspiration is thus fulfilled; this birth of mine has born itself fruit; the blessed and immortal knowledge which was attained by former Budhas is now mine. Possessing a soul now of perfect purity, I urge all leaving beings to seek the abolition of worldly existence through the lamps of the law.

भावार्थ–पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके साधनोंको पूर्ण करके अब उत्कृष्ट ज्ञान पालिया है। मैं अब अर्हत् तथा जिन होगया हूं। मेरी भावना इस तरह पूर्ण होगई है, मेरे जन्मका फल मैंने पालिया है, आनन्द-मई और अमर ज्ञान अब मुझे होगया है जैसे पूर्वके बुद्धोंको था। अब मैं परमपवित्र आत्माको रखता हुआ, अन्य प्राणियोंको प्रेरणा करता हूं कि वे धर्मके दीपक द्वारा इस संसारिक जीवनके नाशका उपाय ढूंढें।

Page 157-There has arisen the greatest of all beings, the omnicient all wise Arhat—a lotus, unsoiled by the dust of passion, sprung up from the lake of knowledge.

भावार्थ–ज्ञानके सरोवरसे, कषायकी रजसे अलिप्त, सर्व प्राणियोंमें श्रेष्ठ, सर्वज्ञ, सर्वबुद्ध अर्हत्‌रूपी कमलका विकास हुआ है।

P. 178 When these effects of the chain of causation are thus one by one put an end to, he at last, being free from all stain and substratum, will pass into a *blissful Nirvana*.

भावार्थ–जब कारणकी जंजीरके फल इस तरह एक एक करके नष्ट कर दिये जाते हैं तब अंतमें वह सर्व मलादिसे रहित होकर आनं-दमय निर्वाणको चला जायगा।

(१७)

बौद्ध महायान द्वि० भागमें सुखावती व्यूह।

Budhist Mahayan text P. II
Sukhavati Vyuha—

P. 29 Hence, O Anand, for that reason that Tatha Gata is called Amitabha [possessed of infinite light], and he is called *Amitprabha* [possessed of infinite splendour], *Amitprabhasa* [possessed of infinite brilliancy] *Asamagata prabha* [whose light is never finished]. *Asamgataprabha* [whose light is not conditioned].

भावार्थ—इसलिये ऐ आनंद ! तथागतको अमिताभ (अनंत ज्ञान-धारी), अमितप्रभ (अनंत प्रभावान), अमितप्रभास तथा असंगत प्रभ (जिसकी ज्ञान ज्योति निरालंब है) कहते हैं—

(७०) बुद्धचर्या हिंदी—साधु राहुल सांकृत्यायन कृत छपी वि० सं० १९८८ मेंसे निर्वाणके वाक्य—

(१) पृ० ३६—आदित्त परियायसुत्त सं० नि० ४३—३—६ निर्विकार—दूसरेकी सहायतासे न पार होनेवाले निर्वाण पदको देखकर मैं हृष्ट और इतसे विरक्त हुआ।

यहां तक निर्वाणके सम्बन्धमें जो कथन मेरे जाने हुए बौद्ध साहित्यमें देखनेमें आया सो मैंने उपयोगी जानकर यहां प्रगट किया है।

अब आगे जैन माननीय ग्रंथोंसे निर्वाणका स्वरूप दिखाया जाता है जिससे पाठकोंको यह विदित होगा कि निर्वाण या मोक्षका स्वरूप जो बौद्ध ग्रंथोंमें है वैसा ही जैन ग्रंथोंमें है। निर्वाणमें बंधका व आश्रवका व दुःखोंका व शरीरादिका क्षय होजाता है। परमानद परम शांत भाव, परम ज्ञानका प्रकाश सदा रहता है, मोक्षका फिर अभाव होता है।

(१) श्री कुंदकुंद आचार्य निर्वाणका या पंचमगति मोक्षका स्वरूप इसतरह श्री समयसार ग्रंथमें कहते हैं–

वंदित्तु सव्व सिद्धे, धुवममलमणोवमं गदिं पत्ते ।
वोच्छामि समयपाहुड़, मिणमो सुदकेवली भणिदं ।। १ ।।

भावार्थ–मैं ध्रुव, निर्मल, अनुपम गति या निर्वाणको प्राप्त सर्व सिद्धोंको नमन करके श्रुतकेवलियोंसे कथित समयसारको कहूंगा ।

नोट—यहां निर्वाणको ध्रुव, अमल व निरुपम कहा है—

(२) उक्त आचार्य अष्टपाहुड़में कहते हैं—

दंसण अणंत णाणे, मोक्खो णट्ठट्ठ कम्मबंधेण ।
णिरुवम गुणमारूढ़ो, अरहंतो एरिसो होई ।।२९–बो०।।

भावार्थ–मोक्ष या निर्वाण प्राप्त अरहंत ऐसे होते हैं जो अनंत-दर्शन व अनंतज्ञानमई हैं । अष्ट प्रकार कर्मबंधसे रहित हैं (अर्थात सर्व आस्रव भावोंसे व कर्मोंसे व दुःखोंसे रहित हैं व रागद्वेष मैलसे रहित हैं) व अनुपम गुणधारी है ।

जरवाहिजम्ममरणं, चउगइगमणं च पुण्ण पावं च ।
हंतूण दोसकम्मे, हुउ णाणमयं च अरहंतो ।।३०।। बो०

भावार्थ–जिस अरहंतने जरा, व्याधि, जन्ममरण, चार गतिमें भ्रमण, पुण्यपाप, दोनकर्म सर्व नाश कर दिये हैं तथा वे ज्ञानमई हैं ।

भावेह भाव सुद्धं, अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव ।
लहु चउगइ चइऊणं, जइ इच्छसि सासयं सुक्खं ।।६० भा०।।

भावार्थ–यदि अविनाशी सुख रूप मोक्षको चाहते हो व चार गतिसे शीघ्र छूटना चाहते हो तो शुद्ध भाव करके अति शुद्ध व निर्मल आत्माकी भावना करो । नोट–यहां निर्वाणको अविनाशी सुखरूप कहा है–

जेसिं जीवसहावो, णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ ।
ते होंति भिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमतीदा ॥ ६३ ॥भा०॥

भावार्थ–जिनमें जीव स्वभाव रहता है, उसका सर्वथा जहां अभाव नहीं होता है वे शरीरादिसे रहित मोक्ष प्राप्त वचन अगोचर हैं।

नोट–यहां निर्वाणको वचनातीत व स्वभाव बताया है।

जं जाणिऊण जोई, जोअत्थो जोइऊण अणवरयं ।
अव्वावाहमणंतं, अणोवमं लहइ णिव्वाणं ॥ ३ ॥ मो० ॥

भावार्थ–शुद्ध आत्माको जानकर जो योगी ध्यानमें तिष्ठ करके निरंतर अनुभव करता है वह बाधा रहित अनन्त और उपमा रहित निर्वाणको पाता है ।

नोट–यहां निर्वाणको बाधारहित, निरुपम व अनन्त कहा है–

मलरहिओ कलचत्तो, अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा ।
परमेट्ठी परमजिणो, सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥६॥ मो०

भावार्थ–निर्वाण प्राप्त आत्मा सिद्ध मलरहित है, शरीर रहित है, अनादि है, केवल है, विशुद्ध है, परम पद है, परम जिन है, शिव या आनन्दकारी है व शाश्वता है ।

नोट–निर्वाणको निर्मल, अनादि, केवल, विशुद्ध, शिवरूप, शाश्वता कहा है–

(३) पंचास्तिकायमें वही आचार्य कहते हैं—

उवसंत खीणमोहो मग्गं जिणभासिदेण समुवगदो ।
णाणाणुमग्गचारी णिव्वाणपुरं वजदि धीरो ॥ ७६ ॥

भावार्थ–जिसने मोहका उपशम फिर क्षय जिन कथित मार्गके द्वारा चलकर कर डाला है व जो ज्ञान मार्गपर चलानेवाला है वह धीर निर्वाणपुरको जाता है ।

(४) वे ही आचार्य नियमसारमें कहते हैं—

अव्वावाहमणिंदिय मणोवमं पुण्णपावणिमुक्कं ।
पुणरागमणविरहियं णिच्चं अचलं अणालम्वं ॥ १७७ ॥
णवि दु:खं णवि सुक्खं णवि पीड़ा णेव विज्जदेवाहा ।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेवइ होई णिव्वाणं ॥ १७८ ॥
णवि इंदिय उवसग्गा णवि मोहा विम्हियो ण णिद्दाय ।
णय तण्हा णेव छुहा तत्थेवइ हवदि णिव्वाणं ॥ १७९ ॥
णवि कम्मं णो कम्मं णवि चिंता णेव अहरुद्दाणि ।
णवि धम्म सुक्कझाणे तत्थेवइ हवदि णिव्वाणं ॥ १८० ॥

भावार्थ–निर्वाण, बाधा रहित, इंद्रियोंसे अतीत, उपमा रहित, पुण्य व पाप मुक्त, पुनर्जन्म रहित, नित्य, अचल निरालम्ब है। वहां न दु:ख है, न संसारिक सुख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न मरण है, न जन्म है, वहां न इंद्रियां हैं, न कोई उपसर्ग हैं, न मोह है, न आश्चर्य है, न निद्रा है, न तृष्णा है, न क्षुधा है, न कर्म हैं, न शरीर हैं, न चिंता है, न आर्तरौद्र, धर्म शुक्लध्यान वहीं निर्वाण है।

(५) श्री उमास्वामी महाराज तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं–

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥२–१०॥

भावार्थ–बंधके कारणोंका अभाव होजानेपर व पूर्व कर्मोंका क्षय होजानेपर सर्व कर्मोंसे मुक्त होजाना मोक्ष या निर्वाण है।

(६) श्री समन्तभद्राचार्य रत्नकरंड श्रावकाचारमें कहते हैं–

शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशंकं ।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनपूताः ॥४०॥

भावार्थ–निर्मल सम्यग्दृष्टी जीव ऐसे निर्वाणको पाते हैं जो शिव है, अजर है, रोग रहित है, अक्षय है, अव्याबाध है, शोक भय व शंकासे शून्य है, उत्कृष्ट सुख व ज्ञानकी विभूति सहित है, व निर्मल है।

(७) श्री पूज्यपादस्वामी सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें कहते हैं–

" निरवशेषनिराकृतकर्ममलकलंकस्य अशरीरस्य आत्मनः अचिन्त्यस्वाभाविकज्ञानादिगुणं अव्याबाधसुखं आत्यन्तिकं अवस्थान्तरं मोक्षः ।"

भावार्थ–सम्पूर्णपने कर्ममल कलंकके दूर जानेपर शरीर रहित आत्माके भीतर चिंतवनमें आने योग्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणोंका प्रगट होना, बाधा रहित सुखका होना, अंतिम भावका पाना–अन्य अवस्थाका प्राप्त होना सो मोक्ष है ।

(८) उक्त आचार्य समाधिशतकमें निर्वाण प्राप्त आत्माका स्वरूप कहते हैं—

निर्मलः केवलः सिद्धो विरक्तः प्रभुरक्षयः ।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः ॥ ६ ॥

भावार्थ–निर्वाण प्राप्त निर्मल है, केवल है, सिद्ध है, विविक्त है, प्रभु है, अक्षय है, परमेष्टी है, परात्मा है, परमात्मा है, ईश्वर है, जिन है ।

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः ।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः ॥७१॥

भावार्थ–जिसके चित्तमें निश्चल धैर्य्य होता है उसीको अवश्य निर्वाण है। जिसके निश्चल धैर्य नहीं है उसको अवश्य मुक्ति नहीं है ।

(९) श्री अमृतचन्द्र आचार्य पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखते हैं–

नित्यमपि निरुपलेपः स्वरूपसमवस्थितो निरुपघातः ।
गगनमिव परमपुरुषः परमपदे स्फुरति विशदतमः ॥२२३॥

कृतकृत्यः परमपदे परमात्मा सकलविषयविषयात्मा ।
परमानन्दनिमग्नो ज्ञानमयो नंदति सदैव ॥ २२४ ॥

भावार्थ-निर्वाणमें नित्य ही लेप रहित, अपने स्वरूपमें स्थित, बाधा रहित, आकाशके समान निर्मल, परम पुरुष, परम पदमें प्रकाशमान रहता है, अत्यन्त शुद्ध है, परम पदमें कृतकृत्य है, परमात्मा है, सकल विषयोंको जाननेवाला है, ज्ञानमई है, परमानन्दमें निमग्न सदा आनन्द भोगता है।

(१०) वही आचार्य तत्वार्थसारमें कहते हैं-

पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम् ॥ ४९ ॥ मो०
लोके तत्सदृशोह्यर्थः कृत्स्नेप्यन्यो न विद्यते।
उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरुपमं स्मृतम् ॥ ५० ॥ मो०

भावार्थ-पुण्यकर्मके फलसे इंद्रियजनित इष्ट सुख होता है परंतु कर्मोंके क्लेश छूट जानेसे मोक्षमें या निर्वाणमें अनुत्तम अर्थात् जिसके समान कोई उत्तम नहीं है ऐसा सुख प्राप्त होता है।

इस लोकमें ऐसा कोई दूसरा पदार्थ नहीं है जिससे निर्वाणकी उपमा दी जासके इसलिये निर्वाण अनुपम है।

(११) यही आचार्य समयसार कलशमें कहते हैं-

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत।
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धं ॥
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं।
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि ॥ १३-९ ॥

भावार्थ-बंधके क्षय होजानेसे अतुल व अक्षय मोक्ष प्रगट होजाती है, जो नित्य उद्योत रूप स्वाभाविक अवस्थामें प्रगट होती है, परम शुद्ध है, अपने एक आत्मीक रससे भरपूर है, अत्यंत गंभीर है, धीर है, पूर्ण ज्ञानमई है, निश्चल अपनी महिमामें लीन प्रगट है।

(१२) श्री अमितगति आचार्य श्रावकाचारमें निर्वाणका स्वरूप कहते हैं—

नाकिनिकायस्तुतपदकमलो, दीर्णदुरुत्तरभवभयदुःखाम् ।
याति स भव्योऽमितगतिरनघां, मुक्तिमनश्वरनिरुपमसौख्याम् ॥ ११४-१५

भावार्थ—वह देवोंके समूहसे नतचरण ज्ञानी भव्यजीव संसारके भय व दुःखोंसे पार करनेवाली, पाप रहित, अविनाशी और अनुपम सुखवाली मुक्तिको पालेता है ।

(१३) श्री पद्मनंदि मुनि एकत्वभावनामें कहते हैं—

मोक्ष एव सुखं साक्षात्तत्र साध्यं मुमुक्षुभिः ।
संसारेऽत्र तु तन्नास्ति यदस्ति खलु तन्न तत् ॥ ६ ॥

भावार्थ—मोक्ष ही साक्षात् सुख है, उसीका साधन मुमुक्षुको करना चाहिये । संसारमें वह सुख नहीं है, जो है वह सुख नहीं दुःख ही है ।

(१४) तथा सिद्धस्तुतिमें कहते हैं—

ते सिद्धाः परमेष्ठिनो न विषया वाचामतस्तान् प्रति ।
प्रायो वच्मि यदेव तत्खलु नभस्यालेख्यमालिख्यते ॥
तन्नामापि मुदे स्मृतं तत इतो भक्त्याथ वाचालिता-
स्तेषां स्तोत्रमिदं तथापि कृतवानम्भोजनंदी मुनिः ॥ २९ ॥

भावार्थ—निर्वाण प्राप्त सिद्ध परमेष्ठी वचनोंके गोचर नहीं है, उनके सम्बन्धमें कुछ भी कहना आकाशमें चित्र खींचना है । उनका नाम ही स्मरण करनेसे आनन्द होता है इसलिये भक्तिसे प्रेरित होकर मुझ पद्मनंदि मुनिने उनका स्तोत्र किया है ।

(१५) यही आचार्य एकत्वसप्ततिमें कहते हैं—

यदव्यक्तमबोधानां व्यक्तं सद्बोधचक्षुषाम् ।
सारं यत्सर्ववस्तूनां नमस्तस्मै चिदात्मने ॥ ३ ॥

भावार्थ–मैं उस (निर्वाण प्राप्त) चैतन्य आत्माको नमस्कार करता हूं जो अज्ञानियोंके अनुभवमें नहीं आता है, सम्यग्ज्ञानकी चक्षु रखनेवालोंके ही अनुभवमें आता है तथा जो सर्व वस्तुओंमें सार है।

विकल्पोर्मिभरत्यक्तः शान्तः कैवल्यमाश्रितः ।
कर्माभावे भवेदात्मा वाताभावे समुद्रवत् ॥ २६ ॥

भावार्थ–जब कर्मोंका अभाव होता है तब (निर्वाणमें) आत्म सर्व विकल्पोंकी तरंगोंसे रहित, शांत, केवलज्ञानमई उसी तरह रहता है जिस तरह पवनके विना समुद्र स्थिर रहता है।

संसारघोरघर्मेण सदा तप्तस्य देहिनः ।
यंत्रधारागृहं शांतं तदेव हिमशीतलं ॥४३॥

भावार्थ–संसारके घोर आतापसे तप्त प्राणीके लिये वह निर्वाण ही एक शांत व वर्फके समान शीतल स्थान है।

निश्शरीरं निरालम्बं निश्शब्दं निरुपाधि यत् ।
चिदात्मकं परं ज्योतिरवाङ्मानसगोचरम् ॥ ६० ॥

भावार्थ–वह निर्वाण प्राप्त चैतन्य आत्मा शरीर रहित है, आलंब रहित है, शब्द रहित है, उपाधि रहित है, परम ज्योतिस्वरूप है। वचन व मनके द्वारा अनुभवने योग्य नहीं है।

(१६) आप्तस्वरूपमें कहा है—

शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शांतमक्षयं ।
प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः ॥ २४ ॥
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं स्थानमात्मस्वभावजं ।
प्राप्तं परमनिर्वाणं येनासौ सुगतः स्मृतः ॥ ४१ ॥

भावार्थ–जिसने शिवरूप, परम कल्याणरूप शांत, अक्षय निर्वाणरूपी मुक्तिपद पाया है वही शिव कहा गया है। जिसने सर्व प्रपंच रहित आत्मीक स्वभावसे उत्पन्न परम निर्वाणपदको पाया है वही सुगत माना गया है।

(१७) कुलभद्र आचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

इन्द्रियप्रसरं रुद्ध्वा स्वात्मानं वशमानयेत्।
येन निर्वाणसौख्यस्य भाजनं त्वं प्रपत्स्यसे ॥१३४॥

भा०–पांच इंद्रियोंके फैलावेको रोककर अपने आपको वशमें ला तौ तू निर्वाणके सुखका भाजन होजायगा।

(१८) श्री नागसेन मुनि तत्त्वानुशासनमें कहते हैं—

आत्यंतिकः स्वहेतोर्यो विश्लेषो जीवकर्मणोः।
स मोक्षः फलमेतस्य ज्ञानाद्याः क्षायिका गुणाः ॥२३०॥

स्वरूपावस्थितिः पुंसस्तदा प्रक्षीणकर्मणः।
नाभावो नाप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकं ॥२३४॥

त्रिकालविषयं ज्ञेयमात्मानं च यथा स्थितं।
जानन् पश्यंश्च निःशेषमुदास्ते स तदा प्रभुः ॥२३८॥

अनंतज्ञानदृग्वीर्यवैतृष्ण्यमयमव्ययं।
सुखं चानुभवत्येष तत्रातीन्द्रियमच्युतः ॥ २३९ ॥

आत्मायत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरं।
घातीकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥ २४२ ॥

भावार्थ–जीवका और कर्मका बिलकुल अपने कारणोंके द्वारा अलग२ होजाना मोक्ष या निर्वाण है। निर्वाणका फल ज्ञानादि निर्मल गुणोंका लाभ है। कर्मोंके क्षय होनेपर अपने स्वरूपमें स्थिति होती है। वहां अभाव नहीं है न अचेतनपना है किंतु चेतनपना व्यर्थ

नहीं है। निर्वाण प्राप्त प्रभु तीन कालके विषयभूत जानने योग्य पदार्थोंको और अपने आत्माको जेसा२ जिसका स्वरूप है वैसा २ जानते देखते हुए भी पूर्णपने वीतराग रहते हैं वे, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्यमय, तृष्णा रहित, अव्यय, इंद्रिय रहित सुखको अनुभव करते हैं व अच्युत हैं अर्थात् ध्रुव रहते हैं। निर्वाणका सुख आत्माधीन है, वाधा रहित है, अतीन्द्रिय है, अविनाशी है, घातीय कर्मोंके क्षयसे प्रगटा है। पाठकोंके ज्ञानके लिये कुछ जैन शास्त्रों-मेंसे निर्वाणका स्वरूप कहा गया है। इस कथनको पहले लिखे हुए वौद्ध ग्रन्थोंके निर्वाण कथनसे मिलाया जायगा तो विलकुल एकसा दीखेगा।

वौद्ध साहित्यमें निर्वाणको ज्ञानमय, नित्य, अमर, शांत, आन-न्दमय, अमिट, जरा मरण रहित, मन वचन अगोचर, आस्रवोंसे मुक्त, तृष्णा रहित, वीतराग रूप, संसारिक विकारोंसे शून्य, लेश्या रहित, विशुद्ध, केवल, अमूर्तीक, जन्म रहित, परम शरण, द्वीप, सर्वोत्तम, गंभीर, पंडितोंसे अनुभवने योग्य आदि रूप कहा है। यही सब कथन जैन साहित्यका है। जो कुछ संसारमें था वह सब विकार व मोह व अज्ञान नष्ट हो जाता है, एक न कभी छूटनेवाला स्वभाव झलक जाता है। इस तरह निर्वाणके स्वरूपमें तत्वदृष्टिसे एकता है। निर्वाण प्राप्त सिद्ध भगवान जैन साहित्यमें लोकके शिषरपर सिद्ध क्षेत्रमें अनंतकालके लिये विराजित हैं। तथा वहां आत्माका आकार पुरुषाकार ध्यानमय रहता है। यह कथन वौद्ध साहित्यमें देखनेमें नहीं आया। अंतरंग स्वरूपकी अपेक्षा एकता झलकती है। जो लोग सूक्ष्मतासे जैन और वौद्ध ग्रंथोंको पढ़ेंगे वे भी इसी नतीजेको पहुंचेंगे।

द्वितीय अध्याय ।

आत्माका अस्तित्व ।

बौद्ध शास्त्रोंमें यद्यपि स्पष्टतया आत्माके सम्बन्धमें कथन नहीं है तथापि परदेके भीतर आत्माका सब स्वरूप वैसा ही झलकता है जैसा कि तत्वमई आत्मस्वरूप जैन सिद्धांत मानता है ।

पहले अध्यायको पढनेसे पाठकोंको मालूम हुआ होगा कि बौद्धोंका निर्वाण अभाव रूप व नाश रूप नहीं है किंतु वह सद्भाव स्वरूप है । जब वह कुछ है तब उसे जड़ या चेतन कुछ भी मानना पड़ेगा । जड़ तो वह हो नहीं सक्ता क्योंकि सम्यक् सबुद्ध ज्ञानीको प्रज्ञा द्वारा निर्वाणका लाभ होता है । इसलिये वह चेतन पदार्थ ही ठहरता है । सर्व संसारमें खेल खिलानेवाले रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार व विज्ञान जब नष्ट होजाते हैं जब जो कुछ शेष रहता है वही शुद्ध आत्मा है । शुद्ध आत्माके सम्बन्धमें जो जो विशेषण जैन शास्त्रोंमें हैं वे सब बौद्धोंके निर्वाणके स्वरूपसे मिल जाते हैं । निर्वाण कहो या शुद्ध आत्मा कहो एक ही बात है । दो शब्द हैं, वस्तु दो नहीं हैं ।

बौद्ध साहित्यमें निर्वाणको जो पंडितवेदनीय, तर्कके अगोचर, मनके अगोचर, साक्षी करने योग्य कहा है वही शुद्ध आत्माका कथन जैन साहित्यमें है । शुद्ध आत्मा पंडितोंके द्वारा अनुभव करने योग्य है । तर्क वहां पहुंच नहीं सक्ता है, मनकी वहां गम्य है, वचन कह नहीं सक्ता । वास्तवमें शुद्ध आत्मा स्वानुभव गम्य है इसलिये निर्वाण भी स्वानुभव योग्य है । आत्माके सम्बन्धमें या निर्वाणके सम्बन्धमें कुछ भी कहना उन्मत्त कासा बकना है ।

श्री पूज्यपाद जैनाचार्यने समाधिशतकमें ऐसा ही कहा है:—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥ १९ ॥

भावार्थ—मैं दूसरोंके द्वारा समझाया जाऊं व मैं अपनेको दूसरोंको समझाऊं यह उन्मत्त क्रिया है क्योंकि मैं तो निर्विकल्प हूं अर्थात् वचन व मनके अगोचर मात्र अनुभवगम्य हूं ।

जैन साहित्यमें जब सीधे मार्गसे by direct way संकेतरूप आत्माका कुछ कथन किया है तब बौद्ध साहित्यमें सीधे मार्गसे बिलकुल न कहकर घुमाकर by indirect way आत्माको बताया गया है। जैन साहित्यमें भी इस तरह आत्माका कथन बहुत जगह है। जैसा वे ही पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं —

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना ।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः ॥ ३० ॥

भावार्थ—सर्व इंद्रियोंको संयममें लानेपर व भीतरकी तरफ सन्मुख होनेपर जो कुछ अनुभवमें आता है वही परमात्माका तत्व है। पांच इंद्रिय व मन इन छहोंके द्वारा अनेक विषयोंको ग्रहण कर यह प्राणी राग द्वेष मोह करलेता है। इसीसे आत्मासे बाहर रहता है। यदि इन छहों आयतनोंसे अपनेको रोकले तब आप वही है जो परमात्मा है या निर्वाण है। जैसे एक आदमी अपने घरमें रहता था परंतु वह अपने घरकी छः खिड़कियों द्वारा बाहर ही बाहर झांका करता था, कभी भीतर नहीं देखता था। एक दिन उसने खिड़कियोंके द्वारा देखना बंद कर दिया। तब भीतर जो देखा तो अपना सब घर जैसा था वैसा दिख गया। पांच इंद्रिय व मन ये छः खिड़कियोंकी तरफ़से उदासीन होजानेपर व भीतर चित्त जोड़नेपर जो कुछ है वही आप है, वही निर्वाण स्वरूप है, वही आत्मा है।

बौद्ध साहित्यमें इसी ढंगसे आत्माकी तरफ प्राणीको सन्मुख किया है (सर्व आस्रवके कारणोंके छोड़नेका उपदेश है, रागद्वेष मोह निवारनेका उपदेश है, परम ब्रह्मचर्यमय रहनेका, परम समाधि, परम साम्यभाव, परम उपेक्षामें, व परम ध्यानमें रहनेका उपदेश है। सर्व अवस्थाओंको जो बनती हैं व बिगड़ती हैं अनित्य बताकर उनसे वैरागी होनेका उपदेश है।) उनसे वैरागी होना ही आपमें आप ठहरना है। आगे बौद्ध प्रमाणोंको बताकर हम दिखाएंगे कि किस-तरह परसे या अनात्मासे छुड़ाया है व निर्वाणके भावमें लगाया है।

दूसरी बात बौद्ध साहित्यसे यह भी झलकती है कि सूक्ष्म द्रव्य-चर्चाको जो मात्र तर्क व बुद्धिकी नीवपर ही खड़ी होती है, कथन करनेका व वादानुवादकी उलझनमें पड़नेका उद्यम छोड़ दिया गया है। साधारण लोगोंको जो बात जल्दी समझमें आवे व वे उसपर चलकर उसका तुर्त लाभ उठा सकें ऐसा कथनही अधिक कहा गया है। चार बातें ही अधिक बताई हैं। दुःख क्या है, दुःखका कारण क्या है, दुःखका निरोध क्या है, दुःख निरोधका उपाय क्या है। इस तरहके कथनका लाभ यह होता है कि शिष्य अनेक मतमतांतरके विरुद्ध कथनोंके विचारकी उलझनसे बच जाता है तथा बड़ी ही सुगम रीतिसे साधन करते हुए पहुंच वहीं जाता है जिधर सूक्ष्म कथन करके पहुंचाया जासक्ता था। फिर वह धीरे२ सूक्ष्म तत्वको भी समझ जाता है।

सूक्ष्म तत्व चर्चा Metaphysics को किसतरह कहनेसे उदासीनता दिखलाई गई है यह बात दीर्घ निकाय १:९ मोह पाद सुत्तसे प्रगट होगी जिसका हिन्दीमें उल्था बुद्धचर्या ग्रंथमें पृ० १८९ से १९९ तकमें दिया है। उसके कुछ वाक्य यहां दिये जाते हैं। मोह-पादने नीचे लिखे प्रश्न बुद्धसे किये—

(१) क्या लोक नित्य है, (२) क्या लोक अशाश्वत है, (३) क्या लोक अंतवान् है, (४) क्या लोक अन् अंतवान् है, (५) क्या वही जीव है वही शरीर है, (६) क्या जीव दूसरा है शरीर दूसरा है, (७) क्या मरनेके बाद तथागत फिर पैदा होता है। (८) क्या मरनेके बाद तथागत नहीं पैदा होता है ? इन सबका उत्तर बुद्धने यह दिया— मैंने इन सब बातोंको अव्याकृत किया है। अर्थात् इनका विस्तार नहीं किया है। वे कहते हैं—

"मोहपाद ! न यह अर्थ युक्त (सप्रयोजन) है, न धर्मयुक्त, न आदि ब्रह्मचर्यके उपयुक्त, न निर्वेद (उदासीनता) के लिये, न निरोध (क्लेश विनाश) के लिये, न निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने अव्याकृत किया है।

फिर मोहपाद पूछता है "भगवानने क्या क्या व्याकृत किया है तब बुद्धने उत्तर दिया—मोहपाद ! यह दुःख है (इसे) मैंने व्याकृत किया है, यह दुःख समुदय (का कारण) है, यह दुःख निरोध है, यह दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद् (उपाय) है। इसे मैंने व्याकृत किया है। मोहपाद ! यह अर्थ उपयोगी, धर्म-उपयोगी, आदि ब्रह्मचर्य उपयोगी है। यह निर्वेदके लिये, विरागके लिये, निरोधके लिये, उपशमके लिये, अभिज्ञाके लिये, संबोधके लिये, निर्वाणके लिये है। इसलिये मैंने व्याकृत किया।" यद्यपि जैन सिद्धांतमें बहुत सूक्ष्म द्रव्योंका कथन किया है तथापि यह कहा है कि कथन तीन प्रकारका होता है—हेय, उपादेय, ज्ञेय, अर्थात् त्यागने योग्य, ग्रहण करने योग्य, जानने योग्य। इनमेंसे मुमुक्षुको उचित है कि जिन बातोंसे संसार बढ़ता है, दुःख होता है, उन बातोंको भलेप्रकार समझकर त्यागनेका उपाय करें व जिन बातोंसे निर्वाण निकट आता है, संसार क्षय होता है, उन बातोंको भी समझकर ग्रहण करले परन्तु जो बातें मात्र जानने योग्य हैं उनको अपनी बुद्धिके अनुकूल जानें। यदि समझमें नहीं आवे तो आकुलता-

मनमें न लावे। हेय उपादेय तत्वका जानना जरूरी है। ऐसा जैनाचार्य श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

तापत्रयोपतप्तेभ्यो भव्येभ्यः शिवशर्मणे ।
तत्वं हेयमुपादेयमिति द्वेधाभ्यधादसौ ॥ ३ ॥
बंधो निर्बंधनं चास्य हेयमित्युपदर्शितं ।
हेयं स्याद्दुःखसुखयोर्यस्माद्बीजमिदं द्वयं ॥ ४ ॥
मोक्षस्तत्कारणं चैतदुपादेयमुदाहृतं ।
उपादेयं सुखं यस्मादस्मादाविर्भविष्यति ॥ ५ ॥

भावार्थ—जन्म, जरा, मरणके तापसे दुःखी भव्य प्राणियोंके लिये मोक्षसुखकी प्राप्तिके वास्ते भगवानने हेयतत्व व उपादेयतत्व ऐसे दो तत्वोंका भाषण किया है।

कर्मबंध व उसका कारण हेय है क्योंकि यही त्यागने योग्य संसारिक दुःख सुखका बीज है। मोक्ष व उसका कारण उपादेय है क्योंकि इसीसे आदरने योग्य सुखका लाभ हो सकेगा।

यद्यपि प्रगट रूपसे सूक्ष्म तत्त्वोंका कथन Metaphysics बौद्ध साहित्यमें नहीं है तथापि हम दिखलाएंगे कि बहुतसा सूक्ष्म तत्व बौद्ध वाक्योंसे झलक रहा है और उससे जैन तत्वज्ञानकी साम्यता पड़ती है। इस अध्यायमें आत्माका ही विचार करना है। प्रथम बौद्ध साहित्यमें कहां २ आत्माका कथन है वह संक्षेपसे दिखलाया जाता है—

(१) संयुक्त निकाय नं० ४ पृ० ४०० अव्याकत संयुत्तं नं० १० इसके कुछ पाली वाक्य दिये जाते हैं—

अथ खो वच्छगोत्तो परिब्बाजको येय भगवा तेनुपसंकामि, उपसंकमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारनीयं

वीतिसारेत्त्वा एकं अंतं निसीदि। एकं अंतं निसिन्नो खो वच्छगोत्तो परिव्राजको भगवंतं एतदवोच। किं नु खो भो गोतम **अत्थत्ताति** एवं उत्ते भगवा तुरा ही अहोसि किं चन भो गोतम **नत्थत्ताति**- दुतियंपि भगवा तुराही अहोसि अथ खो वच्छ गोत्तो परिव्राजको उट्ठायासना पक्कामि अथ खो आयस्मा आनंदो अचिरपक्कंतो वच्छगोत्ते परिव्राजके भगवंतं एतदवोच किं नु खो भंते भगवा वच्छ गोतस्स परिव्राजकस्स पराहं बुद्धं न व्याकसोति अहं आनंद वच्छ गोत्तस्स परिव्राजकस्स अत्थत्ताति पुट्ठो समानो अत्थत्ताति व्याकरेय्यं ये ते आनंद समणा ब्राह्मण सस्सदवादा तेसं रातं सद्धिं अभविस्स। अहं चानंद वच्छ गोत्तस्स परिव्राजकस्स नत्थत्ताति युट्ठो समानो नत्थ-त्ताति व्याकरेय्यं ये ते आनंद समणा ब्राह्मगा **उच्छेदावादा** तेसं एतं सद्धिं अभविस्स।

अहं चानंद वच्छ गोत्तस्स परिव्राजकस्स अत्थत्ताति पुट्ठो समानो अत्थत्ताति व्याकरेय्यं। अपि नु मेतं अनुलोमं अभविस्स णा-णस्स उपादाय सब्बे धम्मा अनत्ताति। नोहे तं भंते। अहं चानंद वच्छ गोत्तस्स परिव्राजकस्स नत्थत्ताति पुट्ठो समानो नत्थत्ताति व्याकरेय्यं। सम्मूढस्स आनंद वच्छ गोत्तस्स भीय्यो सम्मोहाय अभ-विस्स अह मे नून पुब्बे अत्ता सो एतर्हि नत्थीति।

भावार्थ--एक दफे वच्छगोत्र नामका परिव्राजक साधु जहां भगवान बुद्ध थे वहां गया। जाकर भगवानके साथ मिला। आनंदमय कथा करके एक किनारे बैठा। तब वच्छगोत्रने भगवानसे यह प्रश्न किया कि हे गौतम! **क्या आत्मा है**? ऐसा पूछनेपर भगवानने कुछ उत्तर न दिया, मौन रहे। फिर उसने पूछा कि हे गौतम! **क्या आत्मा नहीं है**? दूसरी वार भी भगवान मौन रहे, उत्तर न दिया। तब वच्छगोत्र आसनसे उठकर चला गया।

वच्छगोत्रके कुछ देर जानेके पीछे श्रीयुत भिक्षु आनन्दने भगवानसे कहा कि आपने हे भगवान ! वच्छगोत्रके प्रश्नका उत्तर क्यों नहीं दिया ! तब भगवान् गौतमने कहा कि हे आनंद ! यदि मैं वच्छगोत्रके इस प्रश्नका कि क्या आत्मा है उसीके समान उत्तर देता कि आत्मा है तब हे आनंद जो श्रमण तथा ब्राह्मण **शाश्वतवादी** अर्थात् **नित्यवादी** हैं उनका साथी होना पड़ता ।

और यदि हे आनंद ! वच्छगोत्रके इस प्रश्नका कि क्या आत्मा नहीं है उसीके समान मैं उत्तर देता कि आत्मा नहीं है तो हे आनंद ! जो श्रमण या ब्राह्मण **उच्छेदवादी** या अनित्यवादी हैं उनका साथी होना पड़ता ।

यदि हे आनंद ! मैं वच्छगोत्रके इस प्रश्नका कि क्या आत्मा है उसीके समान आत्मा है, ऐसा कहता तो क्या यह मेरा कहना इस बातके अनुकूल पड़ता । (जो मैंने कहा है कि) ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सर्व धर्म अनात्मा हैं । (आनंद कहते हैं) हे भगवान् अनुकूल नहीं पड़ता ।

और यदि हे आनंद ! वच्छगोत्रके प्रश्नका कि क्या आत्मा नहीं है, मैं उसीके समान कह देता कि आत्मा नहीं है तो हे आनंद ! मूढ़ बुद्धि वच्छगोत्रके और भी भय व मूढ़ता होजाती कि मैं पहले आत्माको मानता था सो आत्मा नहीं है ।

नोट—ऊपरके वार्तालापपर बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेकी जरूरत है । गौतम बुद्धने जो आत्माके सम्बन्धमें वच्छगोत्र परिव्राजकको कुछ उत्तर न दिया किंतु मौन रहे उसका कारण यही दिखता है कि गौतम वादानुवादकी चर्चामें अपनेको उलझाते न थे । दूसरा कारण यह दिखता है कि उन्होंने मौन रहकर यह बता दिया कि आत्माका ज्ञान स्वानुभवसे होता है । मात्र कहने सुननेसे नहीं होता ।

अपने निकट शिष्य आनंदको जो पहले उत्तर दिया उससे साफ झलकता है कि गौतम आत्माको न सर्वथा नित्य मानते थे और न सर्वथा अनित्य मानते थे। वे नित्य एकांत व अनित्य एकांत दोनोंके विरुद्ध थे। जैन दर्शनकी तरह आत्माको स्वभावकी अपेक्षा नित्य तथा परिणमनशील होनेकी अपेक्षा अनित्य मानते थे। दोनों बातोंको माननेहीसे वस्तु जगत्में कार्यकारी होती है। यदि सर्वथा नित्य माने तो कोई दशा न पलटेगी, यदि सर्वथा अनित्य माने तो वह रह नहीं सक्ती। दोनों बातोंका मानना ही सत्य है। स्वामी समंतभद्रने आप्त-मीमांसामें दोनों एकांत माननेसे क्या दोष आता है सो नीचे लिखे श्लोकोंमें बताया है—

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते।
प्रागेव कारकाभावः क्व प्रमाणं क्व तत् फलं ॥३७॥
क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसंभवः।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारंभः कुतः फलं ॥४१॥

भावार्थ—यदि वस्तुको सर्वथा कूटस्थ नित्य अपरिणमनशील माना जावे तो उसमें कोई अवस्था नहीं पैदा होसक्ती है। पहले ही कारकका अभाव होनेसे कर्ता कारण आदि न बनेंगे तब प्रमाण व प्रमाणका फल कुछ न रहेगा। ज्ञानका परिणमन न होगा। यदि वस्तुको सर्वथा क्षणिक उच्छेदरूप माने तो परलोक आदि न बनेगा, न प्रत्यभिज्ञान आदि बनेगा, न कार्य कोई आरम्भ हो सकेगा, न उसका कोई फल ही होसकेगा। वस्तु स्याद्वादनयसे सिद्ध होती है। किसी अपेक्षा नित्य है, किसी अपेक्षा अनित्य है। यही भाव बुद्ध वाक्यका प्रगट होता है। आगे चलके जो बुद्धने आनन्दको कहा है उसका भाव यह है—जितने संसारावस्थामें प्रगट आत्माके विभावमात्र हैं वे सब अनित्य हैं। ऐसा वचन होते हुए आत्मा है कहनेसे आत्माके

विभावोंको नित्य माने जानेका प्रसंग आजाता। यदि उसको आत्माका अभाव कहा जाता तो वह मूढ़ होकर बिलकुल नास्तिक बन जाता। यह संयुक्त निकायका वर्णन यह सिद्ध करता है कि गौतम बुद्धको आत्माका स्वरूप उसी प्रकारका मान्य था जैसा जैन लोग मानते हैं। वास्तवमें जगतके प्रत्येक पदार्थका ऐसा ही स्वरूप है। सुवर्णका दृष्टांत लिया जाय तो विदित होगा कि यदि सुवर्ण सर्वथा नित्य माना जावे तो उससे गहने नहीं बन सके। यदि सर्वथा नाशवंत माना जावे तो वह न ठहर सक्ता है और न उससे कोई काम लिया जासक्ता है। वह व्यर्थ ही होगा। इसलिये सोनेमें जो कुछ है उसकी अपेक्षा सोना नित्य है। जबकि अवस्थाके बदलनेकी अपेक्षा अनित्य है। यदि एकांत ही बात मानी जाय तो सोनेका कोई उपयोग नहीं किया जा सक्ता है।"

(२) संयुक्तनिकाय (खुद्दो १२) में ये पाली वाक्य हैं—

तस्मातिह आनन्द अत्तदीपा विहरथ अत्तसरणा।
अनण्णसरणा धम्मदीपा धम्मसरणा अनण्णसरणा॥

भावार्थ—इसलिये हे आनन्द! आत्मारूपी द्वीपमें विहार कर, आत्मा ही शरण है, दूसरा कोई शरण नहीं है। धर्म ही द्वीप है, धर्म ही शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।

नोट—इन वाक्योंमें भी यही भाव झलकाता है कि शुद्ध आत्माकी शरण ग्रहण करो वही द्वीप है या शुद्ध आत्मस्वभावरूप धर्मकी शरण ग्रहण करो वही द्वीप है।

(३) मज्झिमनिकाय सुत्त प्रथम मूलपरियायसुत्त इस सूत्रमें पर पदार्थ आत्मा है, ऐसा जो मानता है वह अज्ञानी है, जो परपदार्थको आत्मा नहीं मानता है वही ज्ञानी है। इसका कुछ नमूना पाली वाक्योंका यह है—

" भगवा एतदवोच–आदिय धम्मस्स अकोविदो....पथवीं पथवितो संजानाति, पथविं पथवितो संज्ञत्वा पथविं मण्णति, पथवियां मण्णति, पथवितो मण्णति, पथविं मे ति मण्णति, पथविं अभिंनदति; तं किस्सहेतुः अपरिज्ञातं तस्साति वदामि। आपं....तेजं....वायं....भूते...देवे....आकासानं चायतनं....विज्ञानं चायतनं....दिट्ठं....सुतं....अभिंनदति तं किस्सहेतु अपरिज्ञातं तस्साति वदामि। योपि सो भिक्खवे भिक्खु....अनुत्तरं योग खेमं पत्थयमानो विहरति सोवि पथविं पथवितो अभिजानाति, पथविं पथवितो अभिज्ञाय पथविं मा मणिण, पथविं या मा मण्णि, पथवितो मा मण्णि, पथविं मे ति मा मण्णि, पथविं मा अभिनंदति; तं किस्स हेतु; परिज्ञेयं तस्साति वदामि....आपं....तेजं....वायं....भूते....देवे....आकाशानं चायतनं....विज्ञानं चायतनं....दिट्ठ....सुतं....मा अभिनंदति; तं किस्सहेतु; परिज्ञेयं तस्साति वदामि।

भावार्थ–भगवानने यह कहाः–आर्य धर्म (यथार्थ धर्म)में जो चतुर नहीं है सो पृथ्वीको पृथ्वी रूप जानता है। पृथ्वीको पृथ्वी रूप जानकर पृथ्वीको (अपरूप) मानता है। पृथ्वीमें (अपनापन) मानता है, पृथ्वीसे (अपना हित) मानता है, पृथ्वी मेरी है ऐसा मानता है। पृथ्वीका स्वागत करता है। इसी तरह जलको, अग्निको, वायुको, सर्व प्राणियोंको, देवोंको, आकाशको, विज्ञान (अशुद्धज्ञान)को देखे हुए पदार्थोंको, सुने हुए पदार्थोंको अपना मानकर अभिनन्दन करता है। इसका कारण यह है कि वह अज्ञानी है ऐसा कहता हूं। तथा हे भिक्षुओं! जो भिक्षु श्रेष्ठ व ध्यानगम्य निर्वाणको पहचानता हुआ विहार करता है वह भी पृथ्वीको पृथ्वी रूप जानता है, पृथ्वीको पृथ्वी रूप जानकर पृथ्वीको (आपरूप) नहीं मानता है, पृथ्वीमें (अपनेको) नहीं मानता है, पृथ्वीसे (अपना हित) नहीं मानता है। पृथ्वीको अपना नहीं मानता है। पृथ्वीका स्वागत नहीं करता है।

इसका कारण यह है कि वह ज्ञाता है ऐसा कहता हूं। इसी तरह जल, अग्नि, वायु, प्राणियोंको, देवोंको, आकाशको, विज्ञानको, देखे हुएको, सुने हुएको स्वागत नहीं करता है इसका कारण यह है कि वह ज्ञाता है ऐसा कहता हूं।

नोट—इस कथनसे साफ झलकता है कि निर्वाण स्वरूप शुद्ध आत्मा है इसके सिवाय सर्व भिन्न है आत्मा नहीं है ऐसा भाव इस सूत्रका है। यही प्रज्ञा या विवेक या भेद विज्ञान है। यही निर्वाणका उपाय है। ऐसा ही कथन श्री कुंदकुंदाचार्यने समयसारमें किया है—

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइए।
देवमणुवेपि सव्वे पुण्णं पावं अणेयविहं ॥ २८५ ॥
धम्माधम्मं च तहा जीवा जीवे अलोगलोगं च।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥२८६॥
जा संकप्पवियप्पो ता कम्मं कुणइ असुहसुहजणयं।
अप्पसरूवा रिद्धी जाय णहियए परिप्फुरई ॥२८८॥

भावार्थ—अज्ञानमई रागादिके कारण यह जीव सर्व ही तिर्यंच, नारक, देव, मानव, अनेक प्रकार पुण्य व पापको अपना कर लेता है। इसी तरह धर्म, अधर्म, जीव, अजीव, लोक, अलोक सबको मूढ़-तासे अपना कर लेता है, अर्थात् उनमें अपनापना मान लेता है यह संकल्प विकल्प जबतक बना रहता है तबतक यह जीव शुभ व अशुभ कर्मको पैदा करनेवाला कर्म किया करता है। जबतक आत्म स्वरूपकी ऋद्धि हृदयमें नहीं स्फुरायमान होती है। यहां भी यह भाव है कि शुद्ध आत्माके सिवाय अन्य सब आत्मा नहीं है। अन्यको अपनाना मूढ़ भाव है।

(४) मज्झिमनिकाय अलगद्दूपम सुत्त २२में कथन है कि सर्वपर धर्म आत्मा नहीं है। पांच इंद्रियों व मनके संयोगसे जो ज्ञान दर्शन

वेदना, व चित्तके विकारादि व शरीरादि होते हैं उन सबको रूप (शरीर body), वेदना (सुख दुख अनुभव feeling), संज्ञा (इन्द्रिय ज्ञान perception) संस्कार या संखार (मनके विकल्प mentation or mind activities) विज्ञान (इंद्रिय व मनद्वारा ज्ञानके विचार consciusness) में गर्भित करके इन पांच स्कंधोंमें आत्मापनेकी बुद्धिका निराकरण किया है। इस सूत्रके कुछ उपयोगी वाक्य हैं—

गौतमबुद्ध कहते हैं—"तं किं मन्नाथ भिक्खवेः रूपं निच्चं वा अनिच्चं वाति" साधु जबाब देते हैं—"अनिच्चं भंते" (गौतम) 'यंपन अनिचं दुक्खं वा तं सुखं वा ति' (साधु) दुक्खं भंते। (गौतम) यं यन अनिच्चं दुःखं विपरिणाम धम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुंः एतं मम, एसोऽहं अस्मि, एसो मे अत्ताति। (साधु) नोहि एतं भंते। (गौतम) तं कि मन्नाथ भिक्खे वेदना निच्चा वा अनिच्चाव:वाति संज्ञा....निच्चा वा अनिच्चा वाति....संखाए निच्चा वा अनिच्चा वाति....विज्ञानं निच्चं वा अनिच्चं वाति....तस्मादिह भिक्खवे यं किंचिरूपं अतीतानागत पच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओलारिकं वा सुखुमं वा, हीनं वा पणीतं वा, यं दूरे संतिके वा, सव्वं रूपंः—न एतं मम, न एसो हंऽस्मि, न मे सो अत्ताति—एवं एतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठव्वं। या काचि वेदना....या काचि संज्ञा....ये केचि संखारा....यं किं च विज्ञानं....दट्ठव्वं।

एवं पस्सं भिक्खवे सुतवा अरियसावको रूपस्मिं निब्बिदंति, वेदनाय निब्बिदति, संज्ञाय निब्बिदति, संखारेसु निब्बिदति, विज्ञानस्मिं निब्बिदति; निब्बिदं विरजति, विरागा विमुंचति, विमुत्तस्मिं विमुत्तं इति ज्ञानं होति; खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ता याति पजानाति तस्मादिह भिक्खवे यं न तुम्हाकं तं पजहथ तं वो पहीनं दीघरत्तं हिताय सुखाय भविस्सति,

किं च भिक्खवे न तुम्हाकं:–रूपं भिक्खवे न तुम्हाकं....वेदना....न तुम्हाकं....संज्ञा....न तुम्हाकं....संखारा....न तुम्हाकं....विज्ञानं....न तुम्हाकं....तं किं मञ्ञाथ भिक्खवे: यं इमस्मिं जेतवने तिणकट्ठ साखा पलासं तं जनो हरेय्य वा डहेय्य वा यथापच्चपं करेय्य; अपि तु तुम्हाकं एवं अस्स:–अम्हे जनो हरति वा डहति वा यथा पच्चपं वा करोतीति–नो हि एतं भंते–तं किस्सहेतु–न हि नो एतं भंते अत्ता वा अत्तनीयं वाति एवं खो भिक्खवे यं न तुम्हाकं तं पजहथ....सुखाय भविस्सति एवं स्वाक्खातो भिक्खवे मया धम्मो ।

भावार्थ–हे भिक्षुओ ! तुम क्या मानते हो, क्या रूप नित्य है या अनित्य । (साधु)–हे भगवान! अनित्य है । (गौ०) जो अनित्य है वह दु:खरूप है या सुखरूप है । (साधु) हे भगवान, दु:खरूप है । (गौ०) जो अनित्य है, दु:खरूप है, परिणमन स्वभाववाला है क्या उसमें यह देखना उचित है कि यह मेरा है, इस रूप में हूं, ऐसा मेरा आत्मा है । (सा०) हे भगवान, नहीं । (इसी तरह पूछा है) वेदना नित्य है या अनित्य, संज्ञा नित्य है या अनित्य, संस्कार नित्य हैं या अनित्य, विज्ञान नित्य है या अनित्य, (ऊपर कहे प्रमाण साधुओंने कहा कि ये सब अनित्य हैं, दु:खरूप हैं । इनमें मेरापना या इस रूप में हूं या ऐसा मेरा आत्मा है नहीं माना जासक्ता ।) (फिर गौतम कहते हैं)–इसलिये हे साधुओ ! जो कुछ रूप (शरीर) भूत, भविष्य व वर्तमानमें अंतरंग या बहिरंग है, स्थूल है वा सूक्ष्म है, हीन है वा उत्तम है, दूर है वा निकट है, यह सर्वरूप, यह मेरा नहीं है, न इस रूप में हूं, न यह मेरा आत्मा है । इस प्रकार यथार्थ उत्तम प्रज्ञा (भेदविज्ञान) के लिये देखना चाहिये । इसी प्रकार जो कुछ वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तीन कालवर्ती है वह सब मेरा नहीं है ऐसा देखना चाहिये । हे साधुओं ! श्रुतज्ञ

आर्य श्रावक ऐसा देखता हुआ रूपसे वैराग्यवान होजाता है, वेद-नासे वैराग्यवान होजाता है, संज्ञासे वैराग्यवान होजाता है, संस्कारोंसे वैराग्यवान होजाता है, विज्ञानसे वैराग्यवान होजाता है, वैरागी होकर राग छोड़ देता है। विराग भावसे उनसे मुक्त होजाता है। मुक्त होकर मैं मुक्त हुआ ऐसा जानता है। (यह अनुभव करता है) जन्म नष्ट हुआ, ब्रह्मचर्य पूर्ण हुआ। जो करना था सो कर लिया, मेरा कोई यहांपर नहीं है ऐसा जानता है।....इसलिये हे साधुओं! जो तुम्हारा नहीं है उसको त्यागो, ऐसा करनेसे दीर्घरात तक तुम्हारे लिये हित व सुख होगा। हे साधुओ! तुम्हारा क्या क्या नहीं है। यह रूप, यह वेदना, यह संज्ञा, ये संस्कार, यह विज्ञान तुम्हारा नहीं है। हे साधुओ! तुम क्या मानते हो। यदि कोई इस जेतवनमें तृण, काष्ठ, शाखा, पत्ते चुराले, दादे वा जैसा तैसा करे तो क्या तुमको ऐसा होगा कि इस जनने मुझे हरा, मुझे दाहा, या मुझे चाहे जैसा किया। हे भगवान्! हमें ऐसा नहीं होगा। क्यों ऐसा नहीं होगा। हे भगवान्! न ये आप हैं न यह अपना है। इसी तरह हे साधुओ! जो तुम्हारा नहीं है उसको छोड़ो। यही तुम्हारे सुखके लिये होगा। इस तरह हे भिक्षुओ! मेरा अपना कहा हुआ धर्म है।

नोट—इस ऊपर लिखे भेदविज्ञान या प्रज्ञाके कथनको पढ़के यही बात समझमें आती है कि निर्वाण अवस्थामें जो शुद्ध आत्मा पदार्थ रह जाता है वही मैं हूं। ऐसा अनुभव एक प्रज्ञावानको करना चाहिये। शेष सर्व भावोंको, पदार्थोंको, विकल्पोंको, क्षणिकज्ञानोंको, सुखदुःखोंको, अनेक प्रकारकी आत्मा सम्बंधी कल्पनाओंको छोड़ देना चाहिये। इस कथनसे शुद्ध आत्माकी सत्ता भले प्रकार सिद्ध होती है। श्री कुंदकुंदाचार्यजीने भी समयसारमें ऐसा ही भेदविज्ञान बताया है—

अहमेदं एदमहं । अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं । सचित्ताचित्तमिस्सं वा ॥ २५ ॥
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालह्मि ।
होहिदि पुणो वि मज्झं । अहमेदं चावि होस्सामि ॥२६॥
एवं तु असंभूदं आद वियप्पं करेदि सम्मूढो ।
भूदत्थं जाणंतो । ण करेदि दु तं असम्मूढो ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो कुछ अपने आत्मासे भिन्न परद्रव्य है, वह सचित्त हो या अचित्त हो या मिश्र हो उन सबमें यह मैं हूं, मैं इस रूप हूं, मैं इसका हूं, यह मेरा है, यह पहले मेरा था, मैं इस रूप पहले था, यह मेरा होगा, मैं इस रूप हूंगा ऐसा मिथ्या अपनेपनेका भाव अज्ञानी करता है। जो मूढ़ नहीं है वह यथार्थ जानता हुआ ऐसा भाव नहीं करता है। यहां सचित्त वस्तुएं हैं—स्त्रीपुत्रादि, शिष्य आदि, रागद्वेषादि, सिद्ध भगवान आदि। अचित्त हैं—सुवर्णादि, पुस्तकादि, कार्मण, तेजस व बाह्य शरीर, पुद्गलादि पांच द्रव्य मिश्र हैं। वस्त्रादि सहित स्त्री पुत्रादि, पुस्तक सहित शिष्यादि, चार गति नरक, देव, तिर्यंच, मनुष्य, इंद्रियसुख आदि अशुद्ध ज्ञानादि। तात्पर्य यह है कि संसार सम्बन्धी सर्व पदार्थ या भाव या अवस्थाएं या अन्य सत्ताधारी सर्व जीवादि पदार्थ पर हैं, पर थे, पर रहेंगे। मैं इन सबसे भिन्न एक मुक्तरूप शुद्ध पदार्थ हूं, यही अनुभव भेदविज्ञान है।

(५) संयुक्तनिकाय (४) सलापतनवग्गो।

(१) अनिच्चं।

गौतम कहते हैं—'चक्खुं भिक्खवे अनिच्चं यद् अनिच्चं तं दुःखं। य दुःखं तद् अनत्ता। यद् अनत्ता तं न एतं मम ने सोऽहं

अस्मि न मे सो अत्ताति एवं एतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। सोतं। अनिच्चं, घानं अनिच्चं, जिह्वा अनिच्चं, कायो अनिच्चो, मनो अनिच्चो।

भावार्थ—"यह चक्षु है साधुओ अनित्य है। जो अनित्य है वह दुःख है, जो दुःख है वह अनात्मा है। जो अनात्मा है वह मेरा नहीं है न उस रूप में हूं न वह मेरा आत्मा है, इस तरह यथार्थ सम्यक् प्रज्ञाके लिये जानना चाहिये। इसी तरह श्रोत अनित्य है, घ्राण अनित्य है, जिह्वा अनित्य है, शरीर अनित्य है, मन अनित्य है।"

नोट—इस कथनसे साफ प्रगट है कि मैं कोई और हूं, पांच इंद्रिय व मन मैं नहीं हूं। प्रज्ञा तब ही संभव है जब अनित्य व दुःखमय पदार्थोंके सिवाय कोई और हो। पांच इंद्रिय व मनसे अतीत जो कोई है वही निर्वाण है, वही शुद्ध आत्मा है। ऐसा ही जैनाचार्य पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः॥ ३०॥

सर्व इंद्रियोंको संयममें लाकर जो कुछ तत्व भीतर अंतरदृष्टिमें झलकता है वही परमात्माका स्वरूप है।

(६) मज्झिमनिकाय भय भेरव सुत्त चतुर्थ, इसमें एक स्थलपर ये वाक्य हैं—

"पञ्ञाय सम्पन्नोऽहं स्मि, ये हि वो अरिया पञ्ञा संपन्ना अरञ्ञे। ते सं अहं अञ्ञतमो-एतं अहं ब्राह्मण पञ्ञा संपदं अत्तनि संपस्समानो भिय्योपल्लोमं अरञ्ञे विहाराय।"

मैं प्रज्ञासे संपूर्ण हूं। जो कोई आर्य प्रज्ञा संपन्न वनमें विहार करते हैं उनमेंसे मैं एक हूं। हे ब्राह्मण! मैं इस प्रज्ञा सम्पदाको अपनेमें देखता हुआ भय रहित वनमें भ्रमण करता हूं।

नोट—यहां प्रज्ञासे यही भाव है कि जो कुछ अनित्य दुःखरूप इंद्रिय आदि हैं वह सब अनात्मा है उससे मैं भिन्न हूं। अपनेमें प्रज्ञा सम्पदाको देखता हुआ इसका यही भाव झलकता है कि अपने शुद्ध आत्मामें अपने स्वरूपको यथार्थ देखता हुआ। यदि आत्माकी सत्ता न हो व निर्वाणमें आत्मा न हो तौ यह कथन कुछ अर्थ नहीं रखता।

प्रज्ञा विवेक बुद्धिको या भेद विज्ञानको कहते हैं। जैन ग्रन्थ श्री समयसारजीमें यही स्वरूप कहा है—

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झपरित्त णादव्वा॥ ३१९॥

भावार्थ—प्रज्ञासे जो आत्मा ग्रहण करने योग्य है वही मैं निश्चयसे (शुद्ध आत्मा हूं) बाकी जो भाव हैं वे सब मुझसे भिन्न हैं ऐसा जानना चाहिये।

Some sayings of the Budha by F. L. Woodward M. A. 1915.

नामकी पुस्तकमें आत्माकी सत्ता झलकानेवाले वाक्य ये हैं—

P. 188 Impermanent, alas! are all compound things. Their nature is to rise and fall. When they have risen, they cease. The bringing of them to an end is Bliss.

[Digli N. II 198].

भावार्थ—सर्व स्कंध अनित्य हैं। इनका स्वभाव उत्पाद व व्यय रूप है। जब वे पैदा हुए हैं वे अवश्य अस्त होंगे। उन सबका अन्त करना ही आनन्द है।

नोट—इससे भी प्रगट है कि सर्व अन्य संस्कारोंके अभावसे जो आनंदरूप रह जाता है वही निर्वाण है, वही शुद्ध आत्मा है।

P. 190–Than make thyself an island of defence strive quich; be wise, when all thy taints of dirt and dust are blown away.

The saints shall greet thee entering the Happy land [Dhammapada VV 235 and 40].

भावार्थ–तब अपनेको रक्षा द्वीप बनाओ। तीव्र उद्योग करो। बुद्धिमान हो। जब तेरे मैल व धूलके रंग धुल जायंगे तब साधुगण तुझे आनन्द स्थानमें प्रवेश करते हुए स्वागत करेंगे।

नोट–यहां जिसके मैल धुलेंगे, जो रक्षाद्वीप है वही शुद्ध आत्मा है, वही निर्वाण है।

P. 300–Rouse thou the self by self, by self examine self. Thus guarded by the self, and with thy mind Intent and watchful, thus, O Mendicant! Thou shall live happilly [Dhammapada VV 376-81].

भावार्थ–अपनेसे अपनेको उठाओ, अपनेसे अपनी परीक्षा करो, इस तरह अपने आपसे रक्षित होता हुआ और अपने चित्तको स्थिर व स्मृतिमान करता हुआ, हे भिक्षु! तू आनन्दसे जीवन बिताएगा।

नोट–यहांपर अपनेसे मतलब आत्मासे ही झलकता है। जैन ग्रंथ समयसारमें यही कहा है—

> एदह्मिरदो णिचं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदह्मि।
> एदेण होहि तित्तो तो होहदि उत्तमं सोक्खम्॥ २१९॥

भावार्थ–इसी ही आत्मामें रत हो। इसीसे नित्य संतुष्ठ हो। इसीसे तृप्त हो तो तुझे उत्तम सुख होगा।

The doctrine of the Budha by George Grimms 1926.

मेंसे आत्मा सम्बन्धी वाक्य।

(१)

Page 119-Which is of greater importance, O youths, to search for this woman or to search for your "I" [Mahovagga I. 14].

भावार्थ-हे युवकों ! इन दोनोंमें कौनसी बात जरूरी है । एक तो इस स्त्रीकी खोज करना, दूसरे अपने आपकी खोज करना ।

नोट-यहां भी आत्माकी सत्ता झलकती है ।

P. 120-124-It must, from the outset, inspires us with confidence in the Budha that he prefers the sufer indirect way. 'This belongs not to me' This I am not, this is not myself. The Budha has drawn this dividing line between *atta* and *anatta*, between I and not I with great exactness. What I perceive originating and perishing, that cannot be my I, my ego. On one side stands I, on the other, the whole gigantic cosmos, the duration originations, dissolution of which I recognize in and through my personality.

भावार्थ-प्रथम हीसे यह बात बुद्धकी तरफसे हमें जंचती है कि वे आत्माके समझानेके लिये घुमाओंका मार्ग ग्रहण करना पसंद करते हैं जो मार्ग बहुत दृढ़ है । " यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मुझरूप नहीं है । बुद्धने आत्मा और आत्माके मध्यमें भेद ज्ञानकी रेखा खींच दी है । जिस वस्तुको मैं उत्पत्ति होते व विनाश होते देखता हूं वह मैं या मेरा आत्मा नहीं होसक्ता है । एक तरफ मैं खड़ा हूं, दूसरी तरफ सर्व वडा लोक है, जिसको मैं अपने द्वारा उत्पाद व्यय स्थिति रूप होता देखता हूं ।

P. 135-This thought, wisely considered, alone must make it clear that I am some thing standing behind life, behind the five groups, some thing only adhering, only clinging to life and to the five groups constituting personality, as to some thing alien which I think desirable.

P. 139-The soul is an immaterial and therefore spiritual therefore simple, therefore imperishable substance. Notions are therefore nothing originally real, but an artificial product of reason distilled from the world given in perception.

भावार्थ-यदि भले प्रकार विचार किया जायगा तो इसी भाव मात्रसे यह बात साफ होजायगी कि मैं कोई वस्तु जीवनके पीछे हूं या पांच स्कंधोंके पीछे हूं। कोई चीज है जो मात्र इस जीवनमें साथ लगी हुई है। जो पांच स्कंधमय व्यक्तित्वके साथ लगी हुई है और वह कोई चीज ऐसी है जो हमारे विचारसे बाहर है। वह आत्मा है जो अमूर्तीक है, इसलिये चैतन्यमय है, इसलिये सदा एक है, इसलिये अविनाशी द्रव्य है। संकल्पविकल्प स्वयं असली चीज नहीं हैं किन्तु बाहर दुनियांके सम्बन्धमें तर्कके बने हुए बनाव हैं।

नोट-वास्तवमें जैनसिद्धांत यही बताता है कि यह आत्मा ऐसा ही है जिसका शुद्ध स्वरूप निर्वाण होनेपर झलकता है।

समयसारकलशमें जैनाचार्य अमृतचन्द्रसूरि कहते हैं—

आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं।
विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥१०-१॥
अनाद्यनंतमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम्।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥ ९-२ ॥

भावार्थ-आत्माका स्वभाव पर आत्माके स्वभावसे भिन्न है, अपने गुण स्वभावोंसे वह परिपूर्ण है, आदि व अंत रहित अविनाशी है-एक है, संकल्प विकल्प जालोंसे शून्य है ऐसा प्रकाशमान् शुद्ध निश्चयनयसे दिखता है। यह जीव अनादि अनंत, निश्चल है। आप आपके अनुभवमें आने योग्य है, प्रगट है, स्वयं चैतन्यमय आप चमक रहा है। यही निर्वाण प्राप्त आत्माका स्वरूप है।

P. 178—No eye can see it, no ear can hear it, no nose smell it, no tongue taste it, no touching touch it, no brain think it any more, and because the subjective within as thus lies beyond all perception—" there is a refuge beyond this sensual world :(M. I. 38)

भावार्थ—जिसे आंख देख नहीं सक्ती, जिसे कान सुन नहीं सक्ते, जिसे नाक सूंघ नहीं सक्ती, जिसे जिह्वा चाख नहीं सक्ती, जिसे स्पर्श छू नहीं सक्ता, जिसे मन विचार नहीं सक्ता, क्योंकि वह सर्व विकल्पसे अतीत है। इस इंद्रियगम्य जगतसे बाहर वह एक शरणकी जगह है। नोट—यही आत्माका स्वरूप है।

(IX) Sacred book of the East—

Vol. XI (1881) translated by T. W. Rys Davids.

(९) महापरिनिव्वान सुत्त।

Maha Pari Nibhan sutta—

Chapter II.

33. *Therefore, O Anand, be ye lamps to yourselves. Be ye refuge to yourselves.* Be take yourself to no external reufge. Hold fast as a refuge to the Truth. Look not for refuge to any one besides yourself.

35. Whoever shall be a lamp unto themselves, shall reach the very topmost Height.

बुद्ध कहते हैं—ऐ आनंद! इसलिये अपने लिये आप दीपक बनो, अपनेमें ही शरण ग्रहण करो, बाहर किसीकी शरण मत लो। दीपकके समान सत्यको दृढ़तासे पकड़े रहो, अपने सिवाय दूसरेकी शरण मत देखो। जो कोई अपनेको आप दीपक होगा वह अतिशय उच्चतापर पहुंच जायगा।

नोट–इससे शुद्ध आत्मस्वरूपका झलकाव होरहा है। जैनाचार्य योगेन्द्रदेव योगसारमें यही कहते हैं—

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहेहि।

पर अप्पा जउ मुणिहि तुहुं तहु संसार भमेहि ॥ १२ ॥

भावार्थ–अपनेसे अपनेको यदि तू अनुभव करेगा तू निर्वाणको पावेगा। यदि अपनेसे भिन्न किसीको आप जानेगा तो संसारमें भ्रमण करेगा।

---

(१०) धम्मपद।

Sacred book of the East

Vol..X 1881 by F. Maxmuller Dhammapada.

Chap.: XII self—

P. 160–Self is the Lord of self, who else could be the Lord! With self well subdued, a man finds a lord such as few can find.

P. 165–By oneself the evil is done, by oneself one suffers, by oneself the evil is left undone, by oneself one is purified. Purity and impurity belong to oneself. No one can purify another.

भावार्थ–आत्मा ही अपना स्वामी है, दूसरा कौन स्वामी होसक्ता है। जो अपने आपको संवरमें रखता है वह ऐसे स्वामीको पालेता है जिसे थोड़े ही पासक्ते हैं। अपनेहीसे बुराई की जाती है, आप ही दुःखको सहता है, आप ही बुराईको छोड़ता है, आपहीसे आप पवित्र होता है। पवित्रता और अपवित्रता अपने आधीन है, दूसरा दूसरेको पवित्र नहीं कर सक्ता है।

नोट–यहां भी आत्माका भाव झलकता है। संसारकी अवस्थामें

पंच स्कंधोंके कारण अशुद्ध होरहा है वही पंच स्कंधोंके छूटनेपर शुद्ध होजाता है, वही निर्वाण है।

जैनाचार्य श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव च।

गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥ ७५ ॥

भावार्थ–यह आत्मा आप ही अपनेको संसारमें भ्रमण कराता है व आप ही अपनेको निर्वाणमें लेजाता है। इसलिये निश्चयसे आत्माका गुरु या स्वामी आत्मा ही है, और कोई नहीं है।

Chap. XVIII. Impurity.

P. 238–Make thyself an island, work hard, be wise, when thy impurities are blown away, and thou art free from guilt, thou will not enter again into birth and decay.

भावार्थ–अपने आपको द्वीप बनाओ, खूब परिश्रम करो, प्रज्ञावान बनो, जब तेरी अशुद्धियां दूर होजायँगी और तू अपराधसे मुक्त होजायगा, तू पुनः जन्म मरणमें प्रवेश नहीं करेगा।

Chap. XXV The Bhikshu.

P. 369–O Bhikshu! Empty this boat! if emptied, ii will go quickly; having cut off passion and hatred, thou wilt go to Nirvana.

P. 379–Rouse thyself by thyself, examine thyself by thyself, thus self-protected and attentive, will thou live happily, O Bhiksu.

P. 380–For self is the Lord of self, self is the refuge of self, therefore curb thyself, as the merchant curbs the good horse.

भावार्थ–ऐ भिक्षु! इस नौकाको खाली करो, यदि खाली होजायगी

वह शीघ्र जायगी । कषाय और द्वेषको काट करके तू निर्वाणमें पहुं-चेगा । अपनेसे अपनेको उठाओ, अपनेसे अपनी परीक्षा करो, इस तरह आत्मरक्षित और ध्यानमय होता हुआ तू आनन्दसे रहेगा । ऐ भिक्षु ! क्योंकि आप ही आपका स्वामी है, आप ही आपकी शरण है। इसलिये अपनेको वशमें रक्खो, जैसे व्यापारी अच्छे घोड़ेको वशमें रखता है ।

Tuvataka Sutta of Sutta Nipata.

by Fanshold (1881).

(११) तुवाटका सुत्त ।

$\overset{2}{916}$-Let him completely cut off the root of what is called **Prapancha** (Delusion), thinking "I am wisdom" :so said Bhagwat (all the desires that arise inwardly, let him learn to subdue them, always being thoughtful.

भावार्थ–भगवतने कहा–उसे जो कुछ प्रपंच कहलाता है उसकी जड़ काट देनी चाहिये। यह अनुभवकर कि "मैं ज्ञान हूं"–उन सब इच्छाओंको जो भीतर उठती हैं उसे उन्हें जीतना सीखना चाहिये, सदा ही विचारवान रहना चाहिये।

नोट–यहां भी आत्माका संकेत होरहा है ।

Pinjaya Manava Pukkha.

$\overset{11}{1133}$. As the bird, having life the bush, takes up his abode in the fruitful forest, even so, I having left men of narrow views have reached the great sea, like the *Hansa*.

इसके पाली वाक्य हैं—

दिजो यथा कुब्बनकं पहाय,
बहुफलं काननं आवसेय्य ।

एवं वि अहं अप्पदस्से वहाय,
महोदधिं हंसोरिव अज्झपत्तो ॥

भावार्थ–जैसे पक्षी झाड़ी छोड़कर फलवाले वनमें अपना निवास करता है वैसे ही मैं संकुचित दृष्टियोंको त्याग कर हंसके समान महा समुद्र पर पहुंच गया हूं।

नोट–यहां शुद्ध आत्माका ही संकेत है।

---

(१२) विशुद्ध मग्ग बुद्ध घोष।

Path of Purity.

by A. Maung Tui P. I & II

Page 342—The whole wide world we traverse with our thought,
And nothing find to me more dear than soul
Since, aye, so dear the soul to others is
Let the soul-lover harm no other man.

भावार्थ–हमने अपने विचारसे इस सर्व जगतमें भ्रमण किया और यह पाया कि आत्माके सिवाय और कोई पदार्थ मुझे प्यारा नहीं है। और क्योंकि इसी तरह यह आत्मा दूसरोंको भी प्यारा है, आत्मप्रेमीको उचित है कि किसी भी मानवको हानि न पहुंचावे।

नोट–इसमें भी आत्माका संकेत व्यक्त होता है।

---

(13) The Life of Budha.

by Edward J. Thomas 1927.

Page 183—The ascetic Malinikayapatta is said to have asked many questions, one of which was whether a Tathagata exists after death. Budha refused to say whether he exists, whether he does not exist.

Page 189—Dialogue between Nun Khema (wife of Srenika) and King Pasenccdi—She says " Reverend one, the ocean is deep, immeasurable, unfathomable, even so, king, that body by which one might define Tathagata is relinguished, cut off at the root, unrooted like a palm tree, brought to nought, not to rise in future. Freed from designation of body a Tathagata is deep, immeasurable and unfathomable like ocean.

भावार्थ—साधु मालिंकव पुत्तने वुद्धसे कई प्रश्न किये उनमें एक यह भी था कि तथागत मरणके पीछे रहते हैं या नहीं? गौतमबुद्धने कुछ जवाव न दिया कि यह रहते हैं या नहीं।

नोट—मौन रहना ही वताता है कि जो कुछ निर्वाणमें रहता है वह वचनगोचर नहीं, अनुभवगम्य है। राजा श्रेणिककी स्त्री साधु खेमाकी राजा प्रसेनदिसे जो वातचीत हुई उसमें साध्वीने कहा—हे महाराज! समुद्र गहरा है, मापने व थाह पानेके योग्य नहीं है। इसी तरह वह शरीर जिससे तथागत वुद्धकावर्णन होसके अव छूट गया है। तालवृक्षकी जड़के समान उखड गया है, अभावरूप होगया है फिर कभी शरीर नहीं होगा। शरीरके नामसे रहित तथागत समुद्रके समान गंभीर है। न उसकी माप होसक्ती, न उसकी थाह पाई जासक्ती है।

नोट—इस कथनमें भी यही वात झलकती है कि शुद्ध आत्मा जो निर्वाणमें रहता है वह वचन व मनके गोचर नहीं है, मात्र अनुभवगम्य है।

---

(१४) प्रज्ञापारमिता।

Budhist Mahayan Text.

Page 148—When the envelopement of consciousness has been annihilated then he becomes free of all fear, beyond the reach of change, enjoying final *Nirvana.* All Budhas of the

past, present and future, after approaching *Pragna-paramita* awoke to the highest perfect knowledge.

Page 149—O wisdom, gone, gone, gone to the other shore, Landed at the other shore."

भावार्थ—जब (इंद्रिय व मन द्वारा) विज्ञानका परदा नाश हो जाता है वह सर्व भयसे रहित, व परिवर्तनसे रहित होजाता है और अंतिम निर्वाणका आनंद लेता है। भूत, भविष्य, वर्तमानके सर्व बौद्ध प्रज्ञापारमिता (भेदविज्ञान) के पहुंचनेके पीछे सर्वोच्च पूर्ण ज्ञानको जागृत कर चुके हैं।

ऐ ज्ञान! तू दूसरे तट पर चला गया है।

नोट—इस कथनसे स्पष्ट झलकता है कि आत्माका अनात्मासे भेद विज्ञान प्रज्ञा है। इस प्रज्ञाके द्वारा ही अनंत ज्ञानका लाभ आत्माको कहता है। इससे भी आत्माकी सत्ता सिद्ध होती है।

Sacred books of Budhist Vol. III.

by T. W. Rys davids L. L. B.

(१५) डायलोग्स आफ बुद्ध।

Dialogues of the Budha from the Pali of Dighe Nikaya Part II 1910.

Page 64—Moreover Anand, happy feeling is impermanent, a product, the result of a cause or causes, liable to perish, to pass away, to become extinct, to cease. So too is painful feeling. So too is neutral feeling. If when experiencing a happy feeling one thinks "This is my soul"—when that same happy feeling ceases, one will also think:—

"My soul has departed. So too when the feeling is painful or neutral. Thus he who says:-My soul is feeling."—regards as his soul, something which, in this present life is

impermenent,: is blended of happiness and pain, and is liable to begin and to end. Whereupon, Anand, it follows that this aspect :—

" My soul is feeling " does not commend itself.

Herein, again Anand, to him who affirms :—Nay, my soul is not feeling, my soul is not sentient, answer sould thus be made :—My friend, where there is no feeling of anything, can you then say :—I am. You cannot, Lord. Wherefore, Anand, it follows that this aspect :—Nay, my soul :is not ling, my soul is not sentient does not commend itself.

My friend, when feeling of every sort or kind to cease absolutely, then there being, owing to the cessation thereof, feeling whatever could one then say—I myself am ?

No Lord, one could not.

Wherefo re, Anand, it follows that this aspect : " Nay, my soul is not feeling, nor it is not sentient ; my soul has feeling, it has the property of sentience " does not commend itself.

Page 65-Now when a brother, Anand, does not regard e aspects either as not feeling or having feeling, then he, thus refraining from such views grasps at nothing whatever in this world, and not grasping he trembles not, and trembling not, he by himself attains to perfect peace. And he knows that birth is at an and, that the higher life has been fulfilled, that what had to be done had been accomplished, and that after this present world, there is no beyond.

भावार्थ—(बुद्धका आनंदसे वार्तालाप होरहा है) ऐ आनंद! यह सुखकी वेदना अनित्य है, यह किसी कारणका फल है, अवश्य नाश होजायगी। इसी तरह दुःखकी वेदना व इसी तरह दुःख सुखसे उदासीकी वेदना। यदि किसीके सुखकी वेदना होरही हो और वह यह सोचे कि यह मेरा आत्मा है तब जब वह सुख वेदना बंद होजायगी

तब वह यह भी ख्याल करेगा कि मेरा आत्मा चला गया है। इसी तरह दुःखकी वेदनापर व इसी तरह उदासीकी वेदनापर, इस तरह जो कोई ऐसा कहता है कि वेदना मेरा आत्मा है वह आत्माको इस जन्ममें कोई अनित्य पदार्थ, सुखदुःखमें बदलनेवाला व जन्म होकर अंत होनेवाला मानता है। इसीलिये ऐ आनंद! यह मानना कि वेदना आत्मा है ठीक नहीं है।

इसी तरह ऐ आनंद! जो ऐसा माने कि मेरी आत्मा वेदना नहीं है, मेरी आत्मा विचार नहीं है उसको यह उत्तर कहा जायगा कि जहां किसी तरहकी वेदना न होगी तब तुम कैसे कह सक्ते हो कि मैं हूं।

भगवान—मैं नहीं कह सक्ता हूं।

इसीलिये आनंद! इससे यह बात सिद्ध हुई कि ऐसा कहना कि मेरा आत्मा वेदना नहीं है, मेरा आत्मा विचार नहीं है, ठीक नहीं है। मेरे मित्र! जहां हर प्रकारकी वेदना बिलकुल न रहेगी तब वेदनाके बंद होनेपर कौन कह सक्ता है कि मैं हूं? ऐ भगवान! कोई नहीं कह सक्ता इसलिये आनंद! यह बात सिद्ध हुई कि यह मान्यता कि मेरा आत्मा वेदना नहीं है—विचार नहीं है या मेरा आत्मा वेदना रखता है या यह विचार रखता है, ठीक नहीं है। ऐ आनंद! जब कोई ज्ञाता आत्माको इन दृष्टियोंसे नहीं विचारता है कि इसमें वेदना है या वेदना नहीं है तब यह ऐसे तर्कोंसे रहित होता हुआ इस जगतमें किसी भी वस्तुको ग्रहण नहीं करता है। जब नहीं ग्रहण करता है तब यह चंचलपना मेट देता है। इस तरह निश्चल हो जानेपर यह पूर्ण शांतिको पहुंच जाता है। तब वह अनुभव करता है कि जन्म बंद हो गया, उच्च जीवन प्राप्त हुआ। जो सिद्ध करना था सो सिद्ध कर लिया, इस वर्तमान भवके पीछे भव न होगा।

नोट—इस कथनको विचार पूर्वक पढ़नेसे यही सिद्ध होता है

कि संकल्प विकल्पोंसे दूर जो कोई अनुभवगम्य परम शांतिमय पदार्थ है वही आत्मा है। जब सर्व ही परपदार्थोंको, परभावोंको व नैमित्तिक भावोंको, विकल्पोंको, रागद्वेषादिको त्याग दिया जाता है तब न किसी परका ग्रहण है, न अपनी वस्तुका त्याग है। इसी समय आत्मानुभव या निश्चल समाधि प्राप्त होती है, यही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष स्वरूप है। श्री अमृतचंद्र आचार्य समयसार कलशमें कहते हैं—

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत् पृथक् वस्तुता।
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्॥
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फार प्रभाभासुरः।
शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति॥ ४२–९॥
उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य संधारणमात्मनीह॥ ४३–९॥

भावार्थ—अन्योंसे छूटा हुआ, अपनेमें निश्चल रहता हुआ, सर्वसे भिन्न वस्तुपनेको रखता हुआ, ग्रहण त्यागसे शून्य ऐसे निर्मल ज्ञानके यथार्थपनेको प्राप्त होजाता है। तब इसकी प्रभा मध्य आदि व अंतके विभागसे रहित चमक जाती है तथा यह नित्य शुद्ध ज्ञान समूह होता हुआ अपनी महिमामें रहता है। जिसने अपनेमें ही अपनी सर्व शक्तिको समेटकर धारण कर लिया उसने जो कुछ त्यागना था वह त्याग दिया व जो लेना था सो लेलिया।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः॥ ६२॥

जबतक काय, वचन व चित्त इन तीनोंकी क्रियाओंमें आत्माकी बुद्धि रहेगी तबतक संसार है। जब इनसे भेदका ज्ञान होकर भेदज्ञानका अभ्यास होगा तब ही मोक्ष होगी।

मैं हूं, मैं नहीं हूं, मैं क्या हूं इत्यादि सर्व विचारोंको छोड़नेपर ही यथार्थ आत्माका बोध ग्रहण व अनुभव होता है। मनके संकल्प-विकल्पोंमें यथार्थ आत्मा नहीं है।

---

(१६) बुद्धचर्या हिन्दी पृ० २८५ सेलसुत्त।

भगवान बुद्ध शैलको कहते हैं—

ज्ञातव्यको जान लिया, भावनीयकी भावना करली, परित्याज्यको छोड़ दिया, अतः हे ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूं।

नोट—इससे भी यह झलकता है कि अनिर्वचनीय आत्माको मैंने जान लिया, उसके सिवाय सर्व अनात्माको त्याग दिया।

बुद्धचर्या पृ० २४७ महालिसुत्त।

एकवार मैं महालि! कौशाम्बीमें घोषितारायमें विहार करता था तब दो प्रव्रजित साधु मंडिस्स परिव्राजक तथा दारु पात्रिकका शिष्य जालिय जहां मैं था वहां आए। आकर मेरे साथ संमार्दन कर एक ओर खड़े होगए। एक ओर खड़े हुए उन दोनों प्रव्रजितोंने मुझे कहा। अवुस गौतम! क्या वही जीव है, वही शरीर है अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है? 'तो अवुसो' सुनो, अच्छी तरह मनमें करो, कहता हूं × अच्छा अवुस....तब मैंने कहा—अवुसो भिक्षु शील-संपन्न हो, प्रथम ध्यानको प्राप्त होता है। जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है, उसको क्या कहनेकी जरूरत है। वही जीव है वही शरीर है या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है। इसी तरह द्वितीय ध्यान,

तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ज्ञान दर्शनके लिये चित्तको लगाता है। क्या उसको ऐसा कहनेकी जरूरत है कि वही जीव है, वही शरीर है या जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है। मैं ऐसे जानता हूं तो भी मैं नहीं कहता कि वही जीव है, वही शरीर है अथवा जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है।''

नोट—यह कथन आत्माका शरीरसे भिन्न अस्तित्व बताता और यही झलकाता है कि वह अनुभवगम्य है।

बुद्धचर्या पृ० २६४ सन्दकसुत्त।

सन्दक! जैसे पुरुषके हाथ पैर कटे हों उसको चलते, बैठते, सोते जागते निरंतर होता है, मेरे हाथ पैर कटे हैं। इसी प्रकार संदक जो वह अर्हत् क्षीणास्त्रव भिक्षु है उसके निरंतर होता है कि आस्त्रव क्षीण हैं।

नोट—यहां तो आस्त्रवोंसे भिन्न कोई शुद्ध आत्मा है उसके अस्तित्वका बोध होता है।

बुद्धचर्या पृ० ३७२ महासुकुलदाय सुत।

मार्ग बतला दिया है जैसे....उदायी! पुरुष मुंजमेंसे सींक निकाले। उसको ऐसा हो। यह मुंज है यह सींक है। मूंज अलग है सींक अलग है।....जैसे कि उदायी! पुरुष म्यानसे तलवार निकाले। उसको ऐसा हो। यह तलवार है, यह म्यान है। तलवार अलग है म्यान अलग है। म्यानसे ही तलवार निकली है। जैसे उदायी! पुरुष सांपको पिटारीसे निकाले ऐसे ही उदायी! मार्ग बतला दिया है।

नोट—यहां भी आत्माका शरीरसे भिन्न संकेत है।

बुद्धचर्या पृ० ३६५४ रट्ठपाल सुत्त ।

आयुष्मान राष्ट्रपाल आत्मसंयमी उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्यको इसी जन्ममें स्वयं अभिज्ञान कर, साक्षात्कारको प्राप्त कर विहरने लगे।

नोट–यहां आत्मसंयमी व साक्षात्कार कर वाक्य आत्माका साक्षात्कार किया ऐसा संकेत करते हैं।

पृ० ३६५८ रट्ठपालसुत्त (म० नि० २: ४:२)।

महाराज ! उन भगवान् जाननहार, देखनहार अर्हत् सम्यक् संबुद्धने चार धर्म उद्देश किये हैं जिनको जानकर देखकर मैं घरसे बेघर प्रव्रजित हुआ। कौनसे चार (१) यह लोक अध्रुव है....(२) यह लोक त्राण रहित है....(३) लोक अपना नहीं है सब छोड़कर जाना है....(४) लोक तृष्णाका दास है।

नोट–यहां भी जाननेवाले आत्माका बोध होता है।

इस तरह बौद्ध साहित्यके भीतर जहां२ मुझे आत्माके अस्तित्वके संबंधमें संकेतरूप वाक्य मिले उनको कुछ संक्षेपमें दिखलाया गया है।

जैन साहित्यमें आत्मा।

अब जैन साहित्यमें आत्माके सम्बन्धमें कुछ वाक्य दिये जाते हैं—

जैन साहित्यमें आत्माका वर्णन निश्चयनय और व्यवहारनय दो अपेक्षाओंसे किया गया है। निश्चयनयसे तो आत्माका असली स्वरूप जो कर्मबंध रहित है, स्वाभाविक है वह बताया गया है। व्यवहार-नयसे उसकी अशुद्ध या भेदरूप अवस्थाओंको झलकाया गया है। जो कर्मबंध व शरीर व परपदार्थोंके निमित्तसे होती हैं। प्रथम ही हम

निश्चयनयसे आत्मा सम्बन्धी कुछ वाक्य देते हैं जिससे शुद्ध आत्माका बोध हो। जो शुद्ध आत्माका स्वरूप है वही वास्तवमें निर्वाणका स्वरूप है। बौद्ध सहित्यमें आत्माका कथन परसे रहित या अभावात्मक विशेष है। सद्भावात्मक निर्वाणका स्वरूप है, वही शुद्ध आत्माका स्वरूप है। निर्वाणके स्वरूपमें ही शुद्ध आत्माका स्वरूप बौद्ध साहित्यमें झलक रहा है। उससे जैन साहित्यके कहे हुए स्वरूपका मिलान होजाता है तथा जैन साहित्यमें परका अभावात्मक भी जीवका स्वरूप कहा गया है। नीचेके वाक्योंसे कुछ प्रगट किया जाता है—

(१) श्री कुंदकुंदाचार्य रचित ग्रंथ समयसार—

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सयारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिव अण्णं परमाणुमित्तं वि ॥४३॥

मैं निश्चयनयसे शुद्ध हूं, दर्शनज्ञान स्वरूप हूं, सदा ही अमूर्तीक हूं। इस मेरे निजस्वभावके सिवाय अन्य परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।
णवि रूवं ण सरीरं णवि संठाणं ण संघदणं ॥ ५५ ॥
जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥ ५६ ॥

भावार्थ—इस जीवके निश्चयसे न तो कोई वर्ण है, न गंध है, न रस है, न स्पर्श है, न कोई जड़मईरूप है, न कोई शरीर है, न कोई लंबा चौड़ा जड़मई आकार है, न कोई प्रकारकी हड्डी है, न जीवके राग है, न दोष है, न मोह है, न आस्रव है, न कर्मबंध है, न कोई शरीरादि बाहरी पदार्थ हैं।

(२) नियमसार—श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत।

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ।
कत्ता णहि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ७८ ॥

णाहं बालो वुड्ढो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ७९ ॥
णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हिं ।
कत्ता णहि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥ ८१ ॥

भावार्थ—निश्चयसे न मैं नारकी हूं न तिर्यंच हूं न मनुष्य हूं न देव पर्यायमें हूं, मैं न उनका कर्ता हूं न करानेवाला हूं न अनुमोदक हूं न मैं बाल हूं न वृद्ध हूं न तरुण हूं न इनका कारण हूं न कर्ता हूं न करानेवाला हूं न उनका अनुमोदक हूं। न मैं क्रोध हूं न मान हूं न माया हूं न लोभ हूं न इनका कर्ता हूं न करानेवाला हूं न अनुमोदक हूं।

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहाव सुहमइओ ।
केवलसत्तिसहावो सोहं इदि चिंतए णाणी ॥ ९६ ॥
णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइं ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सोहं इदि चिंतए णाणी ॥ ९७ ॥

भावार्थ—जो कोई केवलज्ञान स्वभाव है, केवल दर्शन स्वभाव है, अनंतसुख स्वभाव है, केवल वीर्य स्वभाव है वही मैं हूं ऐसा ज्ञानी विचार करता है जो अपने स्वभावको कभी छोड़ता नहीं, जो कोई परभावको ग्रहण करता नहीं। जो सर्वको देखता जानता है वही मैं हूं ऐसा ज्ञानी चिंतवन करता है।

एको मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ १०२ ॥

भावार्थ—मेरा आत्मा एक अकेला है, शाश्वत है; ज्ञानदर्शन लक्षणवाला है, मुझसे बाहर जितने संकल्पविकल्प रागादिभाव हैं वे सर्व कर्मके संयोगसे हुए हैं।

जाइजरमरणरहियं परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं ।
णाणाइचउसहावं अक्खयमविणासमच्छेयं ॥ १७६ ॥

भावार्थ–यह शुद्ध आत्मा जन्म जरा मरण रहित है, उत्कृष्ट है, आठ कर्मरहित है, शुद्ध है, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यमई है, अक्षय है, अविनाशी है, अच्छेद्य है।

नोट–इस कथनसे साफ विदित होगा कि जो शुद्ध आत्माका स्वरूप है वही निर्वाणका स्वरूप है, यही जैनसिद्धांत भी बताता है।

(३) श्री पूज्यपाद आचार्य रचित समाधिशतकमें कहा है—

येनात्मनानुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥२३॥
यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥ २४ ॥

भावार्थ–जिस अपने स्वरूपसे मैं अपने भीतर अपने द्वारा ही अपनेको अनुभव करता हूं, वही मैं हूं, मैं न नपुंसक हूं, न स्त्री हूं, न पुरुष हूं न एक हूं न दो हूं न बहुत हूं। अर्थात् मेरेमें लिंग व वचनके विकल्प नहीं है। जिसके विना जाने मैं सोया हुआ था व जिसके जाननेसे मैं जाग उठा वही मैं इंद्रियोंसे अतीत, मन व वचनसे अगोचर, स्वसंवेदन गम्य हूं।

(४) इष्टोपदेशमें यही आचार्य कहते हैं–

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥ २१ ॥

भावार्थ–यह आत्मा स्वसंवेदनसे भलेप्रकार साक्षात्कार होता है। शरीर प्रमाण चिदाकार है। अविनाशी है। परमानंदमय है तथा लोकालोकका देखनेवाला है।

(५) श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं।

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वभावावाप्तिरच्युतिः।
तस्मादच्युतिमाकांक्षन् भावयेज्ज्ञानभावनाम् ॥१७४॥

मामन्यमन्यं मां मत्वा भ्रान्तो भ्रान्तौ भवार्णवे ।
नान्योहमहमेवाहमन्योऽन्योऽहमस्ति न ॥ २४३ ॥
अजातोऽनश्वरोऽमूर्त्तः कर्ता भोक्ता सुखी बुधः ।
देहमात्रो मलैर्मुक्तो गत्वोर्द्ध्वमचलः स्थितः ॥ २६६ ॥

भावार्थ–यह आत्मा ज्ञानस्वभाव है, स्वभावकी प्राप्ति मोक्ष है। इसलिये जो मोक्ष चाहे वे अपने ज्ञानस्वभावकी भावना करें। मैं अपनेको दूसरा व दूसरेको अपना मानके इस भ्रांतिरूप संसारसागरमें भ्रमा हूं। मैंने जाना मैं अन्य नहीं हूं, मैं मैंही हूं, अन्य अन्य है, अन्य मैं नहीं हूं।

यह आत्मा अज्ञात है (जन्मा नहीं), अविनाशी है, अमूर्तीक है, अपने भावका कर्ता व भोक्ता है, आनंदमय है, ज्ञानी है, शरीरके आकार है, कर्ममलोंसे छूटकर ऊपर जाता है, निश्चल है तथा यही प्रभु है।

(६) श्री अमृतचन्द्राचार्य तत्वार्थसारमें कहते हैं—

पश्यति स्वस्वरूपं यो जानाति च चरत्यपि ।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः ॥ ८ ॥

भावार्थ–जो अपने ही स्वरूपको श्रद्धान करनेवाला है, जाननेवाला है, आचरण करनेवाला है। इसलिये दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्मा ही कहा गया है।

(७) वे ही समयसारकलशमें कहते हैं—

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात् ।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥१२-७॥

भावार्थ–इस आत्माकी शक्ति चिंतवनमें नहीं आसक्ती। यह स्वयं ही परमात्मा है, चैतन्यमात्र चिंतामणि है। सर्व अर्थकी सिद्धि इसीसे है। इस ज्ञानीको और किसी परिग्रहकी जरूरत नहीं है।

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म,
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावं।
जानन्परं करणवेदनयोरभावा,
च्छुद्धस्वभाव नियतः स हि मुक्त एव ॥ ६-१० ॥

भावार्थ-ज्ञानी आत्मा न तो रागादिभावोंको करता है न उनको भोगता है। यह तो मात्र उनके स्वभावको जानता है। परको जानता हुआ परन्तु कर्ता व भोक्ता न होता हुआ यह शुद्ध स्वभावमें निश्चल रहता है व यही मुक्तरूप भी है।

(८) श्री अमितिगति आचार्य लघुसामायिकपाठमें कहते हैं—

यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः समस्तसंसारविकारवाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः स देवदेवो हृदये ममास्तां ॥ १३ ॥
एकः सदा शाश्वति को ममात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
वहिर्भवाः संत्यपरे समस्ता न शाश्वता कर्मभवाः स्वकीयाः ॥२६॥

भावार्थ-यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, सुख, स्वभावका रखनेवाला है, सर्व संसारके विकारोंसे वाहर हैं। (नोट-इसमें रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार, विज्ञान सब आगए), समाधिसे अनुभव किया जाता है। यही परमात्मा है, यही देवोंका देव है, मेरा आत्मा सदा एक है, शाश्वत है, निर्मल है, ज्ञानस्वभाव है, इसके सिवाय सर्व भाव मुझसे वाहर हैं, पर हैं, कर्मकृत हैं, अनित्य हैं।

(९) वे ही आचार्य अमितगति श्रावकाचारमें कहते हैं—

ज्ञानदर्शनमयं निरामयं मृत्युसंभवविकारवर्जितम्।
आमनंनि सुधियोऽत्र चेतनं सूक्ष्ममव्ययमपास्तकल्मपम् ॥८९-१५॥

भावार्थ-पंडितजन आत्माको ज्ञानदर्शनमई, रोगरहित, जन्म मरण आदि विकारोंसे शून्य, चेतनरूप, अतिसूक्ष्म, अविनाशी तथा मलरहित मानते हैं।

(१०) श्री पद्मनंदि मुनि एकत्वसप्ततिमें कहते हैं—

एकमेव हि चैतन्यं शुद्धनिश्चयतोऽथवा ।
कोऽवकाशो विकल्पानां तत्राखंडैकवस्तुनि ॥ १७ ॥
अजमेकं परं शांतं सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्टेदात्मनि यः स्थिरः ॥ १८ ॥
सए वांमृतमार्गस्थ स एवामृतमश्नुते ।
स एवार्हन् जगन्नाथः स एव प्रभुरीश्वरः ॥ १९ ॥
केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः ।
तत्र ज्ञातेन किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतं ॥ २० ॥
शुद्धं यदेव चैतन्यं तदेवाहं न संशयः ।
कल्पनयानयाप्येतद्धीनमानंदमंदिरं ॥ ५२ ॥

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनयसे वह चैतन्य स्वरूप एक ही है। उस अखण्ड वस्तुमें विकल्पोंका स्थान नहीं है। वह अजन्मा है, एक है, उत्कृष्ट है, शांत है, सर्व उपाधिसे रहित है। जो कोई स्थिर होकर ऐसे आत्माको आत्मामें आत्माके द्वारा जाने वह निश्चल तिष्टे।

वही अमृत (मोक्ष) मार्गमें ठहरा हुआ है, वही आनन्दामृतका भोग करता है। वही अर्हन् जगन्नाथ हैं, वही प्रभु व ईश्वर हैं। वह आत्मज्योति केवलज्ञान दर्शन सुख स्वभाव है, उत्कृष्ट है, उसको जान लिया तो सब जान लिया। उनको देख लिया तो सब देख लिया। उसका स्वरूप सुन लिया तो सब सुन लिया। जो शुद्ध चैतन्य है वही मैं हूं। इस प्रकारकी कल्पनासे भी जो बाहर है वही आत्मा आनंदका मंदिर है।

(११) निश्चय पंचाशत्में कहते हैं—

मनसोऽचिन्त्यं वाचामगोचरं यन्महस्तनोर्भिन्नम् ।
स्वानुभवमात्रगम्यं चिद्रूपममूर्त्तमव्याद्वः ॥ २ ॥

नैवात्मनो विकारः क्रोधादिः किंतु कर्मसंबंधात्।
स्फटिकमणेरिव रक्तत्वमाश्रितात्पुष्पतो रक्तात् ॥ २५ ॥

भावार्थ—वह चैतन्य स्वरूप आत्मा मनसे चिंतवनमें नहीं आता, वचनके गोचर नहीं है, इस शरीरसे भी भिन्न है। वह स्वानुभवसे जाना जाता है, वह अमूर्तीक है। वह आप लोगोंकी रक्षा करें। आत्मामें क्रोधादि विकार नहीं है—कर्मके सम्बन्धसे होते हैं जैसे स्फटिकमणिमें रक्तता लाल फूलके सम्बन्धसे झलकती है।

(१२) योगेन्द्राचार्य योगसारमें कहते हैं—

सुद्ध सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥२६॥

पुग्गलु अण्णुजि अण्णु जिउ अण्णु वि सहुविवहारु।
चयहि वि पुग्गल गहहि जिऊ लहु पावहु भवपारु ॥५४॥

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा उत्तु।
आयासु वि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥५८॥

इक्कलउ इंदियरहिउ मणवयकायतिसुद्धि।
अप्पा अप्प मुणेइ तुहुं लहु पावहु सिवसिद्धि ॥ ८५ ॥

भावार्थ—यह आत्मा शुद्ध है, चेतन स्वरूप है, यही बुद्ध है, यही जिन है, यह केवलज्ञान स्वभाव है। यदि निर्वाण चाहते हो तो इसीका रात दिन मनन करो। पुद्गल (शरीरादि) अन्य है जीव अन्य है और सर्व व्यवहार (सांसारिक) भी अन्य है। इस पुद्गलादिसे ममत्व छोड़कर आत्माको ग्रहण करो तो शीघ्र संसारसे पार हो जाओगे। जैसा शुद्ध आकाश है वैसा ही यह आत्मा है। आकाश जड़ है। आत्मा चेतनवान है। यह आत्मा एक अकेला है। इन्द्रियोंसे रहित है। मन व वचन कायसे भी रहित है। आपको आपसे जो ध्याता है वह शीघ्र निर्वाणको पाता है।

(१३) परमात्मप्रकाशमें वे ही आचार्य कहते है—

अप्पा गोरउ किण्हु णवि अप्प रत्तु ण होइ ।
अप्पा सुहमवि थूलहुमु णवि णाणिउ णाण जोइ ॥ ८७ ॥

अप्पा वंभणु वइसु णवि णवि खत्तिउ णवि सेसु ।
पुरिसु णउंसउ इत्थि णवि, णाणिउ मुणइं असेसु ॥८८॥

पुण्णुवि पाउवि कालु णहु धम्माधम्मुवि काउ ।
एक्कुवि अप्पा होइ णवि मेल्लिवि चेयणभाउ ॥ ९३ ॥

अप्पा झायहि णिम्मलउ किं बहुए अण्णेण ।
जो झायंतह परमपउ लब्भइ एक्कखणेण ॥ ९८ ॥

मुत्तिविहूणउ णाणमउ परमाणंदसहाउ ।
णियमिं जोइय अप्पु, मुणि णिच्चु णिरंजणु भाउ ॥१४४॥

जो परमप्पा णाणमउ सो हउं देउ अणंतु ।
जो हउं सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु ॥ ३०६ ॥

भावार्थ—आत्मा न गोरा है, न काला है, न लाल है, न सूक्ष्म है, न स्थूल है; उसे ज्ञानी ज्ञानद्वारा देखते हैं। न आत्मा ब्राह्मण है, न वैश्य है, न क्षत्री है, न कोई और है, न पुरुष है, न नपुंसक है, न स्त्री है। ज्ञानी पूर्ण जानते हैं। न वह पुण्य है, न पाप है, न काल है, न आकाश है, न धर्म अधर्म द्रव्य है, न वह काय है। वह मात्र चेतन स्वभाव है। निर्मल आत्माको ध्याओ। औरके ध्यानेसे क्या? उसके ध्यानसे क्षणभरमें परमपद होता है। आत्मा अमूर्तीक है, ज्ञानमय है, परमानंद स्वभाव है, नियमसे वह नित्य है, निरंजन है। जैसा परमात्मा ज्ञानमई है, अनंत है, देव है वैसा मैं हूं, जो मैं हूं सो परमात्मा है। ऐसा निःसन्देह स्वभाव निश्चयसे जानो।

(१४) श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

ज्ञानदर्शनसम्पन्न आत्मा चैको ध्रुवो मम।
शेषा भावाश्च मे बाह्या सर्वे संयोगलक्षणाः ॥ २४९ ॥

भावार्थ–यह मेरा आत्मा ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण है, ध्रुव है, इसके सिवाय सर्व बाहरी भाव मेरेसे अलग हैं व परके संयोगसे हुए हैं।

(१९) श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

तथा हि चेतनोऽसंख्यप्रदेशो मूर्तिवर्जितः।
शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञानदर्शनलक्षणः ॥ १४७ ॥
नान्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नान्यस्याहं न मे परः।
अन्यस्त्वन्योऽहमेवाहमन्योन्यस्याहमेव मे ॥ १४८ ॥
अचेतनं भवे नाहं नाहमप्यस्त्यचेतनं।
ज्ञानात्माहं न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित् ॥ १५० ॥
सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता दृष्टा सदाप्युदासीनः।
स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्तः ॥ १५३ ॥
स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किंतूपेक्ष्यमिदं जगत्।
नोऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किंतु स्वयमुपेक्षिता ॥ १५७ ॥

भावार्थ–मैं शुद्ध आत्मा चेतन हूं, लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी हूं, अमूर्तीक हूं, सिद्धरूप हूं, ज्ञानदर्शन लक्षणधारी हूं ॥ १४३ ॥ मैं अन्य नहीं हूं, न अन्य मुझरूप है, न मैं अन्यका हूं, न अन्य मेरा है। अन्य अन्य है, मैं मैं हूं, अन्य अन्यका है, मैं मेरा हूं ॥१४८॥ मैं कभी अचेतन नहीं होता हूं न अचेतन मुझरूप होता है। मैं ज्ञान स्वरूप हूं, मेरा कोई नहीं है, न मैं किसी अन्यका हूं ॥ १७० ॥ मैं सत् (सदा रहनेवाला) द्रव्य हूं, चैतन्यमय हूं, ज्ञाता दृष्टा व सदा उदासीन हूं। अपने प्राप्त हुए शरीरके आकार हूं, तौभी उससे अलग आकाशके समान अमूर्तीक हूं ॥ १९३ ॥ यह जगत् स्वयं ही न मेरेको

इष्ट है, न इससे कोई द्वेष है किन्तु उपेक्षा योग्य है। न मैं राग करता हूं न द्वेष करता हूं किन्तु स्वयं उपेक्षावान हूं ॥ १९७ ॥

(१६) श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

दंसणणाणपहाणो असंखदेसो हु मुत्तिपरिहीणो ।
सगहियदेहपमाणो णायव्वो एरिसो अप्पा ॥ १७ ॥

जस्स ण कोहो माणो माया लोहो य सल्ल लेसाओ ।
जाइजरामरणं विय णिरंजणो सो अहं भणिओ ॥ १९ ॥

फासरसरूवगंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो ।
सुद्धो चेयणभावो णिरंजणो सो अहं भणिओ ॥ २१ ॥

णोकम्मकम्मरहिओ केवलणाणाइगुणसमिद्धो जो ।
सोहं सिद्धो सुद्धो णिच्चो एक्को णिरालम्वो ॥ २७ ॥

भावार्थ—यह आत्मा दर्शन ज्ञान स्वरूप है, असंख्यात प्रदेशी है, मूर्ति रहित है, अपने शरीरके प्रमाण आकार रखता है। इसके न क्रोध है न मान है न माया है न लोभ है न शल्य (माया, मिथ्या, निदान) है, न छः लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल भावोंके अच्छे बुरे रंग) हैं न जन्म है न जरा है न मरण है, इसीलिये मैं निरंजन आत्मा हूं, न इसके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है न शब्दादि हैं किंतु यह शुद्ध चेतन स्वरूप है इसीसे मैं निरंजन आत्मा हूं। नोकर्म (शरीर) व कर्म रहित है। केवलज्ञान आदि गुणोंसे पूर्ण है। सिद्ध है, शुद्ध है, नित्य है, एक है, अवलम्बन रहित है, सोई मैं हूं।

इस तरह निश्चय नयसे अर्थात् स्वभावसे शुद्ध आत्माका स्वरूप जैन ग्रन्थोंमें है। यही आत्मा है व यही निर्वाण है। व्यवहार नयसे जो आत्माका स्वरूप जैन ग्रन्थोंमें हैं वह कर्मबंधके संस्कारसे जो कुछ आत्माके गुण, ज्ञान आदिकी दशा है वह कही गई है। वह सब दशा बहुत अंशमें बौद्धोंके पांच रूप आदि स्कंधोंमें गर्भित है। अशुद्ध

दशा असली स्वरूप नहीं है। यह दशा मिटती है तब निर्वाण होता है। यही बात बौद्धोंमें है कि जब स्कंध जो अनित्य हैं व परके सम्बन्धसे है, मिट जाते हैं या विलय होजाते हैं तब ही निर्वाण होता है। श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तीने द्रव्यसंग्रहमें व्यवहारनयसे आत्माका स्वरूप संक्षेपसे यह बताया है—

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोऽड्ढगई॥ २५॥

भावार्थ-यह संसारी जीव नौ विशेषणोंको रखता है-(१) जीनेवाला है, (२) उपयोगवान है, (३) अमूर्तीक है, (४) कर्ता है, (५) भोक्ता है, (६) अपनी देहके प्रमाण आकार रखता है, (७) संसारमें भ्रमण करता है, (८) सिद्ध भी होसक्ता है, (९) स्वभावसे ऊपरको जाता है। इन नौका कुछ विशेष स्वरूप इस तरहका जानना चाहिये। (१) जीव-यह जीव शरीरके भीतर अपने २ प्राणोंसे जीता है। वे प्राण छूट जाते हैं या विगड़ते हैं तब मरण कहलाता है। वे प्राण १० हैं-पांच इन्द्रिय प्राण-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। तीन बल प्राण-काय बल, वचन बल, मन बल। एक आयु प्राण, एक श्वासोच्छ्वास प्रमाण। जीवोंके छः भेद हैं इससे प्राण नीचे प्रमाण होते हैं—

(१) एकेन्द्रिय जीव-जैसे पृथ्वी शरीरधारी जीव, जल, शरीरधारी जीव, अग्नि शरीरधारी जीव, वायु शरीरधारी जीव, वनस्पति शरीरधारी जीव। ये सब स्पर्शन इंद्रियसे जाननेवाले हैं। इनके चार प्राण होते हैं-१ स्पर्शन इंद्रिय, २ कायबल, ३ आयु, ४ श्वासोच्छ्वास।

(२) द्वेन्द्रिय जीव-जैसे लट, केचुआ, शंख, कौडी आदि हैं इनके स्पर्शन व रसना दो इंद्रियें होती हैं। प्राण छः होते हैं। रसना इंद्रिय और वचन बल बढ़ जाता है।

(३) तेंद्रिय जीव—जैसे खटमल, जूं, जोंक, चींटी, चींटे, विच्छू आदि। इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण तीन इंद्रियें होती हैं। प्राण सात होते हैं। एक घ्राण इंद्रिय बढ़ जाती है।

(४) चौन्द्रिय जीव—जैसे मक्खी, भ्रमर, भिड़, पतंग आदि। इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इंद्रिये होती हैं। प्राण आठ होते हैं, एक चक्षुइंद्रिय बढ़ जाती है।

(५) पंचेन्द्रिय असैनी—जैसे पानीमें उत्पन्न होनेवाले कोई जातिके सर्प। इनके पांचों इंद्रियाँ कान सहित होती हैं। मनबल नहीं होता है। प्राण नौ होते हैं। एक कान बढ़ जाता है।

(६) पंचेन्द्रिय सैनी—जैसे सब मनुष्य, सब देव, सब नारकी, थलचर पशु जैसे गाय, भैंस, मृग, कुत्ता। नभचर जैसे कबूतर, मोर, काक, तोता। जलचर जैसे मछली, मगरमच्छ, कछुआ। इनके मनबल अधिक होता है, सब प्राण १० होते हैं। इन प्राणोंके नाशका नाम ही हिंसा है, जीव तो अविनाशी है वैसे शरीरके पुद्गल भी अविनाशी हैं। प्राणस्कंधरूप संगठनका वियोग ही मरण है। कषायभावसे प्राणोंकी पीड़ा या प्राणवियोग किया जाता है। जिसके प्राण अधिक व अधिक मूल्यवान उसकी विशेष हानि होनेसे विशेष दोष होता है। सबसे अल्प हिंसाका पाप एकेन्द्रिय जीवघातमें है। व्यवहारसे १० प्राण होते हैं, निश्चयसे एक चेतना प्राण होता है, जो कभी छूटता नहीं है।

(२) उपयोगवान—ज्ञान दर्शन रखनेवाला जीव है, संसारी जीवोंकी अपेक्षा उपयोग १२ प्रकारका होता है।

चार प्रकारका दर्शन—(१) चक्षुदर्शन—आंखके द्वारा सामान्य जानना। (२) अचक्षुदर्शन—आंखके सिवाय अन्य इंद्रियोंसे सामान्य जानना। (३) अवधिदर्शन—दिव्य अवधिज्ञानसे पहले सामान्य जानना। (४) केवलदर्शन—सर्वको एक साथ देख लेना।

आठ प्रकार ज्ञान–(१) मतिज्ञान–इंद्रिय व मनद्वारा सीधा ज्ञान (२) श्रुतज्ञान–मतिज्ञान द्वारा अन्य पदार्थका जानना अथवा शास्त्र-ज्ञान। (३) अवधिज्ञान–दिव्यज्ञानचक्षुसे अपने व दूसरेके आगे व पीछेके जन्मोंको जानना। (४) मनःपर्यय–दिव्यज्ञानचक्षुसे दूसरेके मनके भीतरकी सूक्ष्म बातोंको जान लेना। (५) केवल–सर्वको एक-साथ जान लेना। पहले तीन ज्ञान सम्यग्दृष्टीके सुज्ञान कहलाते हैं। मिथ्यादृष्टीके कुज्ञान कहलाते हैं। इस तरह आठ भेद होते हैं। इस उपयोगसे ही संसारी जीव देखने जाननेका काम करते हैं। निश्चयन-यसे शुद्ध ज्ञान व शुद्ध दर्शन ये दो ही उपयोग जीवमें होते हैं।

(३) अमूर्तीक–यह जीव निश्चयसे अमूर्तीक है, स्पर्श रस गंध वर्णसे रहित है परन्तु व्यवहार नयसे इसको मूर्तीक देखा जारहा है; क्योंकि संसार अवस्थामें स्वच्छ स्वभाव कर्म जड़ पुद्गलों (five Karmic Matter) से एक हुआ है। आत्माके सर्व आकार पर हर स्थानपर बहुतसे कर्म बैठे हैं। तथा उन्हींके फलस्वरूप इसकी सर्व क्रिया शुद्ध आत्मीक क्रियासे विपरीत होरही है। अनादिकालसे वह ऐसा ही है। तब ही उसके पुराने कर्मके संस्कारोंमें नए कर्म संस्कार संचय होते हैं। पुराने कर्म विपाक पाकर दूर होते रहते हैं।

(४) कर्ता–यह जीव संसार अवस्थामें कर्मोंके संस्कारके कारण रागद्वेष मोह आदि अशुद्ध वैभाविक भावोंमें परिणमता है। इसलिये व्यवहारनयसे उनका कर्ता कहलाता है, तथा इस जीवके अशुद्धभावोंके निमित्तसे नवीन कर्म बंधते हैं। इससे पाप व पुण्यकर्मोंका बंध करने-वाला कहलाता है, तथा यही संसारी जीव इच्छा व प्रयत्नवान होकर मकान, वर्तन, कपड़ा आदि बनाता है। इनसे उनका भी कर्ता कह-लाता है। निश्चयनयसे यह शुद्ध आत्मीक भावोंका ही कर्ता है।

(५) भोक्ता–व्यवहारनयसे यह जीव अपने बांधे हुए पाप या

पुण्यकर्मोंका विपाक होनेपर उनका सुख दुःखरूपी फल भोगता है। निश्चयसे यह अपने आत्मीक आनन्दका ही भोगनेवाला है।

(६) स्वदेह परिमाण—निश्चयनयसे इस जीवका आकार इस लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेश है, परन्तु यह संसारमें शरीरोंको धारता हुआ चला आरहा है तब छोटे शरीरमें छोटा, वड़े शरीरमें वड़ा संकोच विस्तारसे होता रहता है। इससे व्यवहारनयसे यह शरीर प्रमाण शरीरमें व्यापक रहता है। किसी२ विशेष कारणसे कभी शरीरसे बाहर फैलकर जाता है, शरीरको छोड़ता नहीं है, पुनः फिर शरीरके आकार होजाता है। यह आकार अमूर्तीक चेतनाकार है।

(७) संसारी—यह जीव अपने पाप वा पुण्य कर्मोंके अनुसार देव गति, नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति इन चार गतियोंमें भ्रमण करता रहता है। एकेन्द्रिय जीवसे सैनी पंचेन्द्रिय तक पशु सव तिर्यंच गतिमें हैं। संसारी जीवोंके दो भेद भी जैन शास्त्रोंमें हैं। स्थावर तथा त्रस। जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति पांच तरहके एकेन्द्रिय जीव हैं वे स्थावर कहलाते हैं। इसके सिवाय द्वेन्द्रिय सैनीतक सर्व संसारी जीवोंको त्रस कहते हैं। निर्वाणके सिवाय जितनी अवस्थाएं हैं वे सव संसारी कहलाती हैं। उनके होनेका मूल कारण पाप पुण्यरूप कर्मोंके संस्कार हैं।

(८) सिद्ध—जब यह जीव आत्मध्यानरूप समाधिके वलसे सर्व कर्म संस्कारोंको दग्ध कर लेता है, इसके सर्व आस्रव क्षय होजाते हैं तब यह जीव शुद्ध परमात्मा निर्वाणरूप होजाता है और सिद्ध नाम पाता है।

(९) स्वभावसे ऊर्ध्वगति—निश्चयसे जीवका स्वभाव ऊपर गमन करनेका है जैसे अग्निकी शिखा ऊपरको जाती है। जब यह शुद्ध मुक्त होजाता है तब यह सीधा ऊपरको लोकके अंततक जाता है। व्यवहारसे जबतक इसके कर्मोंके संस्कार होते हैं तबतक यह जीव एक

शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें अपने कर्म संस्कारोंको लिये हुए फौरन चला जाता है और वहां कर्मानुसार जन्म धारण कर लेता है तब इसका गमन सीधा होता है, टेढ़ा नहीं होता है। यह विदिशाओंको छोड़कर चार दिशा व ऊपर नीचे जाता है। यदि स्थान जन्मका टेढ़ा हुआ तो मुड़ जाता है। संसारी जीवोंकी अवस्थाका कुछ ज्ञान इस ऊपरके कथनसे हो जायगा।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यजीने पंचास्तिकायमें जीवका स्वरूप इसी भांति कहा है—

जीवोत्ति हवदि चेदा उवओग विसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ताय देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥ २७ ॥

भावार्थ—यह जीव (१) जीनेवाला है, (२) चेतनासहित चेतनेवाला है, (३) उपयोग सहित है, (४) प्रभु है अर्थात् भले बुरेका आप जिम्मेदार है, (५) कर्ता है, (६) भोक्ता है, (७) स्वदेह प्रमाण है, (८) अमूर्तीक है, (९) कर्मोंके साथमें संसारी होरहा है।

यदि बौद्धशास्त्र कथित पांच स्कंधोंका मिलान संसारी कर्म संबंध, इंद्रियजनित ज्ञान, अशुद्ध ज्ञान, सुख दुःख, वेदना आदिसे किया जायगा तो जैन और बौद्धमें बराबर एकता भास जायगी। तथा शुद्ध आत्माका मिलान निर्वाणकी अवस्थासे बराबर हो जाता है।

बौद्ध साहित्यमें यह साफ२ नहीं कहा है कि कोई आत्मा रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान इन पांच स्कंधोंके साथ रहता है। परन्तु जब इन पांच स्कंधोंका वियोग होता है तब जो बच रहता है वही वह है जो छिना हुआ साथ था, अब निर्वाणमें अपने शुद्ध स्वभावमें झलक जाता है और परम शांत, परम आनन्दमय होकर ध्रुव बना रहता है।

अध्याय तीसरा।

निर्वाणमार्ग या मोक्षमार्ग।

पिछले दो अध्यायोंसे विदित होगा कि निर्वाणका व आत्माका स्वरूप जो कुछ बौद्ध ग्रन्थोंमें झलकता है वही जैन शास्त्रोंमें है। अब यह देखना है कि निर्वाणका मार्ग बौद्ध शास्त्रोंमें बताया है वह जैन शास्त्रसे मिलता है या नहीं।

बौद्ध साहित्यमें निर्वाण मार्ग।

(१) मज्झिमनिकायके नौमें सम्मादिट्ठिसुत्तमें ऐसा कहा है—

" अयमेव अरियो अट्ठ गिको मग्गो आसवनिरोधगामिनीपटिपदा सेय्यथिदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासंकप्पो, सम्मा वाचा, सम्माकम्मंतो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। "

भावार्थ—हे आर्यों! आस्रवको रोकनेका उपाय यह आठ प्रकारका मार्ग है।

(१) सम्यक्दृष्टि, (२) सम्यक्संकल्प, (३) सम्यक्वचन, (४) सम्यक्कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८ सम्यक् समाधि। इस सूत्रमें कहा है कि सम्यग्दृष्टि प्राप्त होने करनेके लिये इतनी बातोंको जानना चाहिये—

(१) "यतो खो आपुसो अरिय सावको अकुसलं च पजानाति अकुसल मूलं च पजानाति, कुसलं च पजानाति कुसल मूलं च पजानाति........कतमं अकुसलं। (१) पाणातिपातो, (२) अदिन्नादानं, (३) कायेसु मिच्छाचारो, (४) मुसावादो, (५) पिसुणावाचा, (६) [illegible] च, (७) संकप्पलापो, (८) अभिज्झा, (९) आपादो,

(१०) मिच्छादिट्ठि। कतमं अकुसल मूलं। (१) लोभो, (२) दोसो, (३) मोहो।

भावार्थ—आर्य श्रावक अकुशल, अकुशलका मूल, कुशल व कुशलका मूल जानता है। अकुशल १० हैं–(१) हिंसा, (२) अदत्तादान-चोरी, (३) काम भावोंमें मिथ्या प्रवृत्ति, (४) मृषा बोलना, (५) चुगलीका वचन, (६) कठोर वचन, (७) बकवाद, (८) लोभ, (९) द्वेष, (१०) मिथ्या श्रद्धा। इनके मूल या कारण हैं तीन। लोभ, द्वेष, मोह (या राग-द्वेष मोह) इसके विरोधी कुशल व कुशलके मूल हैं।

(२) वह सम्यग्दृष्टी " आहारं पजानाति, आहार समुदयं च पजानाति, आहार निरोधं च पजानाति, आहार निरोध पटिपदं च पजानाति " आहारा चत्तारो:–कवलिंकारो आहारो ओलारिको वा सुखुमो वा, फस्सो दुतियो, मनोसंचेतना ततियो, विञ्ञानं चतुत्थो। तण्हा समुदयो आहार समुदयो, तण्हा निरोधो आहार निरोधो। अट्ठंगिको मग्गो आहारनिरोधगाभिनी पटिपदा।

भावार्थ–आहारको आहारके कारणको आहारके निरोधके कारणको जानता है। आहार चार तरहका है–(१) औदारिक या सूक्ष्म कवलाहार, (२) स्पर्श, (३) मनसंचेतना, (४) विज्ञान। तृष्णाका पैदा होना आहारकी उत्पत्तिका कारण है। तृष्णाका निरोध आहारका निरोध है। आहार निरोधका उपाय आठ प्रकारका ऊपर लिखित मार्ग है।

नोट–यह भाव झलकता है कि तृष्णा या इच्छा जब होती है तब भोजन होता है व इंद्रियोंके पदार्थोंको भोगता है, मनमें उस प्रकारका विचार करता है। तथा उस सम्बंधी जानपना बनाए रखता है।

तृष्णा मिट जानेसे आहार न होगा, इन्द्रियभोग न होगा, न उस सम्बन्धी विचार होगा, न उस सम्बन्धी ज्ञानका विकल्प होगा। तृष्णाका नाश आठ प्रकारके मार्गपर चलनेसे होता है—

(३) वह सम्यग्दृष्टी "दुक्खं च पजानाति, दुक्खस्स समुदयं च पजानाति, दुक्खनिरोधं च पजानाति, दुक्खनिरोध गामिनी पटिपदं च पजानाति....कतमं दुक्खं-(१) जातिवि दुक्खा, (२) जराविदुक्खा, (३) व्याधिवि दुक्खा, (४) मरणंवि दुक्खं, (५) सोकपरिदेव दुख दोमनस्सुपायासा, (६) यं च इच्छति न लभति तं विदुक्खं, (७) पंच उपादान खंधा दुःखं। कतमं दुक्ख समुदयो:—यादयं तण्हा योर्नोभविका, नंदि रागसहगता, तत्र तत्राभिनन्दिनी—सेय्यथिदं।

(१) काम तण्हा, (२) भव तण्हा, (३) विभव तण्हा। कतमो दुक्खनिरोधो:—यो तस्सा एव तण्हाय असेस विरागनिरोधो चागो पटिनिस्संगो मुत्ति अनालयो। कतमा दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा—अट्ठंगिको मग्गो ॥

भावार्थ—दुःखको जानता है, दुःखके कारणको जानता है, दुःखके निरोधको जानता है। दुःख निरोधके उपायको जानता है। दुःख क्या है-(१) जन्म (२) जरा (३) व्याधि (४) मरण (५) शोक, रोग, दुःख, मनकी उदासी, उपायास (परेशानी) (६) जो वस्तु चाहे उसका न मिलना, (७) पांच उपादान स्कंध रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान।

इन दुःखोंका कारण क्या है—जन्म धारणकी तृष्णा, सुख सम्बन्धी इच्छा होना, सुखमें अभिनन्दन करना, जैसे कि (१) कामभोगोंकी तृष्णा, (२) भव पानेकी तृष्णा, (३) विभव (धन) की तृष्णा। दुखका निरोध क्या है—उसी तृष्णासे सर्वथा वैराग्य, उसीका

निरोध, उसीका त्याग, उसीका यतिनिसर्ग, उसीसे मुक्ति, उसमें न लीनता। दुःख निरोधका उपाय। ऊपर लिखित आठ तरहका मार्ग।

नोट—बुद्धचर्या पृ० १२४ महासति वट्ठान सुत्त दीर्घनि: २–२२से विशेष यह विदित होता है कि पांच उपादान स्कंधोंमें रूप उपादान यह है कि स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत तथा मन इनका होना रूप है, इनके द्वारा विषय जाननेसे जो दुःख सुख होता है वह वेदना है। इनके विषयोंको जानना संज्ञा है। इनका वारवार विकल्प होना संस्कार है। इनका विशेष ज्ञान रहना विज्ञान है।

(४) वह सम्यग्दृष्टि "जरा मरणं च पजानाति, जरा मरण समुदयं च पजानाति, जरा मरण निरोधं च पजानाति, जरा मरण निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति–कतमं जरा मरणं—या तेसं सत्तानं तम्हितम्हि सत्तनिकाये जरा जीरणता खंडिच्चं, पालिच्चं, वालिचचता, आयुनो संहानि इंदियानं परिपाको–आयं वुच्चते जरा–यं ते संतेसं सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो अंतरध्यानं मच्चु, मरणं, कालकिरिया, खंधानं भेदो, कलेवरस्स निक्खेयो इयं वुच्चते मरणं। जाति समुदया जरा मरण समुदयो, जातिनिरोधा जरामरण निरोधो अयमेव अट्ठंगिको मग्गो जरामरणनिरोधगामिनी पटिपदा।

भावार्थ—जरा मरणको जानता है। जरा मरणके कारणको जानता है, जरा मरणके निरोधको जानता है, जरा मरण रोकनेवाले मार्गको जानता है। जरा मरण क्या है। उन प्राणियोंके अपने २ शरीरमें जो बुढ़ापा, जीर्णता, खण्डन, सफेद बालोंका होना, झुर्रियें पड़ जाना, आयु नाशक इन्द्रियोंका पक जाना, जरा है। उन उन प्राणियोंका अपने २ शरीरसे च्युत होना, अलग होना, अन्तर्धान होना, मरना, काल करना, स्कंधोंका विखर जाना, कलेवरका छूटना मरण है। जन्मका होना यही जरा मरणका कारण है, जन्मका निरोध जरा

मरणका निरोध है। ऊपर कथित आठ प्रकारका मार्ग जरा मरणके निरोधका उपाय है।

(५) यह सम्यग्दृष्टि "जातिं च पजानाति, जातिसमुदयं च पजानाति, जातिनिरोधं च पजानाति, जातिनिरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति। यातेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये, जाति संजाति, ओक्कंति, अभिनिब्बत्ति, खंधानं पाटभावो, आयतनानां पटिलाभो अयं वुच्चते जाति। भव समुदया जाति समुदयो, भवनिरोधा जातिनिरोधो। अयमेव अट्ठंगिको मग्गो जातिनिरोधगामिनी पटिपदा।"

भावार्थ—जन्मको जानता है, जन्मके कारणको जानता है। जन्मके निरोधको जानता है, जन्म निरोधके उपायको जानता है। उन उन प्राणियोंका अपने अपने शरीरमें जन्मना, पैदा होना, अंकुरित होना, बढ़ना, स्कंधोंका प्रगट होना, इन्द्रियोंके आकारोंका लाभ होना सो जन्म है। भव या गति जन्मका कारण है। भव निरोध जन्मका निरोध है। जन्म निरोधका उपाय यह आठ प्रकारका मार्ग है।

(६) वह सम्यग्दृष्टी—"भवं च पजानाति, भवसमुदयं च पजानाति—भव निरोधं च पजानाति, भव निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति तया इमे भवाः—कामभवो रूपभवो, अरूपभवो। उपादान समुदया भवसमुदयो, उपादान निरोधा भवनिरोधो, अयमेव अट्ठंगको मग्गो भवनिरोधगामिनी पटिपदा।"

भावार्थ—भवको जानता है। भवके कारणको जानता है। भवके निरोधको जानता है। भव निरोधके मार्गको जानता है। तीन प्रकारके भव हैं—(१) काम भव—(सर्व मानवादिसे लेकर छः दिव्यलोक तक जहांतक स्त्री सम्भोग है काम भव कहलाता है), (२) रूप भव—(ब्रह्मलोक १६ हैं वहां शरीर है कामभोग नहीं), (३) अरूप भव—(ये ४ हैं—यहां स्थूल शरीर नहीं) उपादान अर्थात् तृष्णाका संस्कार

या घोर तृष्णाका होना भव पानेका कारण है। उपादानका निरोध भवका निरोध है। भवनिरोधका उपाय-ऊपर कथित ८ प्रकारका मार्ग है।

(७) वह सम्यग्दृष्टी—" उपादानं च पजानाति, उपादान समुदयं च पजानाति, उपादाननिरोधं च पजानाति, उपादान निरोध-गामिनी पटिपदं च पजानाति। उपादानं चत्तारोः—(१) काम, (२) दिट्ठि, (३) सीलब्बत, (४) अत्तवाद। तण्हा समुदया उपादान समुदयो, तण्हानिरोधा उपादान निरोधो, अयमेव अट्ठंगिको मग्गो उपादान निरोध गामिनी पटिपदं।"

भावार्थ—उपादानको जानता है, उपादानके कारणको जानता है, उपादानके निरोधको जानता है, उपादान निरोधके मार्गको जानता है। चार उपादान हैं—(१) कामभोगकी आसक्ति, (२) मिथ्या विचारोंकी आसक्ति, (३) व्रत नियम शील बाहरी चारित्रमें आसक्ति, (४) अनात्मामें आत्मबुद्धि, उसमें आसक्ति। तृष्णाका होना उपादानका कारण है। तृष्णाका निरोध उपादानका निरोध है। यह ऊपर कथित आठ प्रकारका मार्ग है।

(८) वह सम्यग्दृष्टी—"तण्हं पजानाति, तण्हासमुदयं च पजानाति, तण्हा निरोधं च पजानाति, तण्हानिरोध गामिनी पटिपदं च पजानाति। छय इमे तण्हाः—(१) रूप, (२) सद्द, (३) गंध, (४) रस, (५) कोत्थ, (६) धम्म। वेदना समुदया तण्हा समुदयो, वेदना निरोधा तण्हा निरोधो। अयमेव अट्ठंगिको मग्गो तण्हानिरोध गामिनी पटिपदा।

भावार्थ—तृष्णाको जानता है, तृष्णाके कारणको जानता है। तृष्णा निरोधको जानता है, तृष्णा निरोधके मार्गको जानता है। छः प्रकारकी तृष्णा होती है। (१) रूप देखनेकी, (२) शब्द सुननेकी, (३) गंध लेनेकी, (४) रस लेनेकी, (५) स्पर्श करनेकी, (६)

मनके विकल्पोंकी। वेदनाका होना तृष्णाका कारण है, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध है। यह ऊपर लिखित आठ प्रकारका मार्ग तृष्णा निरोधका मार्ग है।

(९) सम्यक्‌दृष्टि—" वेदनं च पजानाति, वेदनासमुदयं च पजानाति, वेदना निरोधं च पजानाति, वेदना निरोधगामिनी पटिपदंच पजानाति, छय इमे वेदनाकाया:। (१) चक्खुसंफस्सजा वेदना, (२) सोतसं फस्सजा, (३) घाणसंफस्सजा, (४) जिह्वा संफस्सजा, (५) कायसंफस्सजा, (६) मनोसंफस्सजा। फस्स समुदया वेदना समुदयो, फस्स निरोधा वेदना निरोधो, अयमेव अट्ठंगिको मग्गो वेदना निरोधगामिनी पटिपदा "

भावार्थ—वेदना (सुख दुःखका अनुभव) को जानता है, वेदनाके कारणको जानता है, वेदनाके निरोधको जानता है, वेदना निरोधके मार्गको जानता है। वेदना छः तरहसे होती है। (१) आंखके द्वारा देखनेसे, (२) कानसे सुननेसे, (३) नाकसे सूंघनेसे, (४) जबानसे स्वाद लेनेसे, (५) शरीरके स्पर्शसे, (६) मनके विकल्पसे। इंद्रियोंका सम्बन्ध वेदनाका कारण है। इंद्रिय सम्बन्धका निरोध वेदना निरोध है। ऊपर लिखित यह आठ तरहका मार्ग वेदना निरोधका मार्ग है।

(१०) वह सम्यग्दृष्टी—"फस्सं च पजानाति, फस्स समुदयं च पजानाति, फस्सनिरोधं च पजानाति, फस्सनिरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति। छय इमे फस्सकाया:—(१) चक्खु संफस्सो, (२) सोत सं०, (३) घान सं०, (४) जिह्वा सं०, (५) काय सं०, (६) मनोसंफस्सो। सलायतन समुदया फस्ससमुदयो, सलायतन निरोधा फस्सनिरोधो। अयमेव अट्ठंगिको मग्गो फस्सनिरोधगामिनी पटिपदा।"

भावार्थ—इंद्रिय सम्बन्धको जानता है, इंद्रिय सम्बन्धके कारणको जानता है, इंद्रिय सम्बन्ध निरोधको जानता है, इंद्रिय सम्बन्ध

निरोधके मार्गको जानता है। छः प्रकार इंद्रिय संबन्ध होता है (१) चक्षु संबन्ध, (२) श्रोत्र सं०, (३) घ्राण सं०, (४) जिह्वा सं० (५) शरीर सं०, (६) मन संबन्ध। छः आयतनके होनेसे इंद्रियसंबन्ध होता है, छः आयतनका निरोध सम्बन्ध निरोध है। सम्बंध निरोधका मार्ग यह ऊपर कथित आठ प्रकार मार्ग है।

(११) वह सम्यग्दृष्टि "सलायतनं च पजानाति सलायतनसमुदयं च पजानाति सलायतननिरोधं च पजानाति सलायतन निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति। छय इमे आयतनानि:-(१) चक्खु, (२) सोतं, (३) घान, (४) जिह्वो, (५) काय, (६) मनो। नामरूप समुदया सलायतन समुदयो, नामरूप निरोधा सलायतन निरोधो, अयमेव अट्ठंगिको मग्गो सलायतन निरोध गामिनी पटिपदा।"

भावार्थ-षट् आयतनको जानता है। छः आयतनके कारणको जानता है। छः आयतनके निरोधको जानता है। छः आयतन निरोधका मार्ग जानता है। छः आयतन हैं-(१) चक्षु, (२) श्रोत्र, (३) घ्राण, (४) जिह्वा, (५) शरीर, (६) मन। नामरूपका होना छः आयतनका कारण है। नामरूपका निरोध छः आयतनका निरोध है। छः आयतनके निरोधका मार्ग ऊपर कथित आठ प्रकारका मार्ग है।

नोट—नामरूपका भाव The doctrine of the Budha by George Grimm (1926)

नाम पुस्तकमें यह भाव दिया है—

By rupa he means body consisting of inarganic matter and by *nama*, the faculty of sensation, perception, of thought, of contact, of attention and so on, The meaning of *Nama-rupa* is that of a body capable of life. *Nama-rupa* is six-sense machine. *Nama-Kaya*-mental body, *Rupa-Kaya* material body.

भावार्थ-रूपसे प्रयोजन शरीरसे है जो जड़ पदार्थसे बना है।

नामसे मतलब वेदना, संज्ञा, संस्कार, सम्बन्ध आदिसे है। नामरूप उस शरीरको कहते हैं जिसमें जीवनकी योग्यता हो। नामरूप–यह छः इन्द्रियोंका यंत्र है–नामकायका भाव मानसिक शरीरसे है। रूप कायका भाव भौतिक शरीरसे है।

(१२) वह सम्यग्दृष्टी–"नामरूपं च पजानाति, नामरूप समुदयं च पजानाति, नामरूपनिरोधं च पजानाति, नामरूप निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति। वेदना, संज्ञा, चेतना, फस्सो, मनसिकारो, इदं वुच्चते नाम; चत्तारिं महाभूतानि, चतुन्नं च महाभूतानं उपादाय रूपं। विज्ञान समुदया नामरूप समुदयो, विज्ञान निरोधा नामरूप निरोधो। अयमेव अट्ठंगिको मग्गो नामरूप निरोधगामिनी पटिपदा।"

भावार्थ—नामरूपको जानता है, नामरूपके कारणको जानता है, नामरूपके निरोधको जानता है, नामरूप निरोधके मार्गको जानता है। वेदना, संज्ञा (जानना), चेतना, स्पर्श (सम्बंध), मनके विचार नाम कहलाते हैं। चार महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) हैं उनके संग्रहसे रूप या शरीर बना है। विज्ञानका होना नामरूपका कारण है। विज्ञानका निरोध नामरूपका निरोध है। ऊपर कथित आठ प्रकारका मार्ग नामरूप निरोधका मार्ग है।

नोट—वास्तवमें नामके भीतर सर्व संसारीक चेतनके विकल्प व अशुद्ध ज्ञान गर्भित है। नामरूप ही संसार है। जैन सिद्धांतके अनुसार भी जितनी अशुद्ध पर्यायें संसारमें होती हैं वे सब कर्म संस्कारके कारणसे हैं। इन सबका नाश ही मोक्ष है। नामरूपका नाश ही निर्वाण है। इस तरह जैन व बौद्धसिद्धांत मिल जाते हैं, नाम मात्र फर्क है।

(१३) वह सम्यग्दृष्टी–"विज्ञानं च पजानाति, विज्ञान समुदयं च पजानाति, विज्ञान निरोधं च पजानाति, विज्ञान निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति। छयइसे विज्ञानकाया:—

(१) चक्खु विञ्ञानं, (२) सोत विञ्ञानं, (३) घान विञ्ञानं, (४) जिह्वा वि०, (५) काय वि०, (६) मनो विञ्ञानं। संखार समुदया विञ्ञान समुदयो, संखार निरोधा विञ्ञान निरोधो, अयमेव अट्ठंगिको मग्गो विञ्ञान निरोधगामिनी पटिपदा।"

भावार्थ–विज्ञानको जानता है। विज्ञानके कारणको जानता है विज्ञानके निरोधको जानता है, विज्ञान निरोधके मार्गको जानता है, छः विज्ञानकाय है–(१) चक्षु सम्बंधी विज्ञान, (२) श्रोत सं०, (३) घ्राण सं०, (४) जिह्वा सं०, (५) काय सं०, (६) मन सम्बन्धी विज्ञान। संस्कारका होना विज्ञानका कारण है। संस्कारका निरोध विज्ञानका निरोध है। विज्ञान निरोध मार्ग–यह अष्टांग मार्ग है। यहां संस्कारको विज्ञानका कारण कहा है, उससे विदित होता है कि एक जन्मके आगे जन्ममें संस्कार ही नूतन शरीरमें विज्ञानको पैदा करता है। संस्कारको कर्मोंका सम्बन्ध कहें तो हानि न होगी।

(१४) वह सम्यग्दृष्टी–"संखारं च पजानाति, संखार समुदयं च पजानाति संखार निरोधं च पजानाति, संखार निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति तियो इमे संखारा–(१) काय संखारो, (२) वाचि संखारो, (३) चित्त संखारो। अविज्जासमुदया संखारसमुदयो अविज्जानिरोधासंखार निरोधो, अयमेव अट्ठंगिको मग्गो संखारनिरोध-गामिनी पटिपदा।"

भावार्थ–संस्कारको जानता है, संस्कारके कारणको जानता है, संस्कारके निरोधको जानता है, संस्कार निरोधके मार्गको जानता है। तीन संस्कार होते हैं (१) कायका संस्कार, (२) वचनका संस्कार, (३) चित्तका संस्कार। अविद्याका होना संस्कारका कारण है। अवि-द्याका निरोध संस्कारका निरोध है। यह आठ प्रकारका मार्ग संस्कार निरोधका मार्ग है।

(१५) वह सम्यक्‌दृष्टि "अविज्जा च पजानाति। अविद्या समुदयं च पजानाति अविज्जा निरोधं च पजानाति, अविज्जा निरोधगामिनी पटिपदं च पजानाति। दुःखे अज्ञानं, दुःखसमुदये अज्ञानं, दुःखनिरोधे अज्ञानं, दुःखनिरोधगामिनी पटिपदाय अज्ञानं अयं वुच्चते अविज्जा। आसव समुदया अविज्जासमुदयो, आसवनिरोधा अविज्जा निरोधो अयं च अट्ठंगिको मग्गो अविज्जा निरोधगामिनी पटिपदा।"

भावार्थ—अविद्याको जानता है, अविद्याके निरोधको जानता है, अविद्या निरोधके मार्गको जानता है। दुःखमें अज्ञान, दुःखके कारणमें अज्ञान, दुःख निरोधमें अज्ञान, दुःख निरोध मार्गमें अज्ञान इसको अविद्या कहते हैं। आस्रवका होना अविद्याका कारण है। आस्रवका निरोध अविद्याका निरोध है। यह आठ प्रकारका योग अविद्या निरोधका मार्ग है—

(१६) वह सम्यक्‌दृष्टि—"आसवं च पजानाति, आसवसमुदयं च पजानाति, आसवनिरोधं च पजानाति, आसवनिरोधगामिनी, पटिपदं च पजानाति, तयो इमे आसवोः। कामासवो, भवासवो, अविज्जासवो। अविज्जासमुदया आसवसमुदयो, अविज्जानिरोधा आसवनिरोधो, अयं एव अट्ठंगिको मग्गो आसवनिरोधगामिनी पटिपदा। एवं आसवनिरोधगामिनी पटिपदं पजानाति सो सब्बसो रागानुसयं पहाय पटिघानुसयं पटविनोदेत्ता अस्मीति दिट्ठी मानानुसयं सम्मूहनित्वा अविज्जं पहाय, विज्जं उप्पादे त्वा दिट्ठेवधम्मे दुक्खस्स अंतकरो होति। एतावता अरियसावको सम्यादिट्ठि होती उज्जगताऽस्सदिट्ठि, अवेचप्पसादेन समन्नागतो आगतो इमं सद्धम्मंति।

भावार्थ—आस्रवको जानता है, आस्रवके कारणको जानता है। आस्रवके निरोधको जानता है—आस्रव निरोधके मार्गको जानता है, तीन प्रकार आस्रव हैं : कामास्रव, भवास्रव, अविद्यास्रव। अविद्याका

होना आस्रवका कारण है। अविद्याका निरोध आस्रवका निरोध है। वह आठ तरहका मार्ग आस्रवका निरोधका मार्ग है।.......

इस तरह जो आस्रव निरोधके मार्गको जानता है वह रागके मैलको दूरकर, द्वेषके मैलको मिटाकर, मैं हूं इस (मिथ्या) दृष्टि-रूप मानके मैलको दूरकर, अविद्याको मेटकर विद्याको उत्पन्न कर इसी ही शरीरमें रहते हुए दु:खको अंत कर देता है। इस तरह आर्य श्रावक सम्यग्दृष्टि होता है। उसकी दृष्टि यथार्थ होजाती है। अविचल श्रद्धानमें जम जाता है। वह इस सद्धर्मको जान लेता है।

नोट–इस सम्यग्दृष्टि सूत्रमें नीचे लिखी बातोंको जानकर उनके रोकनेका उपाय करना बताया है। १३ बातोंको उल्टे क्रमसे देखें तो इस तरह है–(१) आस्रव, (२) अविद्या, (३) मन वचन काय संस्कार, (४) छः विज्ञानकाय, (५) नामरूप, (६) छः इन्द्रिय आयतन, (७) छः इन्द्रिय सम्बन्ध, (८) छः इन्द्रिय वेदना, (९) छः इन्द्रिय तृष्णा, (१०) चार उपादान, (११) भव, (१२) जाति, (१३) जरामरण। ये १३ बातें एक दूसरेके कारण हैं। पहले १० कुशल व १० कुशल धर्म कहे हैं। फिर चार प्रकार आहार कहकर उनका कारण तृष्णाको बताया है। फिर सात प्रकार दु:खोंको कहकर उनका कारण तीन प्रकार तृष्णाको बताया है। उन सबका यथार्थ ज्ञान सम्यग्दृष्टीको होना चाहिये।

यहांपर एक बात विचारनेकी यह है कि इन शेष १२ बातोंका परम्परा कारण आस्रव है। वे आस्रव तीन बताए हैं–कामास्रव, भवास्रव, अविद्या आस्रव। फिर इन तीनोंका कारण भी अविद्याको अन्तमें बताया है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि अविद्या आस्रवका कारण है और आस्रव अविद्याका कारण है।

दु:ख, दु:खके कारण, दु:खका निरोध, दु:ख निरोधके मार्गका जानना ही अविद्या है। दु:ख सात हैं–(१) जन्म, (२) जरा, (३)

रोग, (४) मरण, (५) शोक परिवेदना, (६) इच्छानुसार न मिलना, (७) पांच उपादान स्कंध रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान। इन दुःखोंका कारण तृष्णाको वताया है-वह तृष्णा तीन प्रकारकी है-कामकी, मनकी, विभवकी। तृष्णाके नाश करनेसे दुःख निरोध होजाता है। (विभवका अर्थ धन भी होसक्ता है तथा सूक्ष्म दृष्टिसे भवसे रहित होना भी होसक्ता है) इस सर्वका सारांश यह निकलता है कि अविद्या ही संसारमें वार वार जन्म लेनेका मूल है। तथा सर्वको खोनेका उपाय आठ तरह मोक्षमार्गपर चलना है। बौद्ध साहित्यमें इस आठ प्रकारके मार्गको बहुतसे स्थानोंपर वताया है।

बुद्धचर्या पृ० १२६ महासति पट्ठानसुत्त दीर्घनिकाय २-२२ मेंसे इन आठोंका जो विवरण दिया है वह संक्षेपसे नीचे प्रकार है—

(१) सम्यग्दृष्टि-दुःख दुःखका कारण, दुःख निरोध व दुःख निरोध मार्गका ज्ञान (यथार्थ श्रद्धापूर्वक ज्ञान)

(२) सम्यक्संकल्प-कर्म रहित होनेका संकल्प (दृढ उद्देश्य) अव्यापाद या द्रोह रहित होनेका संकल्प, अहिंसाका संकल्प।

(३) सम्यक्वचन-मृषावाद, चुगली, कड़ा वचन, वकवाद छोडना।

(४) सम्यक् कर्मान्त—प्राणातिपात (हिंसा) से, अदत्तादान (चोरी) से, काम उपभोगके दुराचारसे विरक्त होना।

(५) सम्यक् आजीव-मिथ्या आजीविका छोड सम्यक् करना।

(६) सम्यक् व्यायाम-न उत्पन्न हुए अकुशलभाव न पैदा होनेका निश्चय करता है, परिश्रम करता है, उद्योग करता है, चित्तको पकडता है, रोकता है। उत्पन्न हुए अकुशलभावोंके छोडनेका निश्चय करता है, परिश्रम करता है। न उत्पन्न हुए कुशल धर्मकी उत्पत्तिके

लिए निश्चय करता है, परिश्रम करता है। उत्पन्न कुशल धर्मोंकी स्थिति, वढ़ती, भावना, परिपूर्णताके लिये निश्चय करता है, परिश्रम करता है।

(७) सम्यक् स्मृति—शरीरकी अशुचि आदिका स्मरण रखता है। इसके लिये लोभ व सन्ताप नहीं करता है। इसी तरह वेदनामें चित्तमें व अन्य धर्मों (भावों) में उनके स्वरूपकी दृढ़ता रखता है।

(८) सम्यक् समाधि—भिक्षु काम और अकुशल धर्मोंसे अलग हो सवितर्क, सविचार, विवेकसे उत्पन्न प्रीति सुखवाला प्रथम ध्यान करता है। (२) फिर वितर्क और विचारके शांत होजानेपर भीतरी शांति, चित्तकी एकाग्रता, अवितर्क अविचार, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यानको करता है, (२) प्रीतिसे भी विरक्त और उपेक्षक हो, स्मृतिवान हो, अनुभववान हो, सुखको भी अनुभव करता हुआ जिसको आर्य लोग उपेक्षक स्मृतिमान्, सुखविहारी कहते हैं ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त होता है, (३) सुख दुःखके त्यागसे, सोमनस्य दौर्मनस्यके अस्त होजानेसे, अदुःख, असुख, उपेक्षा स्मृतिकी परिशुद्धता रूपी चतुर्थ ध्यानको प्राप्त होता है।

सम्यक् स्मृति नामके सातवें मार्गमें विशेष जाननेकी आवश्यक्ता है, इसलिये उसका कथन आगे किया जाता है।

(३) मज्झिमनिकायके दसमें सतिपट्ठान सुत्तका संक्षेप भाव।

भगवान् एतदवोचः—एकायनो अयं मग्गो, सत्तानं विसुद्धिया, सोकपरिद्दवानं समतिक्कमाय दुक्खदोमनस्सानं अत्थगमाय ञायस्स अधिगमाय, निब्बानस्स सच्छिकिरियाय, यदि दं चत्तारो सतिपट्ठाना कतमे चत्तारोः इध भिक्खवे।

(१) काये कायानुपस्सी विहरति, आतापी, संपजानो, सतिमा,

विनेय्यलोके अभिज्झा दोमनस्सं; (२) वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति आतापी० ।; (३) चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति आतापी०; (४) धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी० ।

भावार्थ–भगवानने ऐसा कहा–एक यह मार्ग है प्राणियोंकी शुद्धिके लिये, शोक रुदनादिके हटानेके लिये, दुःख वमनका बुरा भाव अस्त करनेके लिये, सत्य ज्ञानके जाननेके लिये, निर्वाणको साक्षात्कारके लियेः–यह वह चार प्रकारका स्मृति प्रस्थान (धारणामें स्थिति) है। वे चार क्या हैः–वह भिक्खु शरीरमें शरीर-रूपपना देखता हुआ विहार करे, वेदनामें वेदनापना देखता हुआ विहार करे, चित्तमें चित्तपना देखता विहार करे,–धर्मोंमें (नाना विभावोंमें) धर्मपना देखता विहार करे, इन चारोंके यथार्थ-स्वरूपमें प्रयत्नवान हो, जानकार हो, स्मृतिमान हो, इस लोकमें लोभ तथा मनके खोटे भावोंको दूर करके रहे।

इन चारोंका किस तरह स्वरूप विचारे इसका मात्र भाव हिंदीमें संक्षेपसे दिया जाता है। विस्तार भयसे पाली नहीं लिखा जाता है।

कायका विचार–(१) किसी वन आदिमें जाकर पल्यंकासन बैठ सीधा शरीर रख अपने मुखकी ओर स्मृति रक्खे, दीर्घ या ह्रस्व श्वास लेता हुआ वैसा ही जाने अर्थात् प्राणायामका अभ्यास करते हुए शरीरकी स्थितिको पहचाने, यह उत्पन्न विनाशशील है। इससे वैरागी रहना योग्य है। इस शरीरके भीतर कोई वस्तु ग्रहण योग्य नहीं है।

(२) चलते हुए, खड़े हुए, बैठे हुए, सोते हुए या जिस तरह शरीर रहता हो उसको ठीक ठीक जाने अर्थात् कायके वर्तनमें प्रमादी न हो।

(३) पास व दूर जाते हुए, देखते हुए, हाथ पैर पसारते हुए, कपड़ा पहनते हुए, असन, पान, खाद्य, स्वाद लेते हुए (नोट–यहां

जैनोंकी तरह चार तरहका आहार बताया है), मलादि करते हुए, सोते, जागते, बोलते, मौन रहते आदि कार्योंमें भले प्रकार जानकार रहे, प्रमादी न हो।

(४) फिर यह विचारे कि यह शरीर ऊपरसे पैर तक, पैरसे मस्तकके केशतक नाना प्रकार अपवित्रतासे भरा है। इसमें हड्डी, मांस रुधिर, नसें, चरबी, पसीना, थूक, नाक, पीप, मल आदिसे भरा हुआ है। जैसे एक बोरेमें बहुत प्रकारका अन्न भरा हो, समझदार हर-एकको अलग २ पहिचानता है कि यह चावल है, यह दाल है, उसी तरह ज्ञानी शरीरके बाहर भीतर क्या है सो पहचानकर विरागी होता है।

(५) फिर यह विचारे कि यह शरीर पृथ्वी धातु, जल धातु, अग्नि धातु, वायु धातुसे बना हुआ है। इन्हींकी सर्व रचना है।

(६) फिर यह विचारे कि जैसे मृतक शरीर बिगड़ जाता है वैसे यह शरीर निश्चयसे बिगड़ जायगा।

(७) फिर यह विचारे कि जैसे मुरदेको काक, बाजपक्षी खाने लगते हैं ऐसा ही यह शरीर है।

(८) फिर यह विचारे कि जैसे मृतक शरीरके खण्ड २ अलग २ पड़े हों—यह कमर है, यह मस्तक है, यह पाद है, यह हाथ है ऐसा ही खण्ड होनेवाला यह शरीर है।

(९) फिर यह विचारे कि जैसे शरीरकी हड्डियां चूरा चूरा हो जाती है, ऐसा ही यह शरीर बिखरकर चूरा होनेवाला है, इस तरह शरीरका नाश व अशुचिभाव विचार कर वैराग्य भावना भावे।

(२) वेदनाका विचार—सुख होते हुए मैं सुख वेदन करता हूं ऐसा जानता है। दुख पड़ते हुए मैं दुःख वेदता हूं ऐसा जानता है। जब सुख व दुःख न हो तब वैसा जानता है। जब संसारिक

सुख दुःख हो तब वैसा जानता है। जब अल्प तृष्णारूप सुख दुःख हो तब वैसा जानता है। अंतरंग व वाहर वेदनाको व उनके कारणोंको जानता है। वेदनाको जानते हुए उनमें उपादेय बुद्धि नहीं रखता है।

(३) चित्तका विचार—सराग चित्तको सराग जानता है, वीत-राग चित्तको वीतराग जानता है, सद्वेष चित्तको सद्वेष जानता है, निर्द्वेष चित्तको निर्द्वेष जानता है। समोह चित्तको समोह, वीतमोहको वीतमोह, संक्षिप्त (स्थिर) चित्तको संक्षिप्त, विक्षिप्त (चंचल) चित्तको विक्षिप्त, महत्वपनेको प्राप्त चित्तको, अमहत्व चित्तको, उदारचित्तको, अनुदार चित्तको, शांत चित्तको, अशांत चित्तको, वैराग्यवान चित्तको, अवैराग्यवान चित्तको, जैसा कुछ चित्त हो उसके अन्दर व बाहरकी दशाको जानता है। वस्तुस्वरूप जानके किसी वस्तुको लोकमें ग्रहण नहीं करता है " न किंचि लोके उपादियति।"

(४) धर्मोंका विचार—पांच निवारणोंका विचार, (१) काम छंद भोगोंकी इच्छा, (२) व्यापाद—द्वेष, (३) स्त्यानगृद्ध—आलस्य, (४) औद्धत्य—कौकृत्य-उद्वेग-खेद, (५) विचिकित्सा—संशय। इन पांचोंके सम्बन्धमें विचारता है कि मेरे भीतर हैं या नहीं। यदि हैं तो वैसा जानता है, नहीं है तो वैसा जानता है। ये नहीं हैं परन्तु ये कैसे उत्पन्न होजाते हैं सो जानता है। यदि ये हैं तो इनका नाश कैसे होता है यह जानता है। उत्पन्न होकर फिर आगे ये न उत्पन्न हो सो भी जानता है। इन पांचोंकी बाहरी व भीतरी दशाको जानता है। इसकी उत्पत्ति व नाशको पहचानता है।

(२) पांच उपादान स्कंधोंका विचार—यह रूप है, यह रूपकी उत्पत्ति है, यह रूपका नाश है। इसी प्रकार वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान इनका स्वरूप, इनकी उत्पत्ति व इनके नाशका विचार करता है, इनकी बाहरी भीतरी अवस्थाओंको पहचानता है।

(३) छः अंतरंग बहिरंग आयतनोंका विचारः-(१) चक्षुको जानता है। चक्षुद्वारा ग्रहण किया हुआ रूप विषयको जानता है। इन दोनोंके सम्बन्धसे जो मेल या राग उत्पन्न होता है उसे जानता है, न उत्पन्न हुए मेलकी उत्पत्तिको पहचानता है, उत्पन्न हुए मेलके नाशको जानता है। नाश होकर फिर मेल आगे न उत्पन्न हो ऐसा जानता है। इस तरह (२) श्रोत्र, (३) घ्राण, (४) जिह्वा, (५) काय, (६) मनके सम्बन्धमें जानता है।

(४) सात बोधि-अंगों (बुद्धत्व प्राप्तिके अंग) का विचार-(१) स्मृति संबोधि अंग भीतर हो तो जानता है नहीं हो तो वैसा जानता है। न उत्पन्न स्मृति संबोधि उत्पन्न कैसे हो सो जानता है, उत्पन्न स्मृति संबोधि कैसे स्थिर रहे, पूर्ण चली जाय सो जानता है। इसी तरह (२) धर्म विचय-धर्मका मनन, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि-शांति, (६) समाधि, (७) उपेक्षा इनके सम्बन्धमें जानकारी रखता है।

(५) चार आर्य सत्यका विचार-(१) यह दुःख है, (२) यह दुःखका कारण है, (३) यह दुःखका निरोध है, (४) यह दुःख निरोधका मार्ग है। इनका यथार्थ स्वरूप जानता है।

सम्यक्समाधि-जो आठवां मार्ग है उसमें मात्र चार ध्यानका वर्णन है। परन्तु इसके आगे और भी ध्यान करना होता है। उनका कथन मज्झिमनिकायके आठवें सल्लेखसुत्तमें है—

(१) आकाश, आनन्त्य, आयतन ध्यान-जिसमें अनंत आकाशपर दृष्टि रहती है ऐसा समझमें आता है।

(२) विज्ञान आनन्त्य आयतन-ध्यान-इसमें अनंत विज्ञानका विचार है ऐसा झलकता है।

(३) आकिंचन्य आयतन ध्यान (न कुछ भी अपना है)।

(४) नैव संज्ञानासंज्ञा-आयतन ध्यान-इसमें संज्ञा व असंज्ञाकी कल्पना कुछ नहीं रहती है।

नोट-यह अंतिम ध्यान निर्वाणके लिये मालूम होता है।

जैसा ऊपर कहा गया है वह सर्व संसारका मूल कारण अविद्या या मिथ्याज्ञान है।

---

(४) निर्वाण मार्गके कुछ और प्रमाण।

The Doctrine of Budha—

By Geoge Gruim पुस्तकमें कहा है:—

Page 287-288-Ignorance is the basis of the whole chain of suffering. Ignorance is the deep night, wherein we here so long are circling round. (Sutta Nipata V. 730).

If ignorance is abolished, thirst and together with it all causality is uprooted for ever, those who have vanquished delusion, and broken through the dense darkness, will wander no more. Causality exists no more for them (Itivuttaka 114)

Independence on ignorance अविद्या arises organic process of senses. Independence on them arises consciousness विज्ञान; in dependence on विज्ञान arises corporeal organisations नामरूप; in dependence on नामरूप arises six organs of sense षट्आयतन, then contact फास, then sensation वेदना, then thirst तृष्णा, then grasping उपादान, then becoming भव, then birth जाति, then old age, death, sorrow, lamentation, pain, grief, despair (Udan I. 37).

भावार्थ-दुःखकी सम्पूर्ण शृंखलाका मूल अविद्या है। अविद्या गंभीर रात्रि है जहां हम बराबर चक्कर लगा रहे हैं। (सुत्तनिपात श्लो० ७३०)

यदि अविद्याका नाश कर दिया जावे तो तृष्णा व उसके साथ सब कारणकलाप सदाके लिये नाश होजावें। जिन्होंने मिथ्या मोह (दर्शन

मोह) को नाश कर दिया है और घोर अंधकारको दूर कर दिया है वे फिर न भ्रमण करेंगे। उनके लिये संसारका कारण नहीं रहता है।

(इतिवुत्तक ११४)

अविद्यासे ही इंद्रियभोगकी निधि उठती है, उनही इंद्रियोंसे विज्ञान होता है, विज्ञानसे नामरूप होते हैं। नामरूपसे छः इंद्रिय आयतन होते हैं, तब उनका सम्बन्ध होता है, तब वेदना होती है, तब तृष्णा होती है, तब उपादान होता है, तब भव (गति) निश्चय होता है, तब जन्म होता है, तब जरा, मरण, शोक, परिदेवन, दुःख, खेद, निराशा होती है। (उदान १।२७)

ऊपर जो आठ प्रकारका निर्वाणका मार्ग बताया है उनमें सम्यग्दर्शन मूल है। ऊपर लिखित इंग्रेजी पुस्तकमें है—

Page 369-This correct view is the very first element of the path constructed by the Budha for the annihilation of suffering. He himself calls it सम्मादिट्ठि right view.

भावार्थ—जो मार्ग बुद्धने बताया है उसका प्रथम भेद जो यथार्थ श्रद्धा है वही दुःखके नाशका मूल उपाय है, इसीको उसने स्वयं सम्यक्दर्शन कहा है।

वहीं ध्यानके अभ्यासकी आवश्यक्ता बताई है—

Page 394-Contemplating and contemplating we will purify our deeds; contemplating and contemplating we will purify our words; contemplating and contemplating we will purify our thoughts. Thus, Rahul, you ought to exercise yourself (M. 1. P. 420)

भावार्थ—ध्यान करते २ हम अपने कामोंको शुद्ध करेंगे। ध्यान करते करते हम अपने वचनोंको शुद्ध करेंगे। ध्यान करते करते हम अपने भावोंको शुद्ध करेंगे। इसलिये राहुल! तू अपने आप ध्यानका अभ्यास करे। (मज्झिम नि० १ पृष्ठ ४२०)

(९) धम्मपद।

(इंग्रेजी तर्जुमा Sacred books of East. Vol X 1881).

अध्याय २० में निर्वाणका मार्ग बताया है:—

273-The best of way is the eightfold; the best of truths is the four words (pain, its origin, its destruction, its way); the best of virtues passionlessness; the best of men he who has eyes to see.

276-You yourself make an effort, the Tathagatas are only preachers. The thoughtful who enters the way are freed from the bondage of *Mara*.

277-All created things perish; he who knows and sees this becomes passive in pain; this is the way of purity.

305-He alone who, without ceasing, practises the duty of sitting alone, and sleeping alone, he subdues himself, will rejoice in the destruction of all desires alone, as if living in a forest.

भावार्थ—सर्वोत्तम मार्ग आठ प्रकार है; सर्वोत्तम सत्य चार आत्म सत्य है। दुःख दुःखका कारण, दुःख नाश व उसका मार्ग। सर्वोत्तम धर्म कषायरहितपना (वीतरागता) है। श्रेष्ठ मानव वह है जिसके पास देखनेको चक्षु हैं।

तुम आप ही पुरुषार्थ करो। तथागत मात्र उपदेशकर्ता है। जो विचारशील मार्गपर चलते हैं वे मार (कामदेव) के बंधनसे छूट जाते हैं। सर्व कृत्रिम पदार्थ नाशवंत हैं। जो ऐसा जानता व देखता है वह दुःखमें समता रखता है। यही पवित्रताका मार्ग है।

वही अकेला जो निरंतर एकांतमें बैठनेका व एकांतमें सोनेका अभ्यास करता है वही अपनेको विजय करता है, वह अकेला ही सर्व इच्छाओंके नाशसे आनंद भोगेगा, मानो वह वनमें निवास करता है।

---

(६) सुत्तनिपातके कुछ वाक्य।

Translated by E. V. Fansboll (1881)

(4) Kasibharadvaja Sutta Bhagwan said:—

2–Faith is the seed, penance the rain, understanding my yoke and plough, modesty the pole of the plough, mind the tie, thoughtfulness my plough shore and goad.

3–I am guarded in respect of the body, I am guarded in respect of speech, temperate in food, I make truth to cut away (weeds), tenderness is my deliverance.

4–Exertion is my breast of burden, carrying me to Nibban, he goes without turning back to the place, when having gone, one does not grieve.

5–So this ploughing is ploughed, it bears the fruit of immortality, having ploughed this ploughing, one is freed from pain.

भावार्थ–भगवानने कहा:–श्रद्धा (सम्यग्दृष्टि) बीज है, तप वृष्टि है, प्रज्ञा हल है, नम्रता हलकी डंडी है, मन उनका बंधन है, विचारपना (स्मृति) हल चलानेवाला अंकुश है। मैं शरीर व वचनसे सुरक्षित हूं, भोजनमें संयमी हूं, मैं सत्यसे झड़ियोंको काटता हूं, कोमलता मेरा रक्षक है। व्यायाम भाररूप मेरी छाती है जो मुझे निर्वाणको ले जाती है। उस स्थानको जानेवाला विना पीछे पलटे चला जाता है। यहां जाकर किसीको दुःख नहीं रहता। इस तरह यह हल चलाया गया है, वह अमरत्वका फल पैदा करता है, इस हलको चलाकर हर व्यक्ति दुःखसे मुक्त होजाता है।

II Kula Vagga.

(10) Uttham Sutta

४–Indolence (Pamada) is defilement, continued indolence is defilement; by earnestness (appamada) and knowledge one pull out his arrow.

भावार्थ—प्रमाद मैल—लगातार प्रमाद मैल है। अप्रमाद और ज्ञानसे अपने तीरको चलाना चाहिये।

(6) Gara sutta (Atthavagga IV)

९/८१२—As a drop of water does not stick to a lotus, as water does not stick to a lotus, so the *Muni* does not cling to anything, namely to what is seen or heard or thought.

पाली वाक्य—

उदबिंदु यथापि पोक्खरे, पदमे यथापि न लिप्यति।
एवं मुनिः नोपलिप्यति यत इदं, दिट्ठसुतं मुतेसु वा॥

भावार्थ—जैसे पानीकी बून्द कमलमें लिप्त नहीं होती और न पानी कमलमें लगा रहता है, उसी तरह मुनि देखी, सुनी व विचारी हुई किसी बातमें लिप्त नहीं होता है।

Tuvalaka Sutta.

२/९१६—Let him completely cut off the root of what is called *Papancha* (delusion), thinking "I am wisdom" so said Bhagwata-'all the desires that arise inwardly, let him learn to subdue them, always being thoughtful.'

९/९२०—As in the depth of the sea, no wave is born, (but as it) remains still, so let the Bhikhu be still, without desire, let him not desire anything whatever.

भावार्थ—भगवानने कहा कि मुनिको सम्पूर्ण मोहकी जड़ काट डालना चाहिये। यह अनुभव करना चाहिये कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं। जितनी इच्छाएं भीतर उठें उन सबको ध्यानपूर्वक जीतना चाहिये।

जैसे समुद्र गहराईमें स्थिर रहता है, वहां तरंग नहीं उठती, उसी तरह भिक्षुको इच्छा विना स्थिर रहना चाहिये। किसी भी पदार्थकी इच्छा न करनी चाहिये।

V. Parayana Vagga.

(4) Punnava Manava Pukkha.

1047^{6}—Having considered everything in the world, O punnara, so said Bhagvat, he who is not defeated any where in the world, who is calm without the smoke of passions, free from woe, free from desire, he crossed over birth and oldage.

भावार्थ—भगवत्‌ने कहा, ऐ पुन्नक ! जो जगतकी हर वस्तुका विचार करके जगतमें कहीं नहीं हार पाता है, जो कषायोंके धूम्रके विना, दुःखके विना, तृष्णाके विना निश्चल रहता है वही जन्मजराको पार कर गया है ।

---

(14) Udaya Manava Pukkha.

1108^{3}—The deliverance by knowledge which is purified by equanimity and thoughtfulness and preceded by reasoning on *Dhamma* I will tell thee the splitting up of ignorance.

इसीका पाली वाक्य है—

उपेक्खा सतिसं सुद्धं धम्मतक्क पुरे जवं ।
अण्णा विमोक्खं प्रब्रूमि अविज्जाय व भेदनं ॥

भावार्थ—अविद्याका नाश अर्थात् मुक्ति उस ज्ञानसे होती है. ऐसा मैं तुमको कहता हूं, जो धर्मको तर्क करके समझ जानेके पीछे समता व स्मृतिसे शुद्ध होगया है ।

---

(15) Altdamda Sutta.

(Atthaka Vagga)

$\frac{20}{364}$—The Muni does not reckon himself amongst the plain, nor amongst the low, nor amongst the distinguished being calm and free from avarice, he does not grasp after nor reject anything.

भावार्थ—मुनि न तो अपनेको बड़ोंमें न छोटोंमें न प्रसिद्धोंमें गिनता है। शांत व लोभ रहित होकर न वह किसीको ग्रहण करता है न किसीको त्यागता है

विशुद्ध मग्ग।

(6) Path of Purity.

By Budha Ghosh.

Page 63—Whence can there be true happiness to him of broken virtue, who does not forsake sensual pleasures, yielding sharper pain than to embrace a mass of living fire.

Page 161—where darkness exists, there is no lamp light, so this concentration does not arise in the presence of sensual desires.

Page 494—Monks, I do not perceive any one state [illegible] an offence as wrong view. Wrong views are supreme offences.

भावार्थ—अग्निके समूहसे लिपटनेसे जो कष्ट नहीं होता है, उससे अधिक कष्ट इंद्रिय विषयभोगोंसे होता है। जो ऐसे विषयोंको नहीं त्यागता है, उस खंडित धर्मचारीको सच्चा सुख कैसे होसक्ता है। जहां अंधेरा है वहां प्रकाश नहीं है; वैसे जहां इंद्रियसुखकी तृष्णा है वहां ध्यान नहीं पैदा होसक्ता।

ऐ साधुओं! मैं मिथ्यादर्शनके मुकाबलेमें कोई बड़ा पाप नहीं देखता हूं। मिथ्यादर्शन बड़ा भारी पाप है।

(8) Manuscript remains of Budhist Literature in Eastern Turkestan by A. F. Rudolf Heernle (1916)

इस पुस्तकमेंसे कुछ वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

Page 4—Vinaya text

सन्निषितव्यं संप्रजानेन गंतव्यं संप्रजानेन ।
स्थातव्यं संप्रजानेन निषीदत्तव्यं संप्रजानेन ॥
भोक्तव्यं उपस्थितिस्मृतिना अविक्षिप्तचित्तेन
प्रासादिकेन ईर्यापथसम्पन्नेन सुसंवृत्तेन ॥
युगांतर प्रेक्षिणा सगौरवेण ।

भावार्थ–ज्ञानपूर्वक बैठना, जाना, खड़े होना व भोजन करना चाहिये। स्मृतिको रखते हुए थिरचित्त करके प्रसन्नतासे इर्यापथसे संवर रूपसे चार हाथ पृथ्वी आगे देखते हुए गंभीरताके साथ चलना चाहिये।

(७) सुवर्णप्रभास्तोत्रं—

४–अयश्च कायो यथा शून्यग्रामः षट्ग्रामचौरोपमइन्द्रियाणि ।
तान्येव ग्रामे निवसंति सर्वे न ते विजानन्ति परस्परेण ॥
५–चक्ष्वेंद्रियं रूपगतेषु धावति, श्रोत्रेन्द्रियं शब्दविचारनेन ।
घ्राणेन्द्रियं गंधविचित्रहारि जिह्वेन्द्रियं नित्य रसेसु धावते ॥
६–कायेन्द्रियं स्पर्शगतेषु धावति मनेन्द्रियं धर्म विचारनेन ।
षडेन्द्रियाणीति परस्परेण स्वकं स्वकं विषयमनातिक्रांताः ॥
७–चित्तं हि मायोपमचंचलं च षडेन्द्रियं विषयविचारणं च ।
यथैवनरो धावति शून्यग्रामे, षड्ग्रामचोरेभि समाश्रितश्च ॥
८–चित्तं यथा षड्विषयाहितं च प्रजानते इन्द्रियगोचरं च ।
रूपश्च शब्दश्च तथैव गंधो रसश्चस्पर्शस्त्रय धर्मगोचरं ॥
९–चित्तं हि सर्वत्र षड़ेन्द्रियेषु शकुनिरिव चलमिंद्रियसंप्रविष्टं ।
यत्रं च यत्रेन्द्रियसस्कृतं च न चेन्द्रियं कुर्वतु ज्ञानमात्मकम् ॥

भावार्थ–यह शरीर एक शून्य ग्रामके समान है। इसमें छः इंद्रियां ग्राम चोरके समान हैं। ये इंद्रियां इस शरीररूपी ग्राममें वसती हैं, परन्तु परस्पर एक दूसरेको नहीं जानती हैं। चक्षुइंद्रिय रूप देख-

नेको दौड़ती है, कर्णइंद्रिय शब्द सुनती है, घ्राणइंद्रिय नानाप्रकार गंध ग्रहण करती है, जिह्वा नाना रसोंमें दौड़ती है। काय इन्द्रिय स्पर्श योग्य पदार्थोंमें जाती है। मन इंद्रिय धर्मोंके विचारमें उलझती है। छः इंद्रियां अपने २ विषयका उल्लंघन नहीं करती हैं। यह चित्त मायाके समान चंचल है। छः इंद्रियोंके विषयोंमें फंस जाता है जैसे कोई मनुष्य शून्य ग्राममें जावे उसे छहों ग्रामके चौर पकड़ने लगें। यह चित्त छः इंद्रियोंके विषयोंको जानता है, यह पक्षीके समान हरएक पर प्रवेश करता रहता है। यह चित्त एक यंत्र है, इंद्रियोंमें लगा रहता है। तू इंद्रियोंमें न रमकर आत्मज्ञान कर।

(८) रत्न राशि सूत्र—

समाधिः आर्याणां ध्वजा, प्रज्ञा आर्याणां ध्वजा, विमुक्तिः आर्याणां ध्वजा, विमुक्तिज्ञानदर्शिनं आर्याणां ध्वजा।

अर्थात्—आर्य पुरुषोंकी ध्वजा, समाधि है, प्रज्ञा है, विमुक्ति है व विमुक्तिका ज्ञान दर्शन है।

---

(9) Sacred book of Buddhists—

Vol. III by T. W. Rys Davids (1910) Digha Nikaya II.

Maha-Sudassam Suttanta.

Page 194—How transient are all component things. Growth is their nature and decay; They are produced, they are dissolved again. To bring them into full subjection, that is *bliss.*

भावार्थ—सर्व संस्कार किस तरह क्षणिक हैं, उनका स्वभाव पैदा होना व नष्ट होना है। उनको पूर्णपने अपने आधीन करना आनंद है।

जैन शास्त्रोंमें मोक्षमार्ग ।

जिस तरह बौद्ध साहित्यमें आठ तरहका मोक्षमार्ग बताया है उसी तरह जैन साहित्यमें तीन तरहका मोक्षमार्ग कहा है और वह बराबर आठ तरहके मार्गमें समावेश हो जाता है। इसी तरह आठ तरहका मार्ग तीन तरहके मार्गमें समावेश होजाता है। वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूप है। वह तीन तरहका मार्ग रत्नत्रय धर्म कहलाता है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं—

दंसणणाण चरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं ।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१९॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र इन तीनका सेवन साधुको नित्य करना चाहिये। निश्चयनयसे ये तीनों ही एक आत्मा ही जानो।

जैन सिद्धांतमें व्यवहारनयसे भेद रूप और निश्चयनयसे अभेद रूप कथन किया है। भेद दृष्टिसे तीन रूप मोक्षमार्ग है, निश्चयसे एक अपना आत्मा ही मोक्षमार्ग है।

अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान, उसीका यथार्थ ज्ञान व उसीका ध्यान अर्थात् तीन स्वरूप अपना ही शुद्ध आत्मा ध्यान किया हुआ निश्चय रत्नत्रय है। या निश्चय मोक्षमार्ग है।

श्री उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी एकता मोक्षका मार्ग है।

जैन शास्त्रोंमें हरजगह यही मोक्षमार्ग बताया है, अधिक प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं है।

बौद्ध साहित्यमें जो आठ तरहका मार्ग है उनमेंसे सम्यग्दृष्टिः

और सम्यक् संकल्प, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें गर्भित हैं तथा सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि, ये छः सम्यक्चारित्रमें गर्भित हैं। आगे विशेष वर्णनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट होजायगी।

---

(१) सम्यग्दर्शन या सम्यक्दृष्टि।

जैन शास्त्रोंमें ज्ञानपूर्वक सच्चे श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। व्यवहारनयसे सात तत्वोंका श्रद्धान करना जरूरी है।

श्री उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २--१ ॥

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरा मोक्षास्तत्वं ॥४--१॥

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ; इन सात तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

जीव और अजीवमें सर्व जगतका प्रपंच गर्भित है। नाम रूपका सर्व समावेश इन दो तत्त्वोंमें होजाता है। नाममें वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ये चार स्कंध हैं, जो अशुद्ध संसारी जीवमें गर्भित होजाते हैं और रूप जो शरीर है वह अजीवमें गर्भित है।

जैसे बौद्ध साहित्यमें दुःख, दुःखका कारण, दुःख निरोध व दुःख निरोधका उपाय इन चारका ज्ञान व श्रद्धान सम्यग्दर्शन है वैसे ही यहां दुःख और दुःखके कारणको बतानेवाले आस्रव और बंध तत्व हैं तथा दुःख निरोध रूप मोक्ष तत्त्व है तथा दुःख निरोधके मार्गको बतानेवाले संवर और निर्जरा तत्त्व हैं।

जैन सिद्धान्तमें इन आस्रवादि तत्त्वोंके जो शब्दार्थ निकलते हैं उन्हीके अनुसार इनका स्वरूप बताया है।

आस्रवति यत्=जो आता है वह आस्रव है।

येन आस्रवति तत्=जिसके द्वारा वह आता है वह आस्रव है। कर्म पुद्गल—जड़ परमाणुओंके विशेष समूह रूप स्कंधको कहते हैं। उनको कार्मण वर्गणा भी कहते हैं। वे जगतमें पूर्ण हैं, सूक्ष्म हैं, इंद्रियगोचर नहीं हैं।

उनका जीवके पास आना सो आस्रव है। जिन कारणोंसे अर्थात् मन, वचन, कायकी शुभ या अशुभ प्रवृत्तिसे कर्म पुद्गल आता है सो भी आस्रव है। कर्मके आनेको द्रव्यास्रव और जिन भावोंसे कर्म आता है उसको भावास्रव कहते हैं। इसी तरह जो कर्म आत्माके सूक्ष्म शरीरके साथ बन्धता है उसको द्रव्य बन्ध तथा जिन भावोंसे बंधता है उसको भाव बंध कहते हैं। जो कर्म आता हुआ रुकता है या निरोध होता है उसको द्रव्य संवर और जिन भावोंसे विरोध होता है उसको भाव संवर कहते हैं। जो कर्म झड़ता है, निर्जीर्ण होता है उसको द्रव्य निर्जरा और जिन भावोंसे झड़ता है उसको भाव निर्जरा कहते। सर्व कर्म पुद्गलोंका आत्मासे छूट जाना उसको द्रव्य मोक्ष और जिन भावोंसे सर्व कर्म छूटते हैं उनको भाव मोक्ष कहते हैं।

बौद्ध साहित्यने भाव आस्रव, भाव बन्ध, भाव संवर, भाव निर्जरा तथा भाव मोक्षका कथन प्रगट रूपसे किया है जब कि द्रव्य आस्रवादिका कथन अति गुप्त रूपसे है। उसका विस्तार साधारण मानवोंकी समझमें कठिन मालूम होगा ऐसा [illegible] किया है [illegible] व भाव बंधके कारण भाव— जैनसिद्धांतने इस तरह बताए हैं। तत्वार्थसूत्रमें—

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ॥ १—८ ॥

मिथ्या—दर्शन मिथ्यादृष्टि—यथार्थ तत्वोंमें औरका और श्रद्धान। २—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म व परिग्रहसे विरक्त न हो—अविरति।

३–कुशल भावोंमें अर्थात् मोक्ष साधक भावोंमें अनादर–प्रमाद–४ क्रोध, मान, माया, लोभमें प्रवृत्ति–कषाय–५ मन, वचन, कायका वर्तन–योग–ये पांच कर्म आने व बन्धनेके कारण हैं। ये ही भाव आस्रव हैं व ये ही भाव बन्ध हैं।

श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें मिथ्यादर्शनका स्वरूप इस भांति कहा है। तथा वहीं बन्धका स्वरूप भी है—

तापत्रयोपतप्तेभ्यो भव्येभ्यः शिवशर्मणे।
तत्त्वं हेयमुपादेयमिति द्वेधा भ्यधादसौ॥ ३॥

वंधो निवंधनं चास्य हेयमित्युपदर्शितं।
हेयं स्याद्दुःखसुखयोर्यस्माद्वीजमिदं द्वयं॥ ४॥

मोक्षस्तत्कारणं चैतदुपादेयमुदाहृतं।
उपादेयं सुखं यस्मादस्मादाविर्भविष्यति॥ ५॥

तत्र वंधः सहेतुभ्यो यः संश्लेषः परस्परं।
जीवकर्मप्रदेशानां स प्रसिद्धश्चतुर्विधः॥ ६॥

वंधस्य कार्यः संसारः सर्वदुःखप्रदोंगिनां।
द्रव्यक्षेत्रादिभेदेन स चानेकविधः स्मृतः॥ ७॥

स्युर्मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि समासतः।
बंधस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः॥ ८॥

अन्यथावस्थितेष्वर्थेष्वन्यथैव रुचिर्नृणां।
दृष्टिमोहोदयान्मोहो मिथ्यादर्शनमुच्यते॥ ९॥

ज्ञानावृत्युदयादर्थेष्वन्यथाधिगमो भ्रमः।
अज्ञानं संशयश्चेति मिथ्याज्ञानमिह त्रिधाः॥ १०॥

वृत्तिमोहोदयाज्जन्तोः कषायवशवर्त्तिनः।
योगप्रवृत्तिरशुभा मिथ्याचारित्रमूचिरे॥ ११॥

बंधहेतुपु सर्वेपु मोहश्च प्राक् प्रकीर्तितः ।
मिथ्याज्ञानं तु तस्यव सचिवत्वमशिश्रियन् ॥ १२ ॥
ममाहंकारनामानौ सेनान्यौ तौ च तत्सुतौ ।
यदायत्तः सुदुर्भेदो मोहव्यूहः प्रवर्त्तते ॥ १३ ॥
शश्वदनात्मीयेपु स्वतनुप्रमुखेपु कर्मजनितेपु ।
आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः ॥१४॥
ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः ।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः ॥ १५ ॥
मिथ्याज्ञानान्विलान्मोहान्ममाहंकारसंभवः ।
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते ॥ १६ ॥
ताभ्यां पुनः कपायाः स्युर्नोकपायाश्च तन्मयाः ।
तेभ्यो योगाः प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः ॥ १७ ॥
तेभ्यः कर्माणि वध्यंते ततः सुगतिदुर्गती ।
तत्र कायाः प्रजायंते सहजानीन्द्रियाणि च ॥ १८ ॥
तदर्थानिन्द्रियैर्गृह्णन् मुह्यति द्वेष्टि रज्यते ।
ततो वंधो भ्रमत्येवं मोहव्यूहगतः पुमान् ॥ १९ ॥

भावार्थ-जन्म जरा मरणकी आपदसे पीड़ित भव्य जीवोंको शिवके सुखकी प्राप्ति होजावे इसलिये तत्व दो प्रकारका कहा गया है । हेय अर्थात् त्यागने योग्य, उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य। बंध और उसके कारण हेय हैं क्योंकि हेय रूप संसारिक दुःख सुखके बीज हैं। मोक्ष और उसके कारण उपादेय हैं क्योंकि उपादेय आत्मीक सुखके ये बीज हैं। जीव और कर्म पुद्गलोंका अपने कारणोंसे परस्पर मिलना सो चार प्रकार बंध है। कर्मका स्वभाव पड़ना प्रकृति बंध, कर्म पुद्गलोंकी संख्या प्रदेश बंध, बंधनेकी मर्यादा स्थिति बंध,

तीव्र या मंद फल दान शक्ति अनुभाग बंध। बंधका फल सर्व संसारी प्राणियोंको दुःखका देनेवाला द्रव्य क्षेत्रादि भेदसे अनेक प्रकार संसारमें भ्रमण है। बंधके मूल हेतु मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र तीन हैं। और सब तीनका विस्तार है। तत्त्वोंका स्वरूप कुछ और है उनको और कुछ श्रद्धान करलेना ऐसी मिथ्या रुचि दर्शन मोहकर्मके प्रभावसे होती है, यह मिथ्या दर्शन है। ज्ञानावरण कर्मके प्रभावसे पदार्थोंको उल्टा व संशय रूप जानना व न जानना सो मिथ्या ज्ञान है। चारित्र मोहके प्रभावसे क्रोधादि कषायके वश होकर मन वचन कायका वर्तन मिथ्या चारित्र है। इन बंधके सब कारणोंमें मिथ्या दर्शन या मोह प्रधान है। मिथ्या ज्ञान इसीका मंत्री है। इस मोह राजाके ममकार और अहंकार ऐसे दो पुत्र सेनापति हैं। इन्हींके आधीन मोहका चक्र चलता है। अर्थात् संसारमें भ्रमण होता है। जो सदा अनात्मा है ऐसे शरीर आदि कर्मजनित भावोंमें या अवस्थाओंमें आत्मापना मानना ममकार है, जैसे मेरा शरीर। जो कर्म विपाकसे होनेवाले परभाव हैं जो अपनेसे अलग निश्चयसे हैं उनमें आत्मापना मानना सो अहंकार है जैसे मैं राजा। मिथ्या ज्ञान सहित, मिथ्यादर्शनसे ही ममकार अहंकार होते हैं इनहीसे जीवके रागद्वेष होजाता है। रागद्वेषसे क्रोधादि कषाय व हास्यादि नो कषाय होते हैं। उनहींसे मन वचन काय योग काम करते हैं तब उनसे प्राणी वध आदि पाप होते है। उनसे कर्मोंका बन्ध होता है। कर्मोंके विपाकसे सुगति या दुर्गति होती है वहां शरीर बनते है, साथमें इन्द्रियें बनती हैं। इंद्रियोंसे पदार्थ ग्रहण करके मोह करता है, द्वेष करता है, राग करता है। इससे फिर कर्मका बंध होता है। इस तरह यह प्राणी मोहकी सेनाके साथ संसारमें भ्रमण करता रहता है ॥ १९ ॥

नोट--इस कथनमें मिथ्यादर्शनका स्वरूप दिखलाया है इससे विदित होगा कि निर्वाण स्वरूप जो शुद्धात्मा है उससे भिन्न संसारकी किसी अवस्थाको आत्मा मानना मिथ्यादर्शन है।

मिथ्यादर्शन आस्रव है या बंधभाव है, इसको रोकनेवाला **सम्यक्दर्शन** है।

सम्यक्दर्शनका स्वरूप **तत्वार्थसारमें अमृतचंद्र** आचार्य कहते हैं—

पश्यति स्वस्वरूपं यो जानाति चरत्यपि।
दर्शनज्ञानचारित्रत्रयमात्मैव स स्मृतः॥ ८॥

भावार्थ—अपने ही शुद्ध (निर्वाण स्वरूप) आत्माका श्रद्धान करना सम्यक्त है, उसीका जानना सम्यग्ज्ञान है, उसीमें लीन होना सम्यक्चारित्र है। इन तीन स्वरूप आत्मा ही है।

जहां आत्माका आत्मारूप यथार्थ श्रद्धान है वह सम्यग्दर्शन है जहां आत्माके सिवाय किसी भी अन्य संस्कार या भावको आत्मा श्रद्धान किया जाय यह मिथ्यादर्शन है। अविरतिरूप भाव आस्रव या भाव बन्धका निरोध, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रह त्याग महाव्रतोंसे होता है।

प्रमादरूप भावास्रव या भावबंधका निरोध अप्रमाद रूपसे या सावधानीसे वर्तना है। इसके लिये **पांच समिति** पालना योग्य है—(१) **ईर्या समिति**—चार हाथ भूमि आगे देखकर दिनमें रौंदी भूमिपर चलना। (२) **भाषा समिति**—शुद्ध, प्रिय, हितकारी भाषा कहना। (३) **एषणा समिति**—शुद्ध भोजन जिसे गृहस्थ भक्तिपूर्वक दे व अपने लिये ही बनाया हो। इसके बनानेमें साधुका उद्देश्य न हो, साधुने न किया हो न कराया हो न उसकी अनुमोदना की हो। (४) **आदान निक्षेपण समिति**—कोई वस्तु या अपना शरीर देखकर रखना उठाना। (५) **प्रतिष्ठापना समिति**—मलमूत्रादि निर्जंतु भूमिपर देखकर करना

कषायरूप आश्रव या बंधभावका निरोध। दश धर्म पालन, बारह भावना, तथा २२ परीषहका जय और पांच प्रकार सामायिकादि चारित्रसे होता है।

दश धर्म—(१) उत्तम क्षमा—क्रोधको जीतकर क्षमा पालना, (२) उत्तम मार्दव—मानको जीतकर कोमलता रखना, (३) उत्तम आर्जव—कपटको जीतकर सरलता रखना, (४) उत्तम शौच—लोभको जीतकर मनकी शुचिता व संतोष रखना, (५) उत्तम सत्य—असत्य भाव या क्रियाको निरोधकर सत्य मन वचन कायकी प्रवृत्ति रखना, (६) उत्तम संयम—पांच इंद्रिय व मनको दमन करना तथा स्थावर व त्रस प्राणियोंकी दया पालना, (७) उत्तम तप—इच्छाको रोककरके तप करते हुए आत्मध्यान करना, (८) उत्तम त्याग—परोपकारार्थ यथायोग्यता ज्ञान, अभय, औषध या आहारदान देना, (९) उत्तम आकिंचिन्य—किसी पर पदार्थसे ममता न करके परिग्रह रहित रहना, (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदनासे ब्रह्मचर्य पालना।

बारह भावनाएं—(१) अनित्य—जगतके सर्व पदार्थ जो बनते हैं वे बिगडते हैं। स्त्री, पुत्रादि, मकान, वस्त्रादि सब व अशुद्धभाव सब अनित्य हैं। पर्याय या अवस्थाएं सब क्षणभंगुर हैं। (२) अशरण—मरणसे व कर्मके तीव्र विपाकसे कोई बचानेवाला नहीं है। (३) संसार—नर्क, पशु, मनुष्य व देवगतिरूप यह संसार बिलकुल असार दुःखरूप जन्म, जरा, मरणसे भरा त्यागने योग्य है। (४) एकत्व—प्राणीको अकेला ही जन्मना, मरना, दुख सुख भोगना पड़ता है तथा आत्माका असली स्वभाव एकरूप या निर्वाण स्वरूप शुद्ध आनंदरूप परम शांत ज्ञानदर्शनमय है। (५) अन्यत्व—आत्माके स्वरूपसे सर्व कर्मजनित रागादिभाव, शरीरादि व अन्य द्रव्य भिन्न हैं। (६) अशुचि—शरीर महान अपवित्र, मलका घट है, नष्ट होनेवाला व रोगोंका घर है।

(७) आस्रव-पाप पुण्यरूप कर्मोंके आनेके क्या क्या भाव कारण हैं। (८) संवर-जिन२ भावोंसे कर्म आते हुए रुक जाते हैं। (९) निर्जरा--कर्मोंका क्षय कैसे होता है। (१०) लोक-इस जगतका स्वरूप। (११) बोधिदुर्लभ-रत्नत्रय धर्मका मिलना दुर्लभ है। (१२) धर्म-धर्मका सच्चा स्वरूप।

बाईसपरीषह-(१) क्षुधा, (२) तृषा, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) दंशमंसक, (६) नग्नता, (७) अरति, (८) स्त्री, (९) चर्य्या, (१०) निषद्या (बैठनेकी), (११) शय्या, (१२) आक्रोश (गाली), (१३) वध, (१४) याचना, (१५) अलाभ, (१६) रोग, (१७) तृणस्पर्श, (१८) मल, (१९) सत्कार पुरस्कार, (२०) प्रज्ञा, (२१) अज्ञान, (२२) अदर्शन।

सामायिकादि चारित्र पांच प्रकार-(१) सामायिक समाधि-भाव, (२) छेदोपस्थापना-सामायिकसे गिरनेपर पुनः स्थापन, (३) परिहार विशुद्धि अहिंसा व्रतकी विशेष निर्मलता, (४) सूक्ष्म लोभ रह जाना, (५) यथाख्यातचारित्र-पूर्ण वीतरागता व शांतिका लाभ।

कषायोंके द्वारा जो आस्रव होता है उसके रोकनेके दश धर्म, बारह भावनाएं, बाईस परीषह जय तथा पांच प्रकारका चारित्र उपाय है। योगोंके विरोधका उपाय मनोगुप्ति, कायगुप्ति है। अर्थात् मन, वचन, कायकी चंचलताको मेट कर थिर रखना। इस तरह जैन सिद्धांतमें जो भाव आस्रव व उनके रोकनेके लिये भाव संवर बताए गए हैं यही भाव बौद्ध साहित्यमें भी करीब२ मिलता है। देखो-माज्झिम निकाय सव्वासव सुत्तं द्वि०, इसका कुछ सार दिया जाता है—

" कतमे धम्मा मनसि करनीया, यस्स धम्मे मनसि करोतो अनुप्पन्नो वा कामासवो न उप्पज्जति उप्पन्नो वा कामासवो पहीयति,

अनुप्पन्नो वा भवासवो न उप्पज्जति उप्पन्नो वा भवासवो पहीयति अनुप्पन्नो वा अविज्जासवो न उप्पज्जति उप्पन्नो वा अविज्जासवो पहीयति, इमे धम्मा मनसि करनीया।"

भावार्थ–कितने भाव मनमें करने चाहिये। जिस भावके करनेसे न पैदा हुआ काम भाव न उपजे वा पैदा हुआ काम भाव नाश हो, न पैदा हुआ भवकी तृष्णाका भाव न उपजे वा पैदा हुआ भवका आस्रव नाश हो, न पैदा हुआ अविद्याका भाव न उपजे वा पैदा हुआ अविद्याका भाव नाश हो।

"अहोसिन् अहं अतीतं अद्धानं....भविस्सामिं अहं अनागतम् अद्धानं....पच्चुप्पन्नं अद्धानं....अहं अस्मि तस्स एवं मनसि करोतो.... छण्णं दिट्ठीनं अण्णतरा दिट्ठि उप्पज्जति (१) अत्थि मे अत्ता....(२) नत्थि मे अत्ता....(३) अत्तना अत्तानं संजानाम....(४) अत्तना अनत्तानं संजानाम....(५) अनत्तना अत्तानं संजानाम....(६) यो मे अत्ता....कम्मानं विपाकं पटिसंवेदेति, सो अवं अत्ता निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणाम धम्मो....।

इति दिट्ठिगतं दिट्ठिगहनं दिट्ठि कंतारं दिट्ठि विसूकं, दिट्ठिविकंदितं दिट्ठि संयोजनं, दिट्ठि संयोजन संयुत्तो....न परिमुच्चति जातीया, जरामरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि, उपायासेहि।....सो इदं दुक्खंति योनि सो मनसि करोति, अयं दुःख समुदयो ति....अयं दुःखनिरोधोति....अयं दुःख निरोधगामिनी पटिपदा तस्सु एवं मनसिकरो तो तीनि संयोजनानि पहीयंति।

(१) सक्कायदिट्ठि (२) विचिकिच्छा (३) सीलब्बत परामासो। इमे वुच्चति असवा दस्सता पहातब्बा।

भावार्थ–मैं पहले कालमें था। मैं आगामी कालमें हूंगा। वर्तमान कालमें मैं हूं। ऐसा विकल्प मनमें करनेसे उसके भीतर छः (मिथ्या) दृष्टियोंमेंसे कोई दृष्टि होगी–(१) मेरी आत्मा है, (२) मेरी

आत्मा नहीं है, (३) मैं आत्मासे आत्मा जानता हूं, (४) मैं आत्मासे अनात्माको जानता हूं, (५) मैं अनात्मासे आत्माको जानता हूं, (६) जो यह मेरा आत्मा कर्मोंके फलको अनुभव करता है वही यह आत्मा नित्य है ध्रुव है शाश्वत है, अपरिणमन स्वभाव है। इस तरह दृष्टिका उलसाव, दृष्टिका वन, दृष्टिका जंगल, दृष्टिका शूल, दृष्टिका बादल, दृष्टिका बन्ध होता है। इस दृष्टिके बन्ध या मैलसे संयुक्त जीव जन्म, जरा मरण, शोक, परिदेवन, दुःख, दौर्मनस्य व क्लेशोंसे नहीं छूटता है। जो कोई यह मनमें जानता है कि यह दुःख है यह दुःखका कारण है यह दुःख निरोध है, यह दुःख निरोधका मार्ग है उनके यथार्थ जानते हुए तीन प्रकारके मैल कट जाते हैं—(१) अपने शरीरमें आत्मदृष्टिका, (२) शँकाका, (३) शीलव्रतोंको ही पकड़े रहनेका, इसतरह (मिथ्यादर्शन सम्बन्धी) आस्रव सम्यग्-दर्शनसे दूर करने योग्य हैं।

नोट—वास्तवमें निर्वाण या शुद्ध आत्मा अनुभवगोचर है। मनका विषय नहीं है। मनसे जो जो कल्पना अज्ञानी जीव उठाता है वह जो आत्मा वास्तवमें नहीं है उसकी तरफ चला जाता है। यहां छः मिथ्यादृष्टियें बताई हैं।

(१) पहलीमें यह कि मेरा आत्मा है। यहां वह जो कुछ कर्म विपाकसे अशुद्ध अवस्था हो रही है उसीको आत्मा लेकर मान लेता है इसलिये यह एक तरहकी मिथ्यादृष्टि है।

(२) मेरी आत्मा नहीं है। यह दूसरी मिथ्यादृष्टि है। यहां बिलकुल आत्माका अभाव ही मान लिया जाता है।

(३) मैं आत्मासे आत्माको जानता हूं। यह भी यथार्थ दृष्टि नहीं है। विचारनेवालेका लक्ष्य विकल्पसहित भावकी ओर है शुद्धात्मा व निर्विकल्प आत्मापर नहीं है, जो स्वपर ज्ञायक है।

(४) मैं आत्मासे अनात्माको जानता हूं। यह चौथी मिथ्यादृष्टि है। यहां वह समझ लेता है कि मैं मन व इंद्रियोंसे काम करनेवाला दूसरोंको जानता हूं वही मैं हूं। यहां भी भूल है। उसकी दृष्टि शुद्ध स्वपर ज्ञायक आत्मापर नहीं हैं जो विनामन व इंद्रियोंकी सहायताके जान सक्ता है।

(५) मैं अनात्मासे आत्माको जानता हूं। यह भी भूल है। मनसे व शरीरसे व इंद्रियोंसे आत्मा जाना जाता है ऐसा वह समझता है।

(६) मैं कर्मोंके फलको अनुभव करनेवाला ध्रुव अपरिणामी आत्मा हूँ। यह भी मिथ्यादृष्टि है क्यों कि कर्मफल भोक्ता अशुद्ध आत्मा है। जो परिणमन शील है ध्रुव नहीं है। इसमें भी दृष्टि निर्वाण स्वरूपपर नहीं गई है। इस तरह ये छः नमूने शुद्धात्मासे भिन्न किसी अन्य भाव पर श्रद्धा जमानेके हैं। निर्वाणका विश्वास कर लेनेसे यह सब दृष्टियें मिल जाती हैं। फिर रूप, संज्ञा, वेदना, संस्कार व विज्ञान इन पांच स्कंधोमें आत्मबुद्धि नहीं रहती है। शंका भी नहीं रहती है। व्यवहार व्रतशील मात्र आलम्बन है। त्याज्य है। एक समाधि ही ग्राह्य है। यह बुद्धि हो जाती है यही भाव सम्यग्दर्शन है। वास्तवमें यही जैनाचार्योंका भी मत सम्यग्दर्शनके सम्बन्धमें है।

श्री कुन्दकुंदाचार्यने समयसारमें इस दृष्टिको भले प्रकार खोल दिया है। जीवाजीवाधिकारको देखा जावे, उसकी दो गाथाए यह हैं—

जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥ ५६ ॥
णे वय जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेणदु एदे सव्वे पुग्गल दव्वस्स परिणामा ॥ ६० ॥

भावार्थ—शुद्ध जीवके न तो राग है न द्वेष है न मोह है न आस्रव है न कर्म है न नोकर्म शरीरादि हैं न जीवोंके भेद हैं न जीवोंके

उन्नति रूप दरजे गुणस्थान हैं क्योंकि ये सब पुद्गल द्रव्यकी दशाए हैं अर्थात् सब जड़के संयोगसे संसारमें दिखलाई पड़ते हैं।

इसी बातको **समयसार कलशमें** कहा है—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्नाभावाः सर्वे एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाःस्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्॥५-२॥

भावार्थ—वर्णादिक व राग मोहादिक ये सर्व भाव शुद्ध जीवसे भिन्न हैं इस लिये जब कोई भीतर देखता है तो निश्चयसे देखते हुए ये कोई भाव नहीं दिखलाई पडते हैं एक मात्र उत्कृष्ट पदार्थ ही अनुभवमें आता है। यह वही निर्वाण स्वरूप शुद्ध आत्म पदार्थ है। इस तरह **मिथ्यादर्शन** आस्रवका अभाव **सम्यग्दर्शनसे** होता है इसमें जैन व बौद्धका साम्य है।

"कतमे आसवा संवरा पहातब्बा:-भिक्खु पटि संखा योनिसो चक्खुंदिय संवर संज्ञुतो विहरति-सोतेंदिय संवरसंज्ञुतो विहरति.... घानेंदिय संवर संज्ञुतो विहरति....जिह्वेंदिय संवरसंयुतो विहरति.... कायेंदिय संवरसंयुतो विहरति....मनेंदिय संवरसंयुतो विहरति....अस्स विहरतो....उप्पज्जेखुं आसवा विघातपरिलाहा न होंति।

भावार्थ—क्या क्या आस्रव संवरसे दूर करने चाहिये। जो भिक्षु प्रज्ञाद्वारा भिन्न जानता हुआ चक्षु इंद्रियकी इच्छाको रोककर विहार करता है। श्रोत्रेंद्रियकी इच्छाको संवर करके विहरता है। घ्राणेंद्रियकी तृष्णाको रोककर विहार करता है। जिह्वाइंद्रियके रागको रोककर विहरता है। कायेंद्रियके अनुरागको निरोधकर विहार करता है। मन इंद्रियको संवर करके विहरता है। इस तरह विहार करनेवालोंके जो आस्रव घातक हैं वे संवरसे नहीं होते हैं।

नोट—जैन सिद्धांतमें अविरतभाव जो दूसरा कारण आस्रवका बताया गया है व उसका संवर अहिंसादि पांच व्रतोंसे बताया है।

यहां पांच इंद्रिय व मनका निरोध बताया है सो ठीक है क्योंकि इनको वश रखनेसे पांचोंही पाप टल जाते हैं व अहिंसादिव्रत होजाते हैं। इंद्रियोंके आधीन होकर ही हिंसा की जाती है, झूठ बोली जाती है, चोरी की जाती है, कुशील सेया जाता है, परिग्रह रक्खी जाती है। श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थ सूत्रके छठे अध्यायमें आश्रवके कारणोंको कहते हुए नीचे लिखा सूत्र भी कहा है-"**इन्द्रियकषाय व्रत क्रियाः पंचचतुःपंचपंचविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः।**" भावास्रवके भेद-पांच इन्द्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत व पचीस क्रियाएं हैं। इन्द्रिय दमन व मनको दमन करनेसे ये सब कारण रुक जाते हैं।

"कतमे आसवा पटि सेवना पहातव्वाः। भिक्खु पटि संखा योनि सो चीवरं पटि सेवते यावदेव सीतस्स....उण्हस्स, दंसमसक वातातप सिरिंसप संफस्सानं पटि घाताय, यावदेव ही कोपीन पटिच्छादनत्थं,....पिंडपातं पटि सेवति न वदयाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स थितिया यापनाय, विहिंसूपरितया ब्रह्मचर्यानुग्गहाय:। इति पुण्णं च वेदनं पटि हंखामि नवं च वेदने न उप्पादेस्सामि, यात्रा मे भविस्सति अनवज्जता व फासु विहारो चाति,....सेनासनं प्रटिसेवति यावदेव सीतस्सपटिघाताय गिलान परिच्चय भेषज्ज परिक्खारं पटिसेवति अस्स भिक्खवे अपटिसेवतो उप्पज्जेय्युं आसवा विघात परिलाहा, पटिसेवतो एवं स ते आसवा विघात परिलाहान होंति-इमे आसवा पटिसेवना पहातव्वा:"।

भावार्थ—कितने आस्रवोंको प्रतिसेवनासे दूर करना चाहिये। (प्रतिसेवना-सावधानीसे वर्तना, समितिका भाव झलकता है।) जो साधु प्रज्ञा द्वारा भिन्न२ जानता हुआ कपड़ेका व्यवहार करता है। शीत, उष्ण, डास मच्छर, वात, आतप, सरीसांपके स्पर्शसे बचनेके लिये या लज्जाके बचावके लिये, भिक्षा भोजन लेता है न क्रीडाके लिये, न मदके लिये, न शोभाके लिये मात्र इस शरीरकी स्थिति

रखनेके लिये, हिंसासे बचनेके लिये, ब्रह्मचर्यको पालनेके लिये कि पुराणा दुःख मेटूं नवा दुःख न पैदा करूँ। मेरी जीवन यात्रा निर्दोष होजावे। सुखसे विहार हो। शयनासन सेता है शीतादि हटानेकें लिये, औषधि लेता है रोग दूर करनेके लिये, इत्यादि सो विना सावधानीके सेवनसे जो घातक आस्त्रव होते हैं वे प्रतिसेवनाके द्वारा नहीं होते हैं।

नोट—प्रमाद नाम आस्त्रवके रोकनेके लिये जो ईर्या आदि पांच समिति ऊपर जैन शास्त्रमें बताई हैं उनमें यह प्रतिसेवना भलीभांति गर्भित होजाती है।

"कतमे आसवा अधिवासना पहातव्वा। भिक्खु पटि संखा-योनि सो खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय विपासाय दंसमसक-वातातप सिरिसप संफस्सनानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुखानं तिप्पानं खिरानं कटुकानं असातानं अम-नापानं पाण हरानं अधिवासक जातिकोहोति, अस्स भिक्खवे अनधिवासयतो उप्पज्जेखुं .आसवा विघात परिलाहा अधिवासयतो ....न होंति—इमे आसवा अधिवासना पहातव्वा।"

भावार्थ—क्या आस्त्रव सहनशीलतासे दूर करना चाहिये। भिक्षु प्रज्ञावान होता हुआ सहनशील होता है, शीत, उष्ण, भूख, प्यास, डांस, मच्छर, वात, आतप, सिरी सर्पका स्पर्श, गालीके दुःसह वचन, उत्पन्न हुई शरीरकी रोगादि वेदना, तीव्र कठोर असाता, मनको असहनीय प्राणहारक इत्यादिको सहनेवाला होता है तब सह-नशील न होनेसे जो घातक आस्त्रव होते वे सहनशीलतासे दूर होजाते हैं। इस तरह आस्त्रवोंको सहनशीलतासे दूर करना योग्य है।

नोट—बाईस परीषह जयके भीतर यह गर्भित है।

"कतमे आसवा परिवज्जना पहातव्वाः—भिक्खु पटिसंखायो निसो

चंडं हत्थिं, चंडं अस्सं, चंडं गोणं, चंडं कुक्कुरं, अहिं, खाणुं, कंटकाधानं, सोब्भं, पपातं, चंदनिकं, ओलिगल्लं (परिवज्जेति), यथारूपे अनासने निसन्नं यथारूपे अगोचरे चरं तं यथारूपे पापकेमित्ते भजंतं विञ्ञू स ब्रह्मचारी पापकेसु थानेसु ओकप्पेय्युं सो तं च अनासनं तं च अगोचरं ते पापके मित्ते परिवज्जेति अस्स भिक्खवे अपरिवज्जयतो उप्पज्जेय्युं आसवा विघात परिलाहा परिवज्जयतो ते आसवा न होंति–इमे आसवा परिवज्जना पहातव्वा।"

भावार्थ–ये आस्रव परिवर्जन अर्थात् बचनेकी सम्हालसे दूर करने चाहिये। जो भिक्षु प्रज्ञावान भयानक हाथी, तेज घोड़ा, मरकटा बैल, प्रचंड कुत्ता, साप, स्तम्भ, कंटकस्थान, पर्वत, झरना, तालाव, जलस्थानको वर्जकर चलता है। जिस अयोग्य आसनपर बैठनेसे जिस अयोग्य स्थानपर जानेसे जिस पापरूप मैत्रीके करनेसे ज्ञानी ब्रह्मचारीको पाप स्थानोंमें जानेका दोष लग सके उन सबसे बचकर व्यवहार करता है। तब न बचनेसे जो घातक आस्रव होते सो बचकर चलनेसे नहीं होते हैं। इसतरह परिवर्जनसे आस्रव दूर करने योग्य हैं।

नोट–यह सब सम्हाल ईर्या आदि पांच समितिमें गर्भित है।

"कतमे आसवा विनोदना पहातव्वा: भिक्खु पटिसंखा योनिसो उप्पन्नं काम वितक्कं....व्यापाद वितक्कं.... विहिंसा वितक्कं....पापके अकुसले धम्मे नाधिवासेति पजहति विनोदेति व्यंति करोति अनभावं गमेति अस्स भिक्खवे अविनोदयतो उप्पज्जेय्युं आसवा विघातपरिलाहा विनोदयतो ते....न होंति–इमे आसवा विनोदेन पहाव्वा।"

भावार्थ–क्या आस्रव क्षयसे दूर करने चाहिये। भिक्षु प्रज्ञावान उत्पन्न होते हुए कामके भावको, क्रोधके भावको, हिंसाके भावको, पापमई अकुशल धर्मोंको नहीं ग्रहण करता है। उनको छोड़ देता है। क्षय करता है। अंत करता है। अभाव करता है। इस तरह उनके न

क्षय करनेसे जो घातक आस्रव उपजते वे क्षय करनेसे नहीं होते हैं। इस तरह आस्रवोंको विनोदनसे दूर करना चाहिये।

नोट—जैन शास्त्रानुसार क्रोधादि कषायरूपी आस्रवके मिटानेके लिये जो उत्तम क्षमा आदि १० धर्म बताएं हैं उनसे यह कथन मिल जाता है।

"कतमे आसव भावना पहातव्वा:—भिक्खु पटिसंखायोनि सो (१) सति संवोज्झंगं भावेति....(२) धम्म विचय संवोज्झंगं भावेति.... (३) वीर्य सम्वोज्झंगं भावेति....(४) पीति संवोज्झंगं भावेति....(५) पस्सद्धिसम्बोज्झंगं भावेति....(६) समाधि संबोज्झंगं भावेति.... (७) उपेखा संवोज्झंगं भावेति, विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोध निस्सितं वोस्सग्गपरिणामि—मस्सभिक्खवे अभावयतो उप्पज्जेय्युं आसवा विघात परिलाहा भावयतो....न होंति—इमे आसवा भावना पहातव्वा।"

भावार्थ—क्या आस्रव भावनासे दूर करना चाहिये। भिक्षु प्रज्ञावान स्मृति सुबोध्यंगकी भावना करता है, धर्म विचय सम्बोध्यंगकी भावना करता है, वीर्य सम्बोध्यंगकी भावना करता है, प्रीति सम्बोध्यंगकी भावना करता है, समाधि सम्बोध्यंगकी भावना करता है, उपेक्षा सम्बोध्यंगकी भावना करता है। विवेक सहित, विराग सहित, निरोध सहित, त्यागपरिणामवाला होकर इनके न भावना करनेसे जो घातक आस्रव होते वे भावना करनेसे दूर होजाते हैं। इस तरह भावनासे आस्रव हटाना चाहिये।

नोट—कषाय रूप आस्रवके दूर करनेके लिये जो जैन शास्त्रोंमें बारह भावनाएं व सामायिक आदि चारित्र कहा है उनमें ऊपरकी सात भावनाएं गर्भित होजाती हैं। इस मज्झिमनिकायके आस्रवके सूत्रसे जैनागममें कहा हुआ आस्रव व संवरका प्रकार बहुत अंशमें मिल जाता है।

जैनसिद्धांतमें कर्मोंकी निर्जराका उपाय आत्मध्यान या आत्म-समाधिको बताया है। आत्मध्यान या आत्मानुभवसे ही कर्म झड़ जाते हैं आत्मा मुक्त होजाता है।

श्री उमास्वामी तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

तपसा निर्जरा च ॥ ३–९ ॥

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ १९–९ ॥

प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥२०-९

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥२७-९

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८-९ ॥

परे मोक्षहेतू ॥ २९-९ ॥

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ ३६-९ ॥

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ॥ ३९-९ ॥

भावार्थ—तपसे निर्जरा होती है। तपके दो भेद हैं, बाह्य और अंतरंग। बाहरी तप छः प्रकार है—

(१) **अनशन**—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकारका आहार त्यागकर उपवास करना। संयमकी सिद्धि, रागछेद व ध्यानसिद्धिके लिये।

(२) **अवमोदर्य**—भूखसे कम खाना, संयममें जागृति, दोषशमन, संतोष, स्वाध्याय आदि सुखसे होनेके लिये।

(३) **वृत्तिपरिसंख्यान**—भिक्षाको जाते हुए एक दो चार घरोंका संकल्प करके व अमुक वस्तु मिलेगी तो लेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करना, न मिले संतोष रखना, आशा व तृष्णाको जीतनेके लिये यह तप किया जाता है।

(४) **रसपरित्याग**—घी, दूध, दही, लवण, मीठा, तेल इनमेंसे

यथाशक्ति त्याग करना, इन्द्रियमदके व निद्राके विजयके लिये व स्वाध्याय या ध्यान सुखसे होनेके लिये।

(५) विविक्त शैयासन-जंतु रहित शून्य स्थान वन, पर्वत, उपवन, नगर बाहर, सूनाघर आदिमें स्त्री नपुंसक संसर्ग रहित एकांतमें शयन आसन करना, ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय व ध्यानकी सिद्धिके लिये।

(६) कायक्लेश--देह दुःख सहन शक्ति व तत्वकी भावनाके लिये अन्यजनोंको कष्टदायक प्रतीत हों ऐसे वृक्ष, मूल, नदी, तट, पर्वत शिखरपर जाकर आसन लगाकर ध्यान करना। शरीरके सुखी पनेका स्वभाव मिटाना। प्रमाद जीतना। यह अभिप्राय कायक्लेशका है। ये छहों तप शक्तिके अनुसार किये जाते हैं। परिणामोंमें उत्साह बना रहे व प्रसन्नता रहे तब तो तप है अन्यथा कुतप हैं। शक्तिके अनुसार तप करना चाहिये। ऐसा तत्वार्थसूत्रके छठे अध्यायके २४ वें सूत्रमें सोलहकारणकी भावनामें कहा है। शक्तितस्तपः-अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधि कायक्लेशस्तपः अर्थात् अपने वीर्यको न छिपाकर धर्म मार्गमें या ध्यानमें विरोध न आवे ऐसा कायको क्लेश देना सो तप है।

छः अंतरंग तप हैं।

(१) प्रायश्चित-व्रत शील पालते हुए दोष लगनेपर दंड लेकर शुद्ध करना।

(२) विनय-धर्ममें व पूज्योंमें आदरभाव रखना।

(३) वैय्यावृत्य-शरीरसे व वचनसे रोगी थके भिक्षुओंकी सेवा करना।

(४) स्वाध्याय-आलस्य त्यागके शास्त्रोंको पढ़ना।

(५) व्युत्सर्ग—शरीरादि परवस्तुमें अपने पनका त्याग।

(६) ध्यान-चित्त निरोध करके समाधिपाना, एक किसी खास

ध्येयमें चित्तको रोकना ध्यान है सो उत्तम अस्थिवाले बलवानको लगातार एक अंतर्मुहूर्त तक होसक्ता है। ध्यान चार तरहका है। १—आर्तध्यान—शोकादि करना, २—रौद्रध्यान-हिंसादिमें आनंद मानना, ३-धर्मध्यान ४ शुक्लध्यान। पिछले दो ध्यान मोक्षके कारण हैं।

धर्मध्यानके चार भेद हैं—

(१) आज्ञाविचय—आगमके अनुसार आत्मतत्वका अनात्मासे भिन्न मनन करके ध्यान करना।

(२) अपाय विचय—मिथ्या मार्गका नाश व सम्यक् मार्गके प्रचारका उपाय विचारना व अपनेमें मोक्षमार्ग प्रकट करनेका उपाय करना।

(३) विपाक विचय—कर्म विपाक होते हुए जो सुख व दुःख अपने व दूसरोंमें प्रगट दीखे उसमें वैराग्य रखके कर्मका फल है ऐसा जान संतोष भजना।

(४) संस्थान विचय—लोकस्वभाव वा आत्माका शुद्ध स्वभाव अनुभव करना।

शुक्लध्यान—चार प्रकार है—

(१) पृथक्त्व वितर्क विचार—श्रुतके आलंबनसे पलटनरूप शुद्धात्माका अनुभव।

(२) एकत्व वितर्क अविचार—श्रुतके आलंबनसे विना पलटे थिर होते हुए शुद्धात्माका अनुभव।

(३) सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति—कायका हलनचलन अति सूक्ष्म हो जाता।

(४) व्युपरत क्रिया निवर्ति—सर्व क्रियाओंका निरोध होकर जिसके पीछे आत्मा निर्वाणको प्राप्त होजाता है। जिन सात तत्वोंका श्रद्धान सम्यग्दर्शनमें बताया है उनमेंसे भाव आस्रव, भाव बन्ध,

भाव संवर, भाव निर्जराका स्वरूप ऊपर कहा गया है। यह सब बौद्ध साहित्यसे मिल जाता है। आत्मसमाधि ही भाव निर्जरा है। भाव मोक्ष या निर्वाणका स्वरूप भी एक ही है। जैसा पहले अध्यायमें कहा है। बौद्धोंका नाम रूप जीव अजीवमें गर्भित हैं तथापि कुछ विशेष जैन सिद्धांतमें खुलासा है सो नीचे प्रकार है।

जीव तत्त्व—

जीव तत्वका स्वरूप दूसरे अध्यायमें आचुका है वहां निश्चयनय व व्यवहारनयसे जीवको दिखा दिया गया है। संसारी जीव नाम रूपमें गर्भित है। सिद्ध जीव--निर्वाणमें गर्भित है।

अजीव तत्त्व—

अजीवमें चेतनता नहीं है। ऐसे पांच मूल द्रव्य हैं-(१) पुद्गल जो पूरे व गले। स्पर्श, रस, गंध, वर्णमई अविभागी को परमाणु व उनसे बने स्कंधोंको पुद्गल कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चारों धातुएं पुद्गलसे बनी हुई हैं। कर्म पुद्गल या कार्मण व वर्गणा जिनका आस्रव या बंध होता है सब पुद्गल हैं। शब्द, बंध, सूक्ष्मपना स्थूलपना, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत, आतप ये सब पुद्गल द्रव्यकी अवस्थाएं हैं। इसको इंग्रेजीमें Matter से उल्था किया गया है। तत्वार्थसारमें पुद्गलकी व्युत्पत्ति कही है—

भेदादिभ्यो निमित्तेभ्यः पूरणाद्गलनादपि।
पुद्गलानां स्वभावज्ञैः कथ्यंते पुद्गला इति ॥ ५५ ॥

भावार्थ—पुद्गलोंके खण्ड आदि होते हैं व मिल जाते हैं। बाहरी निमित्तोंसे ऐसा होता है इसलिये इसको पुद्गल कहते हैं।

(२) धर्मास्तिकाय-लोकव्यापी अमूर्त एक अखण्ड द्रव्य जो जीव व पुद्गलके गमनमें आवश्यक उदासीन हेतु है प्रेरक नहीं।

(३) **अधर्मास्तिकाय**–लोकव्यापी अमूर्त एक अखण्ड द्रव्य पुद्गलके स्थिर होनेमें आवश्यक उदासीन हेतु है प्रेरक नहीं।

(४) **आकाश**–जो सर्वसे बड़ा अनंत, सर्व द्रव्योंको अवकाश देता है ऐसा एक अमूर्तीक अखण्ड द्रव्य है।

(५) **काल**--कालाणुरूपसे रत्न राशिवत् लोकव्यापी अमूर्तीक असंख्यात द्रव्य, जिनके निमित्तसे द्रव्योंमें परिवर्तन होता है।

नोट–जहांतक विदित हुआ है इस तरह द्रव्योंके भेदोंको कहीं बौद्ध साहित्यमें नहीं पाया गया है। गौतमबुद्धने लोकमें क्या२ है इस विषयपर कथन नहीं किया ऐसा बौद्ध ग्रन्थोंमें है। जैन धर्मानुसार जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंका सच्चा श्रृद्धान व सच्चा ज्ञान व्यवहार सम्यग्दर्शन व व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। शुद्धात्माका सच्चा श्रृद्धान व ज्ञान निश्चय सम्यग्दर्शन व निश्चय सम्यक्ज्ञान है।

सम्यक्चारित्रका वर्णन द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्तीय जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियं॥

भावार्थ--अकुशल बातोंसे हटना व कुशलमें प्रवृत्ति करना चारित्र जानो। व्रत, समिति गुप्ति रूप व्यवहारनयसे चारित्र कहा गया है। व्यवहारनयसे सम्यक्चारित्र १३ प्रकार है—

५ **महाव्रत**–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग।

५ **समिति–ईर्या** (देखके चलना) **भाषा** (शुद्ध वचन कहना) **एषणा** (शुद्ध भोजन लेना), **आदान निक्षेपण** (देखकर रखना उठाना) **प्रतिष्ठापना** (देखकर मलमूत्र करना)।

३ **गुप्ति**–मनको, वचनको, कायको वश रखना। यह १३ प्रकार

मुनियोंका व्यवहार चारित्र है। निश्चयनयसे सम्यक्चारित्र आत्मामें समाधि है। द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

बहिरब्भंतरकिरिया रोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं॥

भावार्थ—भवके कारणोंको नाश करनेके लिये जब सम्यग्ज्ञानी जीव बाहरी व भीतरी क्रियाओंको रोक देता है अर्थात् आत्मामें लीन होजाता है तब उसके निश्चय सम्यक्चारित्र होता है।

नोट—पाठकोंको विदित हो कि जो बौद्ध साहित्यमें आठ प्रकारका दुःख निरोध मार्ग कहा है उसमेंसे सम्यग्दृष्टि व सम्यक्संकल्प ये दोनों जैनोंके रत्नत्रय मार्गमेंसे सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञानमें गर्भित हैं। तथा शेष छः मार्ग सम्यक्वचन, सम्यक्कर्मान्त, सम्यक् अर्जीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि जैनोंके सम्यक्चारित्रमें गर्भित हैं। जैसा ऊपर लिखित १३ भेदोंसे व निश्चय सम्यक्चारित्रसे विदित होगा।

जैसे बौद्ध साहित्यमें ध्यान व समाधिकी मुख्यता है वैसे जैन साहित्यमें ध्यानकी मुख्यता है।

(१) नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्रव्यसंग्रहमें कहते हैं—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह॥

भावार्थ—व्यवहार व निश्चय दोनों ही मोक्षमार्गको मुनि ध्यान करनेसे नियमसे पालेते हैं। इसलिये आप लोग भी प्रयत्नचित्त होकर ध्यानका भलेप्रकार अभ्यास करो।

(२) समयसार कलशमें कहते हैं—

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति॥

तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन् ।
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ॥४६–१०॥

भावार्थ–एक वही मोक्षमार्ग, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई निश्चयसे है जो इस आत्मामें ही ठहरता है, रातदिन उसीको ध्याता है, उसीका अनुभव करता है, उसीमें ही निरन्तर विहार करता है, अन्य द्रव्योंको स्पर्शमात्र नहीं करता है सो अवश्य नित्य उदय रूप शुद्ध आत्मीक भाव रूप निर्वाणको शीघ्र ही अनुभव करता है।

(३) समाधिशतकमें कहा है—

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचागोचरं पदं ।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥ ९९ ॥

भावार्थ–इस तरह उस वचन अगोचर पदकी नित्य भावना करे अर्थात् आत्मध्यान करे तो स्वयं ही ऐसे पदको पाता है जहांसे फिर लौटना फिर नहीं होता है।

(४) इष्टोपदेशमें कहा है—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः ।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥

भावार्थ–जो व्यवहारसे बाहर होकर अपने आत्मामें तल्लीन होजाता है उस योगीको योग बलसे कोई अद्भुत परमानन्द होता है।

आनंदो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं ।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ–यह आनंद निरंतर कर्मके ईंधनको प्रचुरतासे जला देता है। ऐसा योगी बाहरी दुःखोंको न अनुभव करता हुआ कुछ भी खेदको नहीं पाता है।

(५) श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

स च मुक्तिहेतुरिद्धो ध्याने यस्मादवाप्यते द्विविधोपि ।
तस्मादभ्यसन्तु ध्यानं सुधियः सदाप्यपास्यालस्यं ॥ ३३ ॥
एकाग्रचिंतानिरोधो यः परिस्पंदेन वर्जितः ।
तद् ध्यानं निर्जराहेतुः संवरस्य च कारणं ॥ ५६ ॥
स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्स्वस्मै स्वतो यतः ।
षट्कारकमयस्तस्माद् ध्यानमात्मैव निश्चयात् ॥ ७४ ॥
संगत्यागः कषायाणां निग्रहो व्रतधारणं ।
मनोऽक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यानसाधने ॥ ७५ ॥
स्वाध्यायात् ध्यानमध्यास्तां ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत् ।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ ८१ ॥
दिधासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितिं ।
विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु ॥ १४३ ॥
कर्मजेभ्यो समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहं ।
ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥ १६४ ॥
समाधिस्थेन यद्यात्मा बोधात्मा नानुभूयते ।
तदा न तस्य तद् ध्यानं मूर्छावान् मोह एव सः ॥ १६९ ॥
यथा यथा समाध्याता लप्स्यते स्वात्मनि स्थितिं ।
समाधिप्रत्ययाश्चास्य स्फुटिष्यन्ति तथा तथा ॥ १७९ ॥
ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो हेतुरेतच्चतुष्टयम् ।
गुरूपदेशः श्रद्धानं सदाभ्यासः स्थिरं मनः ॥ २१८ ॥

भावार्थ—व्यवहार और निश्चय दोनों ही प्रकारका यह निर्मल मोक्षमार्ग ध्यानमें प्राप्त होता है इसलिये बुद्धिमान लोग सदा आलस्य छोड़कर ध्यानका अभ्यास करो ॥ ३३ ॥

एक मुख्य पदार्थ आत्मामें या आपमें चित्तका रुक जाना—हलन चलन न होना सो ध्यान है। यही संवरका और निर्जराका कारण है ॥ ५६ ॥

क्योंकि ज्ञानी आप अपनेको अपनेमें अपनेसे अपने इ॰ लिये आपके द्वारा ही ध्याता है, इसलिये यही कर्ता आदि षट्कारकमय होता है और निश्चयसे जो ध्यान है वह आप आत्मा ही है ॥ ७४ ॥

परिग्रहका त्याग, क्रोधादि कषायोंका निग्रह, अहिंसादि व्रतोंका धारण तथा पांच इन्द्रिय और मनको जीतना ये ध्यानके साधनमें सामग्री हैं ॥ ७५ ॥

स्वाध्यायके द्वारा ध्यानमें ठहरे। ध्यानमें न ठहरसके तो स्वाध्याय करे। ध्यान और स्वाध्यायकी प्राप्तिसे परमात्माका प्रकाश होता है ॥८१

ध्याता आपको और परको यथार्थ जानकर जो श्रद्धान करके परको अकार्यकारी जानकर छोड़दे। अपनेको ही देखे और जाने॥१४३

अपनेको अपने द्वारा ऐसा देखे कि मैं सर्व कर्मोंके संस्कारसे पैदा होनेवाले भावोंसे भिन्न हूं, ज्ञानस्वभाव हूं, और उदासीन हूं॥१६४

समाधिमें ठहरकर यदि बोध स्वरूप आत्माका अनुभव नहीं हुआ तो वहां ध्यान नहीं है, वह परमें मूर्छावान है या मोही है ॥ १६९ ॥

जैसे जैसे भलेप्रकार ध्यान करनेवाला अपने आपमें स्थिरता पाता है, तैसे तैसे समाधिके आनन्द प्रगट होते जाते हैं ॥ १७९ ॥

ध्यानके लिये चार मुख्य कारण हैं—गुरुका उपदेश, श्रद्धान, स्थिर मन और सदा अभ्यास ॥ २१८ ॥

(६) श्रीचंद्रकृत वैराग्यमालामें कहा है—

विरम विरम बाह्यादिपदार्थे रम रेम मोक्षपदे च हितार्थे।
कुरु कुरु निजकार्यं च वितंद्रः भव भव केवलबोधयतीन्द्रः ॥६८॥
मुंच मुंच विषयाऽमिषरोगं लुंप लुंप निजतृष्णारोगं।
रुंध रुंध मानसमातंगं, धर धर जीवविमलतरयोगं ॥ ६९ ॥
चिंतय निजदेहस्थं सिद्धं, आलोचय कायस्थं बुद्धं।
स्मर पिंडस्थं परमविशुद्धं कल केवलकेलीशिवलब्धं ॥ ७० ॥

भावार्थ—बाहरी पदार्थोंसे विरक्त हो, विरक्त हो, हितकारी मोक्षमार्गमें रमणकर रमणकर, आलस्य रहित हो अपना काम कर कर, केवलज्ञानका स्वामी हो हो ॥ ६८ ॥ विषयरूपी मांसका भोग त्याग त्याग, अपनी तृष्णारूपी रोगको मिटा मिटा। मनरूपी हाथीको रोक रोक, हे जीव ! अति निर्मल ध्यान धर ॥ ६९ ॥ अपनी देहमें विराजित सिद्धको चिंतवन कर, अपनी कायामें स्थित बुद्धका विचार कर, शरीरमें स्थित परम शुद्ध आपको स्मरण कर केवलज्ञानमें कल्लोल करनेवाले मोक्षस्वरूपका मनन कर ॥ ७० ॥

(७) **श्री देवसेनाचार्य** तत्वसारमें कहते हैं—

तम्हा अब्भसउ सदा मुत्तूणं रायदोसवामोहो ।
झायउ णियअप्पाणं जइ इच्छइ सासयं सुक्खं ॥ १६ ॥

णाणमयं णियतच्चं मिल्लिय सव्वेवि परगया भावा ।
तं छंडिय भावेज्जो सुदुसहावं णियप्पाणं ॥ ४३ ॥

जो अप्पाणं झायदि संवेयणचेयणाइउवजुत्तं ।
सो हवइ वीयराओ णिम्मलरयणप्पओ साहू ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इसलिये रागद्वेष मोहको छोड़कर सदा अपने आत्माको ध्याओ, इसीका अभ्यास करो, यदि शाश्वत सुख चाहते हो ॥१६॥ सर्व ही परभावोंको छोडकर ज्ञानमई शुद्ध स्वभावमई अपने आत्मा रूप तत्वकी भावना करनी योग्य है। ॥ ४७ ॥ जो कोई स्वसंवेदनरूप चेतनामें उपयुक्त होकर आत्माको ध्याता है वही साधु निर्मल रत्नत्रयका स्वामी वीतराग हो जाता है। ॥४४॥

(८) **योगेन्द्राचार्य योगसारमें कहते हैं**:—

सुद्धु सचेयण बुद्ध जिणु केवलणाणसहाउ ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

जेहउ जज्जर णरयघरु तेहउ बुज्झि सरीर ।
अप्पा भावहु णिम्मलहु लहु पावइ भवतीर ॥ ९० ॥

अप्पसरूवह जो रमइ छंडवि सहुववहारु ।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भवपारु ॥ ८८ ॥

भावार्थ—यदि शिवका लाभ चाहते हो तो निरंतर अपने आपको मनन करो जो शुद्ध चैतन्यमय बुद्ध, जिन, केवल ज्ञान स्वरूप है (२६) जैसा अशुचि नरक घर है ऐसा इस शरीरको जानो। निर्मल आत्माको भावो जो शीघ्र संसारके तटपर पहुंचोगे ॥९०॥ जो सर्व व्यवहार छोडकर आत्माके स्वरूपमें रमण करता है वही सम्यग्दृष्टी है। वह शीघ्र संसारके पार हो जाता है ॥ ८८ ॥

श्री अमितिगति बृहत् सामायिक पाठमें कहते हैं—

शूरोऽहं शुभधीरहं पटुरहं सर्वाऽधिकश्रीरहं ।
मान्योऽहं गुणवानहं विभुरहं पुंसामहमग्रणीः ॥

इत्यात्मन्नपहाय दुष्कृतकरीं त्वं सर्वथा कल्पनां ।
शाश्वद्ध्याय तदात्मतत्वममलं नैःश्रेयसी श्रीर्यतः ॥ ६२ ॥

भावार्थ—मैं शूर हूं, मैं सुबुद्धि हूं, मैं चतुर हूं, मैं सबसे अधिक बलवान हूं, मैं मान्य हूं, मैं गुणवान हूं, मैं स्वामी हूं, मैं पुरुषोंमें मुखिया हूं, इत्यादि पापकारी कल्पनाओंको हे आत्मन् सर्वथा छोडकर तू निर्मल अपने आत्मतत्वको सदा ध्याय जिससे मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति हो।

श्री कुलभद्राचार्य—सारसमुच्चयमें कहते हैं—

भवभोगशरीरेषु भावनीयः सदा बुधैः ।
निर्वेदः परया बुद्धया कर्मारातिजिघृक्षुभिः ॥ १२७ ॥

यावन्न मृत्युवज्रेण देहशैलो निपात्यते ।
नियुज्यतां मनस्तावत् कर्मारातिपरिक्षये ॥ १२८ ॥

त्यज कामार्थयोः संगं धर्मध्यानं सदा भज ।
छिंद्धि स्नेहमयान् पाशान् मानुष्यं प्राप्य दुर्लभं ॥ १२९ ॥

भावार्थ–कर्मशत्रुको नाश करनेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमानोंको सदा ही संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यकी भावना परम बुद्धिमानीके साथ करनी चाहिये ॥१२७॥ जबतक मरणरूपी वज्र शरीररूपी पर्वतको गिरा न दे उसके पहले ही मनको कर्मशत्रुके क्षयमें लगाना चाहिये ॥ १२८ ॥ इस दुर्लभ नर जन्मको पाकर कामका व अर्थ (धन)का संग छोड़, स्नेहके जालोंको काट, धर्मध्यान सदा भज ॥ १२९ ॥

(११) श्री पद्मनंदि मुनि सद्बोध चन्द्रोदयमें कहते हैं–

कर्मभिन्नमनिशं स्वतोऽखिलं पश्यतो विशदबोधचक्षुषा ।
तत्कृतेऽपि परमात्मवेदिनो योगिनो न सुखदुःखकल्पना ॥२१॥

भावार्थ–जो योगी अपनेसे भिन्न सर्व कर्मको निर्मल ज्ञान चक्षुसे देखते हैं वे परमात्माके अनुभव करनेवाले होते हैं उनको सुख दुःख होनेपर भी सुख दुःखकी कल्पना नहीं होती है ।

बोधरूपमखिलैरुपाधिभिर्वर्जितं किमपि यत्तदेव नः ।
नान्यदल्पमपि तत्वमीदृशं मोक्षहेतुरिति योगनिश्चयः ॥ २५ ॥

भावार्थ–सर्व प्रकारकी रागद्वेष आदि उपाधियोंसे रहित तथा सम्यग्बोधरूप जो कोई वस्तु है वही हमारी है । इसके सिवाय जरासी भी वस्तु हमारी नहीं है, ऐसा जो योगियोंका निश्चय है वही मोक्षका कारण है ।

आत्मबोधशुचितीर्थमद्भुतं स्नानमत्र कुरुतोत्तमं बुधाः ।
यत्र यात्यपरतीर्थकोटिभिः क्षालयत्यपि मलं तदन्तरं ॥ २८ ॥

भावार्थ–हे पंडितो ! आत्मज्ञान रूपी अद्भुत निर्मल नदीमें उत्तम स्नान करो । जो पाप करोड़ों नदियोंसे नहीं धुल सक्ता है वह भीतरी मल इसीसे धुलता है ।

(१२) उक्त आचार्य एकत्व अधिकारमें कहते हैं—

संयोगेन यदा यातं मत्तस्तत्सकलं परं ।
तत्परित्यागयोगेन मुक्तोऽहमिति मे मतिः ॥२७॥

भावार्थ—ज्ञानी ऐसा ध्याता है कि जो२ वस्तु संयोगसे हुई है वह सब मुझसे पर है । उस सबको त्याग कर देनेसे मैं मुक्त रूप ही हूं ऐसा मुझे ज्ञान है ।

तदेव महती विद्या स्फुरन्मंत्रस्तदेव हि ।
औषधं तदपि श्रेष्ठं जन्मव्याधिविनाशनम् ॥४९॥
अक्षयस्याक्षयानन्दमहाफलभरश्रियः ।
तदेवैकं परं बीजं निःश्रेयसलसत्तरोः ॥ ५० ॥

भावार्थ—वही चैतन्यरूपी अनुभव महान विद्या है, वही चमकता हुआ मंत्र है, वही संसार रोगको नाशक उत्तम औषधी है । अविनाशी आनंद रूपी महा फलको देनेवाले अविनाशी, मोहरूपी वृक्षके लिये वही एक परम बीज है ।

साम्यं स्वास्थं समाधिश्च योगश्चेतोनिरोधनं ।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः ॥ ६४ ॥

साम्यमेकं परं कार्यं साम्यं तत्वं परं स्मृतम् ।
साम्यं सर्वोपदेशानामुपदेशो विमुक्तये ॥ ६६ ॥

साम्यं सद्बोधनिर्माणं शश्वदानन्दमन्दिरं ।
साम्यं शुद्धात्मनो रूपं द्वारं मोक्षैकसद्मनः ॥ ६७ ॥

भावार्थ—साम्य, स्वस्थ्य, समाधि, योग, चित्तनिरोध, शुद्धोपयोग एक ही अर्थके वाचक हैं । समता भाव सदा रखना चाहिये ॥ ६४ ॥

समता ही उत्कृष्ट तत्व कहा गया है । समता ही सर्व उपदेशोंका सार है, उपदेश मोक्षके लिये है ॥ ६६ ॥

समता सम्यग्ज्ञानको उत्पन्न करती है। समता सदा आनन्दका घर है, समता शुद्ध आत्माका स्वभाव है, यह मोक्ष महलका एक द्वार है।।६७॥

बौद्ध साहित्यमें अविद्या और तृष्णाको सर्व दुःखोंका मूल हेतु कहा है, वही कथन जैन शास्त्रोंमें भी है।

अविद्या (अज्ञान) तथा तृष्णा सम्बन्धी जैन वाक्य।

(१) श्री समन्तभद्राचार्य स्वयंभुस्तोत्रमें कहते हैं—

आयत्यां च तदात्वे च दुःखयोनिर्निरुत्तरा।
तृष्णानदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया॥ ९२॥

भावार्थ—यह तृष्णा नदी इस जन्ममें व पर जन्ममें दुःखोंका बीज है। इसका पार करना कठिन है। आपने सर्व मोह रहित ज्ञान रूपी नौकासे उसको पार कर लिया।

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तपस्तदायासयतीत्यवादीः॥ १३॥

भावार्थ—विजलीके चमत्कारवत् यह संसारके सुख चंचल है। तृष्णारूपी रोगके मात्र बढ़ाने हीके कारण हैं, तृष्णाकी वृद्धि निरंतर ताप देती है, तापसे सदा क्लेश होता है ऐसा आपने कहा है।

(२) श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं—

अविद्या संज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते॥ १२॥

भावार्थ—अविद्यासे वासित होनेसे दृढ़ संस्कार होरहा है जिससे यह अज्ञानी समझाए जानेपर भी शरीर हीको मान रहा है।

तद्ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्॥५३॥

भावार्थ—उसी आत्मस्वरूपकी बात करो, उसीका प्रश्न करो, उसीकी इच्छा करो, उसी स्वरूपमें तन्मय हो जिससे अविद्यामय स्वभाव छूट जावे और विद्यामई होजावे ।

(३) उक्त आचार्य इष्टोपदेशमें कहते हैं—

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि ।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः ॥ ७ ॥
रागद्वेषद्वयीदीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा ।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥ ११ ॥

भावार्थ—मोहसे ढका हुआ ज्ञान होनेसे यह अपने स्वभावको उसी तरह नहीं पहचानता है जिस तरह मदन कोदो खाकर उन्मत्त होकर पदार्थोंका स्वभाव औरका और देखता है। अनादिकालसे अज्ञानके कारणसे राग, द्वेष करता हुआ. कर्मोंका बंधन करता हुआ यह जीव संसारसमुद्रमें भ्रमण कर रहा है ।

(४) **श्री अमृतचंद्राचार्य–समयसार** कलशमें कहते हैं—

अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा ।
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः ॥
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरंगाब्धिव–
च्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्री भवन्त्याकुलाः ॥१३–३

भावार्थ—अज्ञानसे ही वनमें मृग मृगतृष्णाको जल जानकर पीनेको दौड़ते हैं । अज्ञानसे ही अन्धेरेमें रस्सीको सर्प जानकर मानव डरकर भागते हैं । अज्ञानसे ही यह प्राणी नाना प्रकार विकल्प करके जिस तरह बातसे प्रेरित समुद्र क्षोभित होता है उसी तरह शुद्ध ज्ञानमय होनेपर भी आकुलित होता हुआ रागद्वेषका कर्ता होरहा है ।

अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको ।
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः ॥

इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता सत्यता।
शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता॥ ५-१०॥

भावार्थ-अज्ञानी कर्म प्रकृतिके स्वभावमें लीन हुआ नित्य अपनेको सुख दुःखका भोगनेवाला मानता है। ज्ञानी तो कर्म प्रकृतिके स्वभावसे विरक्त होता हुआ कभी भी सुख दुःखका वेदक नहीं होता है। ऐसा नियम जानकर चतुर पुरुषोंको अज्ञान छोड़ देना चाहिये। तथा शुद्ध एक आत्मामय निश्चल तेजमें ठहरकर ज्ञानपनेका ही सेवन करना योग्य है।

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयंति नो जनाः।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयंतीह तुषं न तंदुलं॥ ४८-१०॥

भावार्थ-जो जगतके व्यवहारमें मूढ़ हैं वे जन परम पदार्थको नहीं पहचानते हैं। जिस तरह जो तुषको ही चावल समझकर इस अज्ञानमें मूढ़ है वह तुषको ही पाता है तन्दुलको नहीं पाता है।

नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

यत्तु संसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतं।
स्वपरद्रव्यसंभूतं तृष्णासंतापकारणं॥ २४३॥

भावार्थ-यह संसारिक सुख रागमई क्षणिक है तथा अपने व परद्रव्यके द्वारा होता है। यह मात्र तृष्णाके संतापका ही कारण है।

(६) श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

रूसइ तूसइ णिच्चं इंदियविसयेहिं संगओ मूढो।
सकसाओ अण्णाणी णाणी एदो दु विवरीदो॥ ३५॥

भावार्थ-मूढ़ प्राणी क्रोधादि कषाय सहित व अज्ञानी होता हुआ इंद्रियोंके विषयोंकी संगतिमें सदा हर्ष व शोक किया करता है परन्तु ज्ञानी इससे विपरीत रहता है।

(७) श्री वादिराज मुनि ज्ञानलोचन स्तोत्रमें कहते हैं—

अनाद्यविद्यामयमूर्च्छितांगं कामोदरक्रोधहुताशतप्तं ।
स्याद्वादपीयूषमहौषधेन त्रायस्व मां मोहमहाहिदष्टम् ॥ ३१ ॥

भावार्थ–अनादि कालसे अविद्याके कारण मैं मूर्छित होरहा हूं, काम व क्रोधकी अग्निसे तप्त हूं, मोह महान् सर्पने डंस रक्खा है, मुझे स्याद्वाद वाणीरूपी अमृतमई महा औषधि पिलाकर रक्षा की जाय।

(८) श्री कुलभद्र आचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

तृष्णान्धा नैव पश्यंति हितं वा यदि वाहितं ।
सन्तोषाञ्जनमासाद्य पश्यंति सुधियो जनाः ॥ २३९ ॥
हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णाग्निपरितापितं ।
न शक्यं शमनं कर्तुं विना सन्तोषवारिणा ॥ २४५ ॥
यैः संतोषामृतं पीतं तृष्णातृट्प्रणाशनं ।
तैश्च निर्वाणसौख्यस्य कारणं समुपार्जितम् ॥ २४७ ॥

भावार्थ–तृष्णासे अन्ध पुरुष हित वा अहितको नहीं देखते हैं। सुधी जन सन्तोषके अंजनको लगाकर हित व अहितको जानते हैं। तृष्णाकी अग्निसे सन्तापित हृदय अतिशय जला करता है, विना सन्तोषरूपी जलके उसका शमन नहीं होसकता। जिन्होंने तृष्णाकी प्यास मेटनेको सन्तोषामृत पिया है उन्होंने ही निर्वाणके सुखका उपाय पाया है।

(९) श्री अमितगति सुभाषितरत्नसंदोहमें कहते हैं—

रे जीव त्वं विमुञ्च क्षणरुचिचपलानिन्द्रियार्थोपभोगा–
नेभिर्दुःखं न नीतः किमिह भववनेऽत्यन्तरौद्रे हतात्मन् ॥
तृष्णां चेत्ते न तेभ्यो विरमति विमतेऽद्यापि पापात्मकेभ्यः।
संसारात्यन्तदुःखान्कथमपि न तदा मुग्ध मुक्तिं प्रयासि ॥४१०॥

भावार्थ–अरे जीव! तू विजलीके समान चञ्चल इंद्रियोंके भोगोंको छोड़। इनसे इस भयानक भववनमें क्या२ कष्ट नहीं पाए हैं।

यदि तेरे मनमें तृष्णा है तो तू उन पापमई भोगोंसे विरक्त हो तो संसारके अत्यंत दुःखोंको दूर कर मुक्तिको पासकेगा।

प्रज्ञा-इस सम्बन्धमें बौद्ध शास्त्रोंमें बहुत जोरसे प्रतिपादन किया गया है। शास्त्रोंके कुछ वाक्य हैं। बुद्धचर्या पृ० ४१९। दीर्घनिकाय (३-१०-२) संगीत परिपायसुत्तमें चार धर्मस्कंध कहे हैं-प्रज्ञा, शील, समाधि, विमुक्ति। इनमें अंतिम निर्वाण है, पहले तीन मार्ग हैं जो सम्यग्दृष्टि आदि आठ प्रकार मार्गमें गर्भित हैं। सीलोनके प्रसिद्ध विद्वान बौद्ध साधुओंसे वार्तालाप करनेपर प्रगट हुआ कि सम्यग्दृष्टि और सम्यक् संकल्प तो प्रज्ञामें गर्भित है। तथा सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् अजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति शीलमें तथा सम्यक् समाधि समाधिमें गर्भिति है। इस तरह हम आठ प्रकार निर्वाणके मार्गके स्थानमें तीन प्रकार भी निर्वाणका मार्ग कहसकते हैं। जैन शास्त्रोंके यहां जो रत्नत्रय मोक्षमार्ग कहा है उनमें यह समावेश होजाते हैं। सम्यक् दर्शन और सम्यग्ज्ञानमें प्रज्ञा है क्योंकि प्रज्ञाके अर्थ यथार्थ भेद ज्ञान कि मुझसे सर्व ही अनात्मभाव और पदार्थ भिन्न हैं मैं अनुभवगम्य एक अकेला हूं। जितना व्यवहार चारित्र तेरह प्रकार है वह शीलमें गर्भित है। निश्चय चारित्र समाधिमें गर्भित है।

(२) बुधचर्या पृ० २४४-दीर्घनिकाय १-४ सीणदंडसुत्त शीलसे प्रक्षालित है प्रज्ञा, (ज्ञान), प्रज्ञासे प्रक्षालित है। शील, जहां शील है, वहां प्रज्ञा है, जहां प्रज्ञा है वहां शील है, शीलवानको प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावान्को शील। किंतु शील लोकमें प्रज्ञाओंका अगुआ कहा जाता है। शील प्रक्षालित प्रज्ञा है, प्रज्ञा प्रक्षालित शील है। शीलवानको प्रज्ञा होती है, प्रज्ञावानको शील।

नोट-वास्तवमें सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानके लिये व्यवहार चारित्रके पालनेकी जरूरत है। तब वृत्ति कोमल होगी और प्रज्ञा पैदा

होगी। भेद विज्ञानके उत्पन्न होनेपर विशेष व्यवहार चारित्र होगा। और समाधि होसकेगी, समाधिके लिये दोनों कारण हैं।

प्रज्ञाकी महिमा जैन शास्त्रोंमें बहुत कही है। कुछका नमूना मात्र है। **समयसारमें** कहा है—

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परित्ति णादव्वा॥ ३१९॥

भावार्थ—प्रज्ञा या भेद विज्ञानसे जो ग्रहण करने योग्य है वही चेतन स्वरूप मैं हूं निश्चयसे। इसके सिवाय जितने सुख हैं वे मुझसे भिन्न हैं। ऐसा जानना योग्य है। **सार समुच्चयमें** कहा है—

प्रज्ञांगना सदा सेव्या पुरुषेण सुखावहा।
हेयोपादेयतत्वज्ञा या रता सर्वकर्मणि॥ २५८॥

भावार्थ—जो सर्व कार्मोंमें ग्रहण व त्याग योग्य तत्वको जानने वाली है ऐसी प्रज्ञा रूपी स्त्रीकी सदा सेवा सुखको चाहनेवाले पुरुषके द्वारा करनी योग्य है।

बौद्ध शास्त्रोंमें चार भावनाओंका बहुत महात्म्य है। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, उपेक्षा (माध्यस्थ) ब्रह्मचर्या पृ० १८६। मज्झमनिकाय २-१-२ महाराहुलीवादसुत्त।

(१) राहुल! मैत्री भावनाकी भावना कर। मैत्री भावनाकी भावना करनेसे राहुल जो व्यापाद (द्वेष) है वह छूट जायगा। (२) राहुल करुणा भावनाकी भावना कर, करुणा भावनाकी भावना करनेसे राहुल! जो तेरी विहिंसा (परपीडाकरण) है वह छूट जायगी। (३) राहुल! मुदिता (सुखी देख प्रसन्न होना) भावनाकी भावना कर। राहुल! जो तेरी आति है वह दूर होजायगी। (४) राहुल! उपेक्षा (शत्रुकी शत्रुताकी उपेक्षा) भावनाकी भावना कर। जो तेरा प्रतिघ (प्रतिहिंसा) है वह छूट जावेगा। जैन शास्त्रोंमें इन ही चार भाव-

नाओंको भानेका उपदेश हरएक मुनि व श्रावकके लिये है।

श्री उमास्वामी कृत तत्वार्थ सूत्र—

"मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११–७ ॥

अर्थात् सर्व प्राणियोंपर मैत्री भावना, गुणोंसे अधिकोंको देखकर व जानकर प्रमोद भावना, दु:खी जीवोंपर करुणा भावना व अविनय करनेवालोंपर माध्यस्थ या उपेक्षा भावना भाओ।

श्री अमितिगति लघु सामायिक पाठमें—

सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥१॥

भावार्थ–सर्व प्राणियोंपर मैत्रीभाव, गुणवानोंपर प्रमोदभाव, क्लेशप्राप्तोंपर कृपाभाव, व विपरीत स्वभाववालोंपर मध्यस्थ या उपेक्षाभाव, हे देव! मेरा आत्मा सदा धारण करे।

ऊपर लिखित कथनसे पाठकोंको भलेप्रकार विदित होजायगा कि जो आठ तरहका मोक्षमार्ग बौद्ध साहित्यमें है वह जैन साहित्यके रत्नत्रयमय मोक्षमार्गसे बिल्कुल मिल जाता है। बौद्ध व जैन दोनोंमें अपने ही साधनसे मोक्ष होगा ऐसा विवेचन है। कोई ईश्वर परमात्मा कृपा करके किसीको निर्वाण नहीं देसक्ता है। समाधि भावकी मुख्यता दोनोंमें है। प्रज्ञा या भेद विज्ञानकी मुख्यता दोनोंमें है। रागद्वेष मोहके त्यागकी मुख्यता दोनोंमें है। निर्वाण साक्षात्कारकी मुख्यता दोनोंमें है। पांच इन्द्रिय व मनके दमनकी मुख्यता दोनोंमें है। वैराग्य भावकी मुख्यता दोनोंमें है। हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म व तृष्णाके त्यागकी मुख्यता दोनोंमें है। मन, वचन, कायको अकुशल प्रवृत्तिसे रोककर निर्वाणके साधनभूत कुशल प्रवृत्तियोंमें ही जोड़नेकी मुख्यता दोनोंमें है।

Chapter IV.

अध्याय चौथा।

कर्म व कर्मविपाक।

बौद्ध साहित्यसे यह तो प्रगट है कि प्राणी अपने शुभ या अशुभ कर्मोंका फल उसी जन्ममें या आगेके जन्ममें पाता है तथा प्राणी मरकर अपने संस्कारवश दूसरे भवमें जन्म लेता है। जबतक रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञानकी संतान चलती रहेगी तबतक अनेक जन्मोंमें प्राणीको भ्रमण करना पड़ेगा। जब सर्व आस्रव क्षीण हो जायंगे. तब क्षय होजायगा। फिर निर्वाण प्राप्त होजायगा।

बौद्ध साहित्यमें यद्यपि स्पष्टपने कर्मोंका बंध व विपाकका कथन हमें अबतक देखनेको नहीं मिला तथापि इधर उधर कई ऐसे वाक्य व शब्द मिले हैं जिनसे यह साफ झलकता है कि जैसा कर्मसिद्धांतका विवेचन जैन साहित्यमें है वैसा ही प्राचीन बौद्ध साहित्यके लेखकोंके मनमें था। सूक्ष्म दृष्टिसे विचारनेपर यह बात तत्व खोजियोंको प्रगट होजायगी।

जैन आचार्य ऐसा कहते हैं कि जगतमें सूक्ष्म स्कन्ध पुद्गलोंके हैं जिनको **कार्मण वर्गणा**–(Karmic molecule) कहते हैं। जो इन्द्रियगोचर नहीं हैं। जब यह प्राणी मन, वचन, कायके द्वारा शुभ या अशुभ प्रवृत्ति करता है तब जैसे भाव होते हैं उसके अनुकूल ही वे कर्म स्कन्ध खिंचकर आजाते हैं। उनके आनेको **आस्रव** कहते हैं। और वे कुछ कालके लिये ठहर जाते हैं इसको **बन्ध** कहते हैं। इन बन्ध प्राप्त कर्मोंका जब विपाक होता है तब साता या असाता रूप फल प्रगट होता है। इनको ध्यानके बलसे पकनेके पहले क्षय

किया जासक्ता है, जब कर्मोंका आना कषायसे मन्द होजाता है। तब क्षीणास्रव होजाता है। इस तरह संवर अर्थात् आस्रव निरोध होनेसे व पुराने कर्मोंके क्षय होजानेसे निर्वाणका लाभ हो जाता है। यही लक्षण उमास्वामी महाराजने तत्त्वार्थसूत्रमें कहा है---

' बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ' ॥२-१०॥

बन्धके कारणोंका अभाव होनेपर व बंधप्राप्त कर्मोंकी निर्जरा होनेपर जब सर्व कर्म क्षय होजाते हैं तब मोक्ष या निर्वाण होजाता है। कर्मसिद्धान्तका कथा वर्णन विशेष जैनशास्त्रोंमें है इसके देनेके पहले हम पाठकोंको वे वाक्य दिखलाना चाहते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि बौद्ध साहित्यमें भी कर्मोंके संबंधमें जैन सिद्धांतके समान अतिसंक्षेपमें संकेत है।

(१) मज्झिमनिकाय इतिवुत्त सब्बासव सुत्तं " आसवा संवरा पहा तब्बा " यहां आस्रवोंको संवरसे दूर करना चाहिये। दोनों शब्द जैनोंके आस्रव व संवरसे मिलते हैं। यदि इनका शब्दार्थ लिखा जावे तो यही अर्थ होता है कि कोई वस्तु आनेवाली है उसको संवर करना या रोकदेना चाहिये।

" भिक्खु सब्बासव संवर संवुतो विहरन्ति।"

अर्थात् भिक्षु सर्व आस्रवोंको संवररूप करता हुआ विहार करता है। जिसका भाव शब्दार्थसे यही निकलता है कि सर्व आनेवाले कर्मोंको निरोध करता हुआ विहार करता है।

(२) मज्झिम निकाय-भय भेरव सुत्त चतुर्थ---

" यथाकम्मूपगे सत्ते पजानामि।"

अर्थात् जैसा कर्मोंका विपाक होता है उसके होनेपर प्राणियोंको जानता हूं। नोट-इससे कर्मोंका पकाना सिद्ध होता है। कर्म कोई वस्तु है जो पककर फल देते हैं।

" मिच्छादिट्ठि कम्म समादाना।"

अर्थात् मिथ्यादृष्टि नाम कर्मको रखते हुये जैनसिद्धांतमें मिथ्या-दृष्टि कर्म नामकी एक प्रकृति है जिसका बन्ध मिथ्यादृष्टिके होता है ऐसा यहां संकेत है।

(३) दीग्घनिकाय जि० ३-३३ संगति सुत्तंत—

"तयो रासि मिच्छत्त नियतो रासि, सम्मत्तनियतो रासि, अनि-यतो रासि।"

यहां रासि–राशि–ढेर या पुंजके अर्थमें हैं। मिथ्यात्वका निश्चित ढेर, सम्यक्तका निश्चित ढेर अनिश्चित ढेर अर्थात् दोनोंका मिश्र ढेर। जिसका भाव यह निकलता है–मिथ्यात्व कर्म ढेर, सम्यक्त कर्म ढेर, मिश्र कर्म ढेर।

जैनसिद्धान्तमें दर्शनमोहके तीन भेद बताए हैं–मिथ्यात्व कर्म, सम्यक्त कर्म, मिश्र कर्म या सम्यक्त मिथ्यात्व कर्म। नोट-यहां राशि शब्द किसी वस्तुके ढेरको सूचित करता है। इससे यही झलकता है कि कर्मवर्गणाओंका या कर्मस्कंधोंका ढेर या समूह।

(४) बुद्धचर्य्या पृष्ठ ३७० अंगुलिमालसुत्त। म० नि० २-४-६.

"जिस कर्मफलके लिये अनेक सौ वर्ष, अनेक हजार वर्ष, नर्कमें पचना पड़ता उस कर्मविपाकको ब्राह्मण, तू इसी जन्ममें भोग रहा है। तब आयुष्मान् अँगुलिमालने एकांतमें ध्यानावस्थित विमुक्ति सुखको अनुभव करते हुए उसीसमय यह उदान कहा–जो पहले अर्जित कर पीछे उसे मार्जित करता है। वह मेघसे युक्त चन्द्रमाकी भांति इस लोकको प्रभासित करता है। जिसका किया पापकर्म पुण्य (कुशल)-से ढका जाता है।

नोट–यहां भी कर्मविपाक शब्द व अर्जित व मार्जित शब्द व मेघ व चँद्रमाका दृष्टांत यह प्रगट करता है कि कर्म कोई जड़ पदार्थ है आत्मासे भिन्न है जिसका पकना होता है व जो इकट्ठा किया जाता

है व दूर किया जाता है तथा वह मेघोंके समान आत्माको आच्छादन करता है व फिर दूर होजाता है ।

(4) The doctrine of the Budha by George Grimm (1926)

Page 252-First of all, of course, our present body, like every future one, together with all its sense organs and mental faculties, thus what we have called before the six-sense, machine, is exclusively a product of our previous action, in as much as it has brought about the grasping in the maternal womb; This not, ye disciple, your body, nor the body of another, rather must it be regarded as the *deed of the past*, the deed that has come to fruition, the deed that is willing actualized, that has become perceptible. (S. N. II. P. 64)

भावार्थ-हमारा वर्तमान शरीर अपनी इन्द्रियों व मनके साथ एक छः इन्द्रियोंका यंत्र है । यह वास्तवमें हमारे पूर्व कर्मका फल है । माताकी योनिमें इस हीसे भव हुआ है या तृष्णा पैदा हुई है । ऐ शिष्यो ! यह न तो तुम्हारा शरीर है न किसी अन्यका शरीर है । इसको अवश्य पूर्व कर्म समझना चाहिये । यह वह कर्म है जिसका अब फल हुआ है । वह कर्म जो इस समय प्रगट हुआ है ।

The eye, ye monks, is to be recognized and regarded as determined though former action. The ear, the nose, the tongue, the body, the mind, ye monks, to be recognized and regarded as formed and determined through former action.

(S. N. III P. 72)

भावार्थ-हे साधुओ ! इस आंखको पूर्व कर्मके द्वारा बना समझना चाहिये । इसी तरह कान, नाक, जिह्वा, शरीर, मन ये सब पूर्व कर्मके अनुसार रचे जाते हैं ऐसा समझना चाहिये ।

Page 256-There, ye disciples, a man has won insight into the body, has practiced himself in Virtue, has developed his mind, had awakened knowledge, is broad-minded, magna-

nimous, dwelling in the immeasurable In such a man, ye disciples, the small crime which he has committed ripens even during his life-time.

भावार्थ–ऐ भिक्षुओ ! एक वह मानव है जिसने शरीरका भेद ज्ञान पालिया है, शुभ आचारका अभ्यास किया है, अपने मनकी उन्नति की है, ज्ञानको जागृत किया है, उदारचित्त व महान है, जो अप्रमान (ज्ञान) में वसता है। ऐसे मानवमें यह लघुपाप जो उसने किया था इस ही जन्ममें पक जाता है।

नोट–इस पुस्तकके इन वचनोंसे भी झलकता है कि कर्म कोई ऐसी वस्तु है जो संग्रह होती है तथा वह पककर या इस जन्ममें या आगामी फल देती है। शरीरादि पूर्व कर्मके फल हैं।

(5) Manuscript remains of Budhist literature in Eastern Turkestan by A. F. Rudul Hoornle (1916).

(१२) इति पंचाशिका स्तोत्र मातृचेत कृत–

इसके ७३ वें श्लोकमें वाक्य हैं–"रागरेणुं प्रशामयत्" अर्थात् रागको रजको शांत करते हुए।

नोट–यहां रज शब्द यह संकेत करता है कि रागरूप कोई रज है, जड़ है, वह कोई राग कर्म है जिससे रागभाव मलीन झलकता है।

वज्रछेदिका।

" प्रज्ञापारमितां एतां संकलितवान् सर्वज्ञः भगवान्।
तां त्रिशतिकाम् वाचयति प्रकाशयति यः एव ॥
वज्रछेदिकाम् नाम सर्वाणि कर्माणि तथा आवरणस्य।
पापानि सम्यक् वज्रः यथा तेन वज्रछेदिका नाम ॥"

प्रज्ञापारमिताको सर्वज्ञ भगवानने रचा यह ३०० श्लोकोंमें है। जो इसको पढ़ता है, प्रकाश करता है, उसके लिये इसका नाम वज्र-छेदिका है। सर्व कर्मोंको, आवरण रूप पापोंको जो वज्रके समान

छेद देता है इससे वज्रछेदिका नाम है। नोट-इससे बहुत स्पष्टरूपसे प्रगट है कि कर्म कोई जड़ वस्तु है जो आवरण कर देती है व जो छेदी जाती है या चूरी जाती है।

पेइज २८९ अपरिमितायुः सूत्र।

श्लोक २०-य इदम् अपरिमितायुः सूत्रं लिखिष्यति लिखापयिष्यति तस्य पंचान्तरायाणि कर्मावरेणानि परिक्षयं गच्छंति।"

अर्थात् जो इस सूत्रको लिखेगा या लिखाएगा उसके पांच अन्तराय कर्मका आवरण क्षयको प्राप्त हो जायगा। नोट-यहां तो बिल्कुल स्पष्ट रूपसे कर्मका आवरण उसी तरह माना है जेसा जैन मानते हैं। जैन साहित्यमें अंतराय कर्म पांच तरहका ही बताया है-दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय। ये कर्म रज जड़ हैं, जिनका संचय होता है फिर इनका क्षय किया जाता है।

(6) Some sayings of the Budha by Woodword (1925).

Page 190-Then make thyself an island of defence, strive quick; be wise; when all thy taints of dirt & dust are blown away. The Saints shall greet thee entering the Happy Land (Dhamma pada W. 235-40)

भावार्थ-तब अपनेको ही रक्षाका द्वीप बना, शीघ्र यत्न कर बुद्धिमान हो, जब सर्व तेरे मल व रजके रंग छूट जायगे तब साधुगण तुझे आनन्दभूमि (निर्वाण) में प्रवेश करते हुए स्वागत करेंगे।

नोट-यहां मल, रज व रंग शब्द यही प्रगट करते हैं कि कर्म कोई सूक्ष्म जड़ वस्तु है, जिसको हटाया जाता है।

Sacred book of the East Vol. X (1881) Ch. XVIII Dhamapada-Impurity.

Page 243-But there is taint worse than all taints, ignorance is the greatest taint, O mendicants, throw off that taint & become taintless.

भावार्थ–सब रंगोंसे बुरा रंग है–वह है, अविद्या। वह सबसे बड़ा मैल है। ऐ भिक्षुओ, इस रंगको दूर करो और निर्मल होजाओ।

नोट—यहां यह रंग शब्द किसी जड़को प्रगट करता है जिसमें रंग या मल होता है।

Page 369-Ch. XXV The Bhikshu.

O Bhikshu, empty this boat! if emptied, it will go quickly, having cut ofl passion and hatred, thou will go to Nirvana.

भावार्थ–ऐ भिक्षु! इस नौकाको खाली करो, यदि यह खाली होजायगी यह शीघ्र जायगी। रागद्वेषको काटकर तू निर्वाणमें पहुँचेगा। नोट–यहां भी यही संकेत है कि कर्म रजके भारसे आपको खाली करो।

(7) Sacred book of Budhists Vol. III by T. W: Rys Davids Dialogue of the Budha from Digha nikaya (1910)

Page 148-Ch. IV Mahapari nibban Suttanta. There has been laid up by Chunda, the smith a Karma redounding to length of life, redounding to good birth, redounding to good fortune, redounding to good fame, redounding to the inheritance of heaven, and of sovereign power.

भावार्थ–चुंदा लुहारने ऐसा कर्म संचय किया है जो दीर्घजीवनको फलेगा, उत्तम भवको फलेगा, बहुसम्पत्तिको फलेगा, बहुयशको फलेगा, स्वर्गमें उत्पन्न करेगा व महान वीर्यदायक होगा।

नोट–इस कथनमें वैसा ही वर्णन है जैसा जैन लोग कर्मके बंधनका कहते हैं। उसने ऐसे कर्म बांधे जिनका फल ऐसा२ अच्छा होगा।

Saṅsara or Budhist philosophy of birth and death by Bhikshu Narad published by P. D. M. Perso post master Talavakele (16-10-1930).

Page 5—Budha tells us that the coming into being of the linking consciousness (Pati Sandhi Vinnana) is dependent upon the passing away of another consciousness in a past birth, and that the process of coming into being and passing away is the result of the powerful force known as **Kamma.**

भावार्थ—बुद्ध कहते हैं कि पटिसंधिविज्ञानका जन्म लेना पिछले जन्ममें दूसरे विज्ञानके नाशके आधीन है और इस नाश व उत्पादका होना उस बलिष्ठ शक्तिका फल है जिसको कम्म या कर्म कहते हैं।

Page 10—The multifarious forms are merely the manifestation of Kamma force.

It is common to say after witnessing an outbreak of passion or sensuality in a person whom we deemed characterised by a high moral standard......" How could he have committed such an act, or followed such a course of conduct." It was not the least like what he appeared to others and probably to himself. " What did it denote? It denoted, Budhists say, part at any rate of what he really was, a hidden but true aspect of his actual self, or in other words his **Kammic** tendencies."

भावार्थ—जगतमें नाना प्रकारकी अवस्थाओंका होना मात्र कर्म शक्तिका झलकाव है।

एक ऐसे महाशयमें जिसे हम ऊँचा सदाचारी समझते थे यदि कोई विषय व कषायका उदय देखनेमें आजावे तो यह एक साधारण कहनेका ढंग है कि ऐसे मानवने कैसे ऐसा काम किया व किस तरह उसका आचार इस तरहका हुआ। यही भाव दूसरेको होगा व शायद उसको भी हो। यह बात क्या बताती है? यह बताती है कि बौद्ध लोग कहते हैं कि यह उसीके छिपे हुए किन्तु सत्य जीवनका वास्तवमें एक भाग है या दूसरे शब्दोंमें यह उसके कर्मकी शक्तियोंका उदय है।

Page 15–By death is here meant, according to the **Abhidhamma**, the ceasing of psychic life of one's individual existence, or to express it in the words of a Western philosopher, the temporary end of a temporary phenomenon. It is not the complete annihilation of the so-called being, for, although the organic life has ceased, the force which hitherto

actuated it, is not destroyed. As the Kammic force remains entirely undisturbed by the disintegration of the fleeting body, the passing away of the present consciousness only conditions a fresh one in another birth.

" The new being which is the present manifestation of the stream of Kamma energy is not the same as, and has no identity with, the previous one in its line; the aggregate that makes up its composition, being different from, and having no identity with those that make up the being of its predecessor. And yet it is not an entirely different being, since it is the same stream of Kamma energy. though modified per chance just by having shown itself in that last manifestation, which is now making its presence known in the sense perceptible world as the new being " (Na ca so naca anno neither the same nor another.)

भावार्थ—अभिधम्मके अनुसार मृत्युसे मतलब एक खास प्राणीके जीवनका बंद होजाना। या एक पश्चिमीय तत्त्वज्ञके शब्दोंमें क्षणिक जीवनका क्षणिक अंत होजाना। परन्तु यह उस प्राणीका सर्वथा नाश नहीं है, क्योंकि यद्यपि वह जीवनका यंत्र बंद होगया है किन्तु वह शक्ति जो इस जीवनको चलाती थी नष्ट नहीं हुई है। मरते हुए शरीरके बिगड़ेपर भी कर्मका बल बिलकुल निर्बाध रहता है। इसलिये वर्तमान विज्ञानका बंद होना दूसरे भवमें नवीन जीवनकी उत्पत्तिके ऊपर निर्भर है।

नया प्राणी जो कर्मशक्तिकी धाराका वर्तमान उदय है वह पूर्व समान नहीं है। जिन स्कंधोंसे यह वर्तमान जीवन बना है वह पिछले जीवनके स्कंधोंसे भिन्न हैं व वैसे नहीं हैं। तथापि यह बिलकुल भिन्न प्राणी नहीं है क्योंकि कर्मशक्तिकी धारा वही है। यद्यपि वह धारा अपने पिछले जीवनके उदयसे अब शायद बदली हुई है और जो धारा इस वर्तमान जीवनमें उदय आरही है। जिसको देखनेवाली

दुनियामें नया प्राणी कहते हैं (न च सो न च अन्यः) न तो वह वही है और न वह अन्य है।

(9) The Tract "The Bodhi satta Ideal" by the same author Narada Bhikshu.

Page 18–No person whatsoever is exempt from the inexorable law of Kamma. It is law in itself. It alone determines the future birth of every individual.

भावार्थ–कोई भी प्राणी कर्मके नियमसे छूट नहीं सक्ता है, कर्म ही स्वयं एक कानून है। यह कानून स्वयं हरएक प्राणीके भावी जन्मका निश्चय करता है।

A Budhisatta enjoys the special priviledge of not seeking birth in eighteen states, in the course of his wanderings in Sansara, as the result of potential Kammic force accumulated by him.

भावार्थ–बोधिसत्व संसारमें भ्रमण करते हुए अठारह अवस्थाओंमें जन्म नहीं लेते हैं यह उनके द्वारा संचित कर्मकी शक्तिका फल है। नोट–यह संचित शब्द स्पष्ट प्रगट करता है कि किसी कार्मिक शक्तियोंका संग्रह होता है जो आगे जाकर फल देता है।

ऊपर लिखे बौद्ध साहित्यके वाक्योंसे उसी तरहका कर्म सिद्धांत झलक रहा है जैसा जैन लोग मानते हैं। हम नीचे जैन कर्मसिद्धांतका संक्षेपसे कुछ वर्णन देते हैं:—

जैनियोंका कर्म-सिद्धान्त।

कर्मोंका आस्रव या आना तथा बंध या बंधना होता है इसीसे वह कोई वस्तु है—कर्मवर्गणा Karmic molecules नामके पुद्गल (Matter) के स्कंध अति सूक्ष्म जगतमें सर्वत्र फैले हुए हैं। ये पांचों इन्द्रियोंसे नहीं मालूम होते हैं। परन्तु इनका फल जड़रूप दिखता है इससे यह जड़ हैं ऐसा अनुमान होता है। जैसे कोई आदमी बकबक करे व उन्मत्तपने कीसी क्रिया करे तो उससे यह अनुमान होता है कि इसने कोई मदिरा पी है। उसी तरह जब यह सिद्ध है कि आत्माका असली स्वभाव वही है जो निर्वाण अवस्थामें प्रगट होजाता है। जहां कोई कर्मका बंधन या कोई संस्कार नहीं रहता है, तब संसारकी अवस्थामें जो क्रोध, मान, माया, लोभ आदि औपाधिक भाव झलकते हैं उनमें किसीके संयोगका कारण है जो आत्मासे भिन्न है। जिसके संयोगसे ये विभाव होते हैं उनहीको कर्म कहते हैं। क्रोधादि कभी भी आत्माके स्वभाव नहीं होसक्ते हैं। क्रोध जब उठता है तब शरीर कांपने लगता है, आंखे लाल होजाती हैं। शरीर जड़ है, जड़पर जड़का असर ऐसा पड़ सक्ता है जो जड़रूप हो। इस अनुमानसे क्रोध कोई जड़ पदार्थ है यह सिद्ध होता है। जैसे लाल पानी, हरा पानी प्रगट करता है कि पानीमें लाल या हरा रंग मिला है वैसे अशुद्ध भाव (impure thought activities) प्रगट करते हैं कि आत्माके साथ मलीनता करनेवाली कोई आत्मासे विरुद्ध अर्थात् चेतनसे विरुद्ध अचेतन जड़ कर्म है।

संसारी आत्मामें मन, वचन व काय काम करते रहते हैं। उस ही समय आत्मामें हरकत (wovering) होती है, क्योंकि जहां मन वचन, काय हैं वहां आत्मा भी है। उसी समय आत्मामें पाई जाने-

वाली योग शक्ति काम करती है। जिस शक्तिसे पुद्गलको आकर्षण करके अपनेमें मिलाया जावे उसे योग शक्ति कहते हैं (यह जड़ पुद्गलको खींचनेवाली एक शक्ति attractive power है।

इस योगशक्तिसे कर्म वर्गणाएं खिचकर आजाती हैं और पहलेके तिष्ठे हुए कार्मण शरीर Karmic body के साथ मिल जाती हैं। इसीको कर्मोंको बंध कहते हैं। विदित हो कि इस अनादिकालीन जगतमें आत्मा कभी कार्मण शरीरसे रहित शुद्ध न था। सदासे ही इसके साथ यह कर्म वर्गणाओंका बना हुआ सूक्ष्म कार्मण शरीर चला आरहा है। इसीके फलसे यह सदासे ही जन्म मरण करता व दुःख उठाता आरहा है। जब कोई प्राणी मरता है तब यह कार्मण शरीर साथ साथ आत्माके जाता है व इसीके भीतर जो नानाप्रकार कर्म बंधे होते हैं उनहीके असरसे नया जन्म भिन्न२ प्रकारका अपने२ कर्मके विपाकसे पाता है। इस कार्मण शरीरमेंसे पुराने कर्मफल प्रगट कर या विना फल प्रगट किये हुए समयपर झड जाते हैं और नए कर्म पुद्गल मन, वचन, काय किसीके द्वारा काम करनेवाली योगशक्तिके द्वारा हरसमय हरएक संसारी जीवके आते रहते हैं चाहे वृक्ष हो चाहे पशु हो चाहे मानव हो। इसीलिये जैन सिद्धांतमें संसारी जीवको मूर्तीकसा कहा है क्योंकि पूर्ण आत्मा उसी तरह कर्मोंसे छाया हुआ है जैसे प्रकाश धूमसे या पूर्व मेघोंसे छाजाता है या पानी गाढ़ी मिट्टीसे गंदला होजाता है। यदि एक दफे भी आत्माके कर्म बन्ध क्षय होजावें तो यह निर्वाणको प्राप्त करले व अमूर्तीक रह जावे। जैसा कि आकाश है। तब जैसे आकाशपर जड़ पुद्गलका कोई असर नहीं होता है वैसे निर्वाण प्राप्त आत्मापर पुद्गलका कोई असर नहीं होता है। संसार अवस्थामें जीव सर्वांश पुद्गल कर्मसे अनादिसे आच्छादित है। इसलिये उस कर्मका अच्छा व बुरा असर होता है। तत्वार्थसारमें श्री अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं—

यज्जीवः सकषायत्वात्कर्मणो योग्यपुद्गलान् ।
आदत्ते सर्वतो योगात्स बन्धः कथितो जिनैः ॥ १३ ॥
न कर्मात्मगुणोऽमूर्तेस्तस्य बन्धाप्रसिद्धितः ।
अनुग्रहोपघातौ हि नामूर्तेः कर्तुमर्हति ॥ १४ ॥
औदारिकादिकार्याणां कारणं कर्ममूर्तिमत् ।
न ह्यमूर्तेन मूर्तानामारम्भः क्वापि दृश्यते ॥ १५ ॥
न च बन्धाप्रसिद्धिः स्यान्मूर्तैः कर्मभिरात्मनः ।
अमूर्तेरित्यनेकान्तात्तस्य मूर्तित्वसिद्धितः ॥ १६ ॥
अनादिनित्यसम्बन्धात्सह कर्मभिरात्मनः ।
अमूर्तस्यापि सत्यैक्ये मूर्तत्वमवसीयते ॥ १७ ॥
बन्धं प्रति भवत्यैकमन्योन्यानुप्रवेशतः ।
युगपद्द्रावितः स्वर्णरौप्यवज्जीवकर्मणोः ॥ १८ ॥
तथा च मूर्तिमानात्मा सुराभिभवदर्शनात् ।
नह्यमूर्तस्य नभसो मदिरा मदकारिणी ॥ १९ ॥

भावार्थ—यह क्रोधादि कषायके वशीभूत जीव जो योगके द्वारा सर्व ओरसे कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण कर लेता है इसको जिनेन्द्रोंने बंध कहा है। अमूर्तीक आत्माका कर्म कोई आत्मीक गुण नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि अमूर्तीकका बंध सिद्ध नहीं होसक्ता और न अमूर्तीकका घात या उसका उपकार किया जासक्ता है ॥ १४ ॥ औदारिक आदि स्थूल शरीररूप जो जड़ कार्य हैं उनका कारण मूर्तिमान् जड़ कर्म ही होसक्ता है क्योंकि अमूर्तीकसे मूर्तीकका बनना कहीं भी नहीं देखा जाता है ॥१५॥ इस संसारी आत्माका मूर्तीक जड़कर्मोंके साथ बंध असिद्ध नहीं है अर्थात् सिद्ध है, क्योंकि यद्यपि निश्चयनयसे आत्मा अमूर्तीक है तथापि व्यवहारनयसे उसके मूर्तीकपना सिद्ध होता है ॥ १६ ॥ आत्माका कर्मोंके साथ अनादिकालका लगातार सम्बंध

चला आरहा है। इसलिये अमूर्तीक होनेपर भी उन कर्मोंके साथ एक-पना होते हुए जीवको मूर्तीक कहते हैं ॥ १७ ॥ जैसे सोना चांदी गलानेपर एकमेक मिल जाते हैं उसी तरह बंध होते हुए व कर्मोंके आत्माके साथ मिल जाते हुए जीव व कर्मकी एकता सी होजाती है ॥१८॥ यह जीव मूर्तिमान है क्योंकि मदिरा आदि पीनेसे इसका ज्ञान बिगड़ जाता है। आकाश अमूर्तीक है उसके भीतर मदिरा अपना असर नहीं कर सक्ती है ॥ १९ ॥ संसारी आत्मा अनादिसे कर्मके साथ मिली हुई चली आरही है। योगशक्ति द्वारा कर्म पुद्गलोंका खिचावा होकर कषायोंके द्वारा उनका अधिक व कम कालतक ठहरना होता है। बन्ध जब कर्मोंका होता है, तब चार रीतियां होती हैं इसीसे बंध चार तरहका है।

जैसा श्री नेमिचन्द्रजीने द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

भावार्थ—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इस तरह बन्ध चार तरहका होता है इनमेंसे प्रकृति व प्रदेश बंध योगोंसे होते हैं। और स्थिति व अनुभाग बंध कषायोंसे होते हैं।

जब कर्म बंधते हैं तब उनमें किस तरहका स्वभाव पड़ा उसको प्रकृति बंध कहते हैं। कितनी संख्याकी कर्म वर्गणाएं बन्धी इसको प्रदेश बंध कहते हैं। यह कर्म वर्गणाएं कितने समय तक बंधमें रहती हुई व झड़ती हुई समाप्त होगी उस कालको स्थिति बंध कहते हैं। वह कर्म अपना फल दिखलाते हुए तीव्र फल देंगे या मंद ऐसे रस पड़नेको अनुभाग बंध कहते हैं।

मन, वचन, कायकी क्रिया शुभ या अशुभ जैसी निमित्तसे योग भी शुभ या अशुभ होता है।

शक्ति कभी तीव्र कभी मंद होती है जैसे शुभ या अशुभ या तीव्र या मंद योग होते हैं। उसके अनुसार अधिक या कम स्वभाववाले कर्मोंका या अधिक या कम संख्यावाले कर्मोंका बंध होता है। क्रोध मान माया लोभ आदि यदि तीव्र होते हैं तो आयु कर्मको छोड़कर अन्य सर्व कर्मोंकी स्थिति अधिक पड़ती है और जब वे कषाय मंद होते हैं तब उन कर्मोंकी स्थिति कम पड़ती है। इन कर्मोंमें कोई पुण्य कर्म कहलाते हैं कोई पाप कर्म कहलाते हैं। जब कषाय तीव्र होती है तो पाप कर्मोंमें अनुभाग अधिक व पुण्यमें कम पड़ता है किंतु जब कषाय मंद होती है तब पुण्य कर्ममें अनुभाग अधिक व पाप कर्ममें अनुभाग कम पड़ता है। आयु कर्ममें यदि आयु अशुभ होती है तो तीव्र कषायसे उसमें अधिक स्थिति व मंद कषायसे कम स्थिति पड़ती है। यदि आयु शुभ होती है तो मंद कषायसे स्थिति अधिक व तीव्र कषायसे कम पड़ती है।

प्रकृति बन्ध—

कर्मोंके मूल स्वभाव आठ हैं। और इनके उत्तर भेद एकसौ अडतालीस है। इनको जान लेना जरूरी है—

उत्तर भेद—

(१) **ज्ञानावरण कर्म**—जो आत्माके ज्ञानको ढकता है। इसके पांच भेद पांच प्रकारके ज्ञानके ढकनेकी अपेक्षासे हैं।

५—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय-ज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण।

(२) **दर्शनावरण कर्म**—जो आत्माके दर्शन गुणको ढकता है इसके नौ भेद हैं। चार प्रकार दर्शनको ढकनेसे चार व पांच प्रकारकी निद्रा।

९—चक्षु दर्शनावरण, अचक्षु दर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला, स्त्यान-गृद्धि (ऐसी नींद कि कुछ काम करले फिर सो जावे)।

(३) वेदनीय कर्म–जो सुख या दुःखकी वेदना करावे। इसके दो भेद हैं–

२--सातावेदनीय, असातावेदनीय।

(४) मोहनीय कर्म–जो मूर्छा, ममत्व, रागद्वेष, भय आदिका मैल पैदा करे। इसके मूल दो भेद हैं--एक–दर्शन मोहनीय कर्म जो सम्यग्दर्शनको मलीन करता है या रोकता है।

उत्तर प्रकृति—

दूसरा–चारित्र मोहनीय–जो चारित्र या वीतरागता या शांतिको बिगाड़ता है। दर्शन मोहनीयके तीन भेद व चारित्रमोहनीयके पचीस भेद हैं।

२८ (१) मिथ्यादर्शन या मिथ्यात्त्व (२) सम्यक्त्व (जो सम्यग्दर्शनमें दोष करे) (३) मिश्र या सम्यक्त मिथ्यात्व।

नोट–यही तीन राशि दीघनिकाय ३-३३ संगीत सुत्तंतमें कही हैं–मिछत्तनियतोरासि, सम्मत्तनियतोरासि, अनियतोरासि।

(४) से (७)–अनंतानुबंधी क्रोध, अ० मान, अ० माया, अ० लोभ (ये कषाऐं सम्यग्दर्शनको रोकती हैं।)

(८) से (११)–अप्रत्याख्यान क्रोध, अ० मान, अ० माया, अ० लोभ–(ये कपाऐं श्रावकके अहिंसादि अणुव्रतोंको रोकती हैं।)

(१२) से (१५)–प्रत्याख्यान क्रोध, प्र० मान, प्र० माया, प्र० लोभ (ये कषाऐं मुनिके अहिंसादि महाव्रतोंको रोकती हैं।)

(१६) से (१९)–संज्वलन क्रोध, सं० मान, सं० माया, सं० लोभ (ये कषाऐं पूर्ण शांतिको रोकती हैं।)

(२०) से (२८)–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (घृणा), स्त्री वेद (पुरुष भोगकी इच्छा), पुरुष वेद (स्त्री भोगकी इच्छा), नपुंसक वेद (दोनोंके भोगकी इच्छा।

(५) आयु कर्म–जिसके उदयसे किसी शरीरमें कैद रहे। यह चार प्रकारका है:—

(१) नरक आयु, (२) तिर्यंच आयु, (३) मनुष्य आयु, (४) देव आयु।

(६) नामकर्म–जिससे शरीरकी रचना हो। इसके ९३ तिरानवे भेद हैं—

४ गति–नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव।

५ जाति–एकेन्द्रिय, द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

५ शरीर–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण।

३ अंगोपांग–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक।

१ निर्माण–(शरीरमें कहांपर अंग उपंग बने व कैसे बने)।

५ बंधन–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण।

५ संघात–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस।

६ संस्थान–समचतुरस्र (सुडौल), न्यग्रोधपरिमण्डल (बड़के समान ऊपर बड़ा नीचे छोटा), स्वाति (नीचे बड़ा ऊपर छोटा), कुब्ज (कुबड़ा), वामन (बौना), हुंडक (बेडौल)।

६–संहनन (हड्डीकी जाति)–१ वज्रवृषभ नाराच (वज्रमई नसोंके जाल, बन्धन व हड्डी) २–वज्रनाराच (वज्रमई कीले व हड्डी) ३–नाराच (बन्धन कीलेदार), ४ अर्द्धनाराच (एक तरफ कीले), ५–कीलित (हड्डी आपसमें कीली हुई), ६–असम्प्राप्तासृपाटिका (हड्डी मांसमें जुड़ी हुई)।

८ स्पर्श–कड़ा, नरम, भारी, हलका, रूखा, चिकना, ठंढा, गरम।

५ रस–तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा, मीठा।

२ गंध–सुगन्ध, दुर्गन्ध।

५ वर्ण–सफेद, काला, नीला, लाल, पीत।

४ आनुपूर्वी–(जिसके उदयसे एक शरीरको छोड़कर दूसरेमें जाते हुए मध्यमें जीवका आकार पूर्ववत् रहे) नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव।

१ अगुरु लघु (जिससे शरीर न हलका हो न बहुत भारी हो)

१ उपघात (जिससे अपनेसे अपना घात हो)

२ परघात (जिससे परसे अपना घात हो।

१ आतप–(जिससे अतापकारी शरीर हो)

१ उद्योत–(जिससे शरीरमें उद्योत हो)

१ उच्छ्वास–(जिससे श्वासोच्छ्वास चले)

२ विहायोगति–(आकाशमें गमन) प्रशस्त, अप्रशस्त

१ प्रत्येक–(एक शरीरका स्वामी एक जीव)

१ साधारण (एक शरीरके स्वामी अनेक जीव)

१ त्रस–(जिससे द्वेंद्रिय आदि त्रस हो)

१ स्थावर–(जिससे एकेन्द्रिय पांच प्रकार हो)

१ सुभग–(जिससे दूसरेको सुहावे)

१ दुर्भग–(जिससे दूसरेको न सुहावे)

१ सुस्वर–(जिससे सुरीली आवाज हो)

१ दुस्वर–(जिससे बुरी आवाज हो)

१ शुभ–(जिससे सुन्दर शरीर हो)

१ अशुभ–(जिससे बुरा शरीर हो)

१ सूक्ष्म–(जिससे बाधा रहित शरीर हो)

१ बादर–(जिससे बाधा प्राप्त स्थूल शरीर हो)

१ पर्याप्ति–(जिससे शरीरकी पूर्णता करसके)

१ अपर्याप्ति–(जिससे शरीर बननेकी शक्ति न पाकर मरजावे)

१ स्थिर–(जिससे शरीरमें स्थिरता हो)

१ अस्थिर–(जिससे शरीरमें स्थिरता न हो)

१ आदेय–(जिससे प्रभावान शरीर हो)।

१ अनादेय–(जिससे अप्रभावान शरीर हो)।

१ यश:कीर्ति–(जिससे यश हो)।

१ अयश:कीर्ति–(जिससे अपयश हो)।

१ तीर्थङ्कर–(जिससे धर्म प्रचारक तीर्थङ्कर हो)।

९३ कुल

(७) गोत्र कर्म–(जिनसे किसी कुलमें जन्म ले) इसके दो भेद हैं–उच्चगोत्र, नीचगोत्र।

(८) अंतराय कर्म–(जिससे विघ्न पड़े) इसके ५ भेद हैं–[दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय। इस प्रकार कुल १४८ उत्तर प्रकृतियां होती हैं। मूल आठ प्रकृति है।

कषाय सहित योगसे नानाप्रकारका स्वभाव कर्मोंमें उस समयके भावोंमें पड़ जाता है।

प्रदेश बन्ध–जिस प्रकृतिका जो कर्म बंधता है उसकी कितनी संख्याकी कर्म वर्गणाएं बंधीं। योगोंके अधिक व कम चलनेपर संख्याकी कमी व अधिकता होती है।

एक समयमें जो कर्म बंधते हैं उनमें सबसे कम कर्म वर्गणाएं आयुकी, इससे अधिक नामकर्मकी, व नामकर्मके समान गोत्रकर्मकी, उससे अधिक ज्ञानावरणकी, ज्ञानावरणके समान दर्शनावरण और अंतरायकी अर्थात् तीनोंकी समान, उससे अधिक मोहनीयकी। उससे अधिक वेदनीयकी बंधेगी।

स्थिति बंध—

स्थिति–मर्यादा कर्मोंमें उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य कषायोंके अनुसार पड़ती है। मध्यमके बहुत भेद होसक्ते हैं। आठ कर्मकी उत्कृष्ट व जघन्य मात्र यहां बताई जाती है।

नामकर्म	उत्कृष्ट	जघन्य
१ ज्ञानावरण–	३० कोड़ाकोड़ी सागर	एक अंतर्मुहूर्त
२ दर्शनावरण–	,,	,,
३ वेदनीय–	,,	१२ मुहूर्त (मुहूर्तः ४८ मिनट)
४ मोहनीय–	७० कोड़ाकोड़ी सागर	एक अंतर्मुहूर्त
५ आयु–	३३ सागर	एक अंतर्मुहूर्त
६ नाम–	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
७ गोत्र–	,,	,,
८ अंतराय–	३० कोड़ाकोड़ी सागर	एक अंतर्मुहूर्त

नोट–सागर बहुत वर्षोंका होता है।

अनुभाग वन्ध—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, ये चार कर्म घातीय कहलाते हैं। ये पापरूप ही हैं। आत्माके स्वभावको ढकते हैं। उनमें तीव्र कषायसे अधिक फलदान शक्ति व मंदकषायसे कम फलदान शक्ति है। इसके चार दृष्टांत हैं–तीव्रतर, तीव्र, मंद, मदंतरके लिये पाषाण, हड्डी, काठ, व वेलके क्रमशः जानने। ये दृष्टांत कठोरता व मृदुताकी अपेक्षासे हैं। जैसा अनुभाग होगा वैसा विपाकके समय फल प्रगट करेंगे। आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय चार अघातीय कर्म हैं। इनमें शुभ व अशुभ दो भेद हैं। जो शुभ कर्म हैं उनको पुण्य कर्म व जो अशुभ कर्म हैं उनको पाप कर्म कहते हैं। पुण्य कर्मका अनुभाग भी चार तरहका होता है–मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर। उसके क्रमशः चार दृष्टांत हैं–गुड़, खण्ड, शर्करा, अमृत।

पाप कर्मका अनुभाग भी चार तरहका होता है—

मंदतर, मंद, तीव्र, तीव्रतर। उसके क्रमशः चार दृष्टांत हैं–नीम, कांजीर, विष, हालाहल। पुण्य अघातीय कर्ममें मीठापन अधिक२ व पाप अघातीय कर्ममें कडुआपन अधिक २ होता है।

इस तरह चार तरहका बंध हर समय हरएक संसारी प्राणी अपने अच्छे या बुरेके अनुसार करता ही रहता है।

कर्मका फल या झड़ना कैसे ?

जब कर्म बंध जाते हैं तब उसमें पकनेके लिये कुछ काल लगता है। उसका हिसाब यह है कि यदि एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति-वाला कर्मसमूह बंधा होगा तो उसमें पकनेका काल १०० सौ वर्ष होगा। यदि एक सागर व एक कोड़ सागरके अनुमान स्थिति होगी तो एक अंतर्मुहूर्त ही काल हिसाबमें आएगा।

इतने कालके पीछे बंधा हुआ कर्म पकना शुरू होकर झड़ना भी शुरू हो जावेगा। पकनेके कालको निकालकर जितना स्थितिका काल है उतने कालभरमें जिस कर्मकी जितनी वर्गणाएं बंधी हैं वे बंट जाती हैं। पहले २ अधिक झड़ती हैं आगे२ कम संख्यामें झड़ती हैं। झड़ते समय यह अपना फल दिखलाती हैं। यदि बाहरी कारण प्रतिकूल हुआ, अनुकूल न हुआ तो विना फल दिये झड़ जाती हैं। यदि अनुकूल हुआ तो फल दिखलाती हैं। जैसे किसीने क्रोध, मान, माया, लोभ चारों कषायोंकी कर्मवर्गणाएं साथ बांधी व स्थिति भी बराबर पड़ी। पकनेके काल पीछे साथ ही झड़ना शुरू होती हैं परन्तु फल एक किसीका प्रगट होता है। शेष तीन विना फल दिये झड़ जाती हैं; क्योंकि एक समयमें चारों कषाय प्रगट नहीं होती हैं। यदि कोई शास्त्रके पढ़नेमें शांतिसे बैठा लगा हुआ है। आध घंटातक पढ़ रहा है तब शास्त्र पढ़नेसे रागभाव है, यहां मंद लोभका फल होरहा है। इस आध घंटेमें मान, माया, क्रोधकी वर्गणाएं विना फल दिये झड़ रही हैं। यदि उसी मध्यमें कोई क्रोधका कारण बन जावे, कोई गाली दे बैठे व आत्मबलकी कमीसे वह सही न जासके तो उसी अर्ध घंटेके भीतर क्रोध भी झलक जायगा, तब लोभकी कर्मवर्गणाएं विना फल दिये झड़ जायगी। इसीलिये यह आवश्यक है कि बुरे निमित्तोंसे बचनेका

हम पुरुषार्थ करते रहें व अच्छे निमित्तोंके मिलानेका उद्यम करते रहें तो हम बहुतसे बुरे कर्मोंके फलसे बच जांयगे। पुरुषार्थ हमारा अपना ज्ञान और आत्मबल है।

जितना घातिय कर्मोंका परदा हटता है उतना आत्माका गुण प्रगट होजाता है, यही पुरुषार्थ है। इसीको Soul will, soul power, soul exertion कह सकते हैं। छोटेसे छोटे प्राणी वृक्ष जीवमें भी कुछ ज्ञान व आत्मबल प्रगट रहता है। इसीसे जानकर काम करनेकी शक्ति थोड़ी बहुत सबमें पाई जाती है। मोहनीयका उदय नीचेके जिन प्राणियोंमें ज्यादा होता है उनके इससे मिथ्याज्ञान या अविद्या रहती है। जब यह अविद्या हट जाती है तब आत्मशक्ति अधिक हो जाती है। इस प्रगट आत्मज्ञान व आत्मबलसे विचारपूर्वक काम करते हुए यदि सफलता हो तब तो पुण्य कर्मकी मदद समझना चाहिये, यदि असफलता हो तो पाप कर्मका असर समझना चाहिये।

हम पिछले बांधे पाप कर्मको उनके पकनेके समय पहले अपने धार्मिक पुरुषार्थसे ध्यान व समाधिसे नाश कर सकते हैं। उनके फलको घटा सकते हैं। उनकी स्थिति कम कर सकते हैं। पुण्य कर्मके फलको बढ़ा सकते हैं। आयु कर्मके कारण एक भवसे दूसरे भवमें गमन होता है। कार्माण शरीर साथ जाता है। इन्हीं कर्मोंका आस्रव जो नाश कर देते हैं उनको क्षीणास्रव जैन शास्त्रमें कहते हैं व यही शब्द बौद्ध शास्त्रोंमें बहुत जगह आया है। देखो बुद्धचर्या पृ० २६४ रुन्दक सुत्त म० नि० २÷३=६ तथा बुद्धचर्या पृ० ५९ नंद व राहुलका सन्यास जातक नि० ४ महावग्ग अ० क० महा खंधक राहुल वस्तु।

कर्मोंके संवर व निर्जराका वर्णन हम पहले सात तत्वोंमें तीसरे अध्यायमें देचुके हैं।

ऊपर कहे हुये आठ कर्मोंके बंधनेके कारण कुछ खास भाव भी हैं।

(१) ज्ञानावरण तथा दर्शनावरणके बंधके लिये खास भाव—

(१) सच्चे ज्ञानको सुनकर बुरा मानना, (२) अपने ज्ञानको छिपाना (३) ईर्षासे किसीको न पढ़ाना, (४) ज्ञानकी उन्नतिके साधनोंमें विघ्न कर देना, (५) ज्ञान व ज्ञानीका अविनय करना, (६) सच्चे ज्ञानको मिथ्या युक्तियोंसे खण्डन करना आदि।

(२) असाता वेदनीयके लिये खास भाव—

(१) दुःखित होना या दुःखी करना (२), शोकित होना व दूसरोंको शोकित करना, (३) कोई वस्तु न मिलनेपर पछतावा करना व कराना, (४) रुदन करना व रुलाना, (५) परिदेवन--ऐसा रोना व रुलाना जिससे दूसरेको दया आजावे, (६) वध-मारना, कष्ट देना, प्राण लेना इत्यादि।

(३) सातावेदनीयके बंधके विशेष भावः—

(१) सर्व प्राणियों पर दया रखना, (२) व्रती पुरुषोंपर विशेष दया करना, (३) आहार, औषधि, अभय व विद्या ये चार प्रकारका दान साधर्मी भाई व बहनोंको भक्तिसे तथा दुःखितोंको करुणाभावसे देना, (४) मुनिका चारित्र पालना, (५) गृहस्थ श्रावकका चारित्र पालना, (६) योगाभ्यास करना, (७) क्षमा रखनी, (८) सन्तोष रखना व मनको लोलुपतासे बचाना इत्यादि।

(४) मोहनीयके बंधके विशेष भावः—

(१) सच्चे देव, गुरु, धर्मकी निन्दा करना, (२) तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ करना, (३) तीव्र हास्य, रति, अरति, शोक, भय, घृणा करना, (४) तीव्र काम भाव रखना इत्यादि।

(५) नरक आयुके बंधके विशेष भाव—

बहुत मर्यादासे अधिक अन्यायपूर्वक व्यापारादि करना व संपत्तिमें बहुत लालसा करना, दानधर्म व परोपकारमें न लगाना।

(६) तिर्यंच आयुके बंधका विशेष भाव—

मायाचारीका वर्ताव करना ।

(७) मानव आयुके बन्धके विशेष भाव—

थोड़ा आरम्भ न्यायपूर्वक करना, थोड़ी ममता परिग्रहमें रखनी व परिणामोंको कोमल रखना ।

(८) देव आयुके बंधके कारण विशेष भाव—

(१) सम्यग्दर्शन पालना, (२) मुनिका चारित्र पालना, (३) श्रावकका चारित्र पालना, (४) समता भावसे क्लेशोंको भोग लेना, (५) अज्ञान तप करना ।

(९) अशुभ नामके बंधके कारण विशेष भाव—.

(१) मन, वचन, कायकी कुटिल चेष्टा, (२) लोगोंसे झगड़ा व लड़ाई करना ।

(१०) शुभनाम कर्मके बंधके कारण भाव—

(१) मन वचन कायको सरल रखना (२) झगड़ा लड़ाई न करके एकता व प्रेमसे रहना ।

(११) नीच गोत्रके कारण भाव—

(१) परकी निन्दा करनी (२) अपनी प्रशंसा करनी (३) परके होते हुए गुणोंको ढकना (४) अपने न होते गुणोंको प्रगट करना ।

(१२) उच्च गोत्रके कारण भाव—

(१) अपनी निन्दा करना (२) परकी प्रशंसा करना (३) अपने होते गुण ढकना (४) परके होते गुणोंको प्रगट करना (५) विनयसे वर्ताव रखना (६) उद्धतपना या घमंड नहीं करना ।

(१३) अंतरायके कारण भाव—

(१) दान देते हुए रोकना (२) किसीके लाभमें विघ्न करना (३)

किसीके भोगमें विघ्न करना (४) किसीके उपभोगमें विघ्न करना (५) किसीके उत्साहको गिरा देना।

इस तरह आठ कर्मोंके बंधके विशेष भाव बताए गए हैं।

यह बात जान लेना चाहिये कि साधारणतासे एक प्रकारके भावसे सात या आठ कर्मोंका बंध एक साथ होता है उनके अनुभागमें अन्तर पड़ जाता है। खास भाव जिस कर्मके होंगे उनमें अनुभाग कम या अधिक पड़ेगा। कहीं२ बौद्ध साहित्यमें भी खास खास भाव खास खास कर्म विपाकके बताये हैं। देखो—

Manuscript remains of Budhist literature in rastern Turkestan by Hoornle (1916)

Page 48- (10)

सुकसूत्र—मध्यम आगम—दश धर्मा महाशाक्य संवर्तनीया: कतमे दश अनिर्य्यूक:, परस्य लाभ सत्कार, आत्त मनता, परस्यकीर्ति शब्द श्लोकर्नआर्त्त मनता, यात्राप्रदानं, वोधिचित्तोत्पाद:, तथा गत विम्ब करणं, माता पितृणां प्रत्युद्गमनम्। आर्यानां प्रत्युद्गमनं अल्प शक्यात् कुशल मूलात् विच्छंदनं महाशक्ये कुशल मूले समापादनं। इमे दश धर्मा महाशाक्य संवर्तनीया:।

भावार्थ—महाशक्तिशाली आगे जन्ममें होनेके लिये दश स्वभाव कारण हैं-(१) ईर्षा नहीं करना, (२) दूसरेका लाभ सत्कार करना, (३) उत्तम मन रखना। दूसरेका यश भाव पूर्वक कहना, (४) यात्रा (धर्मयात्रा)के लिये द्रव्य देना (५) सत्यकी प्राप्तिमें मन लगाना, (६) बुद्ध भगवानकी मूर्ति बनाना, (७) माता पिताका आदर करना, (८) साधुओंका स्वागत करना, (९) अल्प शक्तिवाले शुभ कामसे बचाना, (१०) महाशक्तिवाले शुभ काममें लगाना। ये दशवाले शक्तिशाली बनानेवाली हैं।

(१) **दश धर्मा नीच कुल संवर्तनीया**—कतमें दश:—अमातृ ज्ञाता, अपितृ ज्ञाता, अश्रामण्यता, अब्राह्मण्यता, कुलेन ज्येष्ठानु-

पालकत्वम्, आसनादि न प्रत्युत्थानम्, आसने न निमंत्रणं, मातापित्रो अशूषा, आर्याणां अशूषा, नीच कुल जातानां पुद्गलानां अन्तिके परिभव:, इमे दश धर्मा नीचकुल संवर्तनीया: ।

भावार्थ–दश धर्म नीच कुलमे जन्म करानेवाले हैं । कौनसे १०–(१) माताका आदर न करना, (२) पिताका आदर न करना, (३) श्रमण (साधु) रूप होकर श्रमणके समान जीवन न विताना (४) ब्राह्मण होकर ब्राह्मणके समान जीवन न विताना, (५) कुलमें वड़ोंकी रक्षा न करना, (६) वड़ोंको देखकर आसनादिसे उठना, (७) उनको योग्य आसनपर न बुलाना, (८) माता पिताकी सेवा न करना, (९) साधुओंकी सेवा न करना, (१०) नीच कुलवाले लोगोंके निकट घृणा भाव दिखाना व उनका तिरस्कार करना । ये दस बातें नीच कुलमें जन्म करानेवाली हैं ।

(३) दश धर्मा उच्च कुल संवर्तनीया–कतमे दश मातृज्ञता, पितृज्ञता, श्रामण्यता, ब्राह्मण्यता, कुलेज्येष्ठानुपालत्वं, आसनात् प्रत्युत्थानम् । आसनेनाभिनिमंत्रण मातापित्रो: सुश्रूषा, आर्याणां सुश्रूषा, नीचकुलजातानां पुद्गलानां अपरिभव: इमे दशधर्मा उच्चकुल संवर्तनीया: ।

भावार्थ–ये दशधर्म उच्चकुलमें पैदा करानेवाले हैं । वे दश हैं–(१) माताका आदर करना, (२) पिताका आदर करना, (३) श्रमणपना पालना, (४) ब्राह्मणपना पालना, (५) कुलमें वड़ोंकी रक्षा करना, (६) आसनसे उठकर वड़ोंकी विनय करना, (७) आसनमें उनको निमंत्रण करना, (८) माता पिताकी सेवा, (९) साधुओंकी सेवा (१०) नीच कुलवालोंका तिरस्कार न करना । ये दश बातें उच्च कुलमें पैदा करानेवाली हैं ।

नोट–वे नीच ऊंच कुलमें पैदा करानेवाले कर्म बंधके भाव जैनि-

योंके ऊपर कहे नीच व ऊंच गोत्रके बंध करानेवाले भावोंसे करीब २ मिल जाते हैं।

(४) दशधर्मा अल्पभोग संवर्तनीयाः—कतमे दश--अदत्तादानं, अदत्तादान समादायनं, अदत्ता दानस्य च वर्णवादिता, अदत्ता दानेन आत्त मनता, मातापितृणां वृत्युच्छेदः, आर्याणां वृत्युच्छेदः, परस्य अलाभेन आत्तमनता, परस्य लाभेन नात्तमनता, परस्पलाभांतरायो दुर्भिक्षयाचना च इमे दशधर्मा अल्पभोग संवर्तनीयाः—

भावार्थ—ये दश धर्म अल्पभोग दिलानेवाले अर्थात् तृप्तिकारक भोग न करानेवाले हैं। वे दश हैं-(१) विना दी हुई चीज उठा लेना (२) चोरीका माल स्वीकार करना (३) चोरीके कामकी प्रशंसा करनी, (४) चोरी करके खुशी मनाना, (५) माता पिताकी आजीविका तोड़ देना, (६) सज्जनोंकी और साधुओंकी आजीविका तोड़ देना, (७) दूसरेको लाभ न होनेपर हर्ष मानना (८) दूसरेके लाभ होनेपर दुःख मानना, (९) दूसरेके लाभमें अन्तराय करना, (१०) दुर्भिक्ष होनेकी याचना करनी, ये दश धर्म भोगोंमें विघ्न करनेवाले हैं।

(५) दशधर्मा महाभोगसंवर्तनीयाः—कतमे दशदानं, अदत्तादान वैरमणं, अदत्ता दान वैरमणस्य वर्णवादिता, अदत्तादान वैरमरणेन आत्त मनता, परस्य मलाभेन अनात्तमनता, परस्यलाभेन आत्त मनता, परस्यलाभोद्योगः, दानस्याभ्यनुमोदनं, दानाधि युक्तानां पुद्गलानां संप्रहर्षणं, सुभिक्ष याचना, च इमे दशधर्मा महा भोगा संवर्तनीयाः।

भावार्थ—दशधर्म महायोग प्राप्त करानेवाले हैं। ये दश हैं (१) दान देना, (२) चोरी न करना, (३) चोरी न करनेवालेकी प्रशंसा करना, (४) चोरी न करनेमें प्रसन्नता मानना, (५) दूसरेको लाभ न हो तो हर्ष न मानना, (६) दूसरेको लाभ हो तो

सन्तोष मानना, (७) परको लाभ करानेका उद्योग करना, (८) दानकी अनुमोदना करना, (९) दान करनेवालेको उत्साहित करना (१०) सुभिक्ष चाहना। ये दश धर्म महाभोग प्राप्त करानेवाले हैं।

नोट--नीच गोत्र व उच्च गोत्र व साता वेदनीय व असातावेदनीयके कारण भाव जो ऊपर जो सिद्धांतानुसार दिये हैं इनमें ये गर्भित हो जाते हैं।

जैन सिद्धांतमें कर्मके बंध व फल व संवर व निर्जराका विस्तारपूर्वक बहुत कथन है। नीचे लिखे ग्रन्थ देखने योग्य हैं–(१) श्री उमास्वामी कृत तत्वार्थसूत्र, (२) अमृतचन्द्र आचार्यकृत तत्वार्थसार (३) पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि, (४) अकलंक कृत राजवार्तिक, (५) नेमचंद कृत गोमट्टसार, (६) नेमचंद कृत लब्धिसार, (७) नेमचंद कृत क्षपणासार। तत्वार्थ सूत्रका व गोमटसार जीव व कर्मकांडका इंग्रेजी उल्था भी होगया है जो जैन पुस्तक प्रकाशन विभाग अजिताश्रम, लखनऊ या जैन पुस्तक प्रकाशन विभाग परिषद, बिजनौर (यू० पी०) से प्राप्त होसक्ते हैं। उन सबकी हिन्दी उल्थाकी पुस्तकें दि० जैन पुस्तकालय, चंदावाड़ी–सूरतसे मिल सक्ती हैं। यहां कुछ संक्षेपमें दिया है।

जैन व बौद्धका दोनोंका वर्णन बहुत मिलता हुआ है। कर्मसिद्धांतके वर्णनकी पुस्तकें बौद्ध साहित्यमें और भी होंगी, वे यदि मिल गईं तो बिलकुल जैन कथनसे मिलान हो जायगा। हमें तो यही विश्वास होता है कि बौद्ध साहित्यके रचनेवाले प्राचीन विद्वानोंके भावोंमें कर्म विपाकका यही भाव था जो इतना स्पष्ट नहीं दिखता है जैसा जैन सिद्धांतमें है। विद्वानोंको विचारना चाहिये।

Chapter V Ahimsa.

पाँचवाँ अध्याय ।

अहिंसा ।

अहिंसा यह जैनोंका प्रसिद्ध सिद्धांत है । हम देखते हैं तो बौद्ध सिद्धांतमें भी अहिंसाव्रत पालनका बहुत कथन है । तथा यदि सूक्ष्म-दृष्टिसे देखा जायगा तो जैनोंके समान ही कथन मिलेगा । मांसाहारके सम्बन्धमें कुछ साहित्य बौद्धोंका सशंकित है, वह प्राचीन है या नहीं इसपर विचार करना होगा । नीचे हम बौद्ध वाक्य अहिंसाके सम्बन्धमें देते हैं—

(१) मज्झिमनिकाय-सल्लेखसुत्तं अट्ठम—

“ पाणातिपातिस्स पुरिसपुग्गलस्स पाणातिपातवेरमणी होति परिनिव्वानाय । ”

भावार्थ—जो पुरुष प्राणी हिंसा करता है उसको अहिंसासे विरक्त होना निर्वाणके लिये है ।

(२) मज्झिमनिकाय सम्मादिट्ठिसुत्तं नवम—

“ पाणातिपातो अकुसलं, पाणातिपातवेरमणी कुसलं ।”

भावार्थ—प्राण घात अहितकारी है । प्राणघातसे विरक्त होना हितकारी है ।

(३) दीग्घनिकाय जि० ३ सिगालो वाद सुत्तंत ३१ ।

“ पाणातिपातो, आदिन्नादानं, मुसावादो च वुच्चति परदारगमनं चेव नप्पसंसंति पंडितातित । ”

भावार्थ—पंडितगण प्राणातिपात (हिंसा), अदत्तादान (चोरी), मृषाबाद व परस्त्री गमनकी प्रशंसा नहीं करते हैं ।

(४) दीर्घनिकाय जि० ३ संगीतसुतंत ३३

दश अकुसलकम्मपंथ-(१) पाणातिपात, (२) आदत्तादान, (३) कामेसुमिच्छा, (४) मुसावादो, (५) पिसूनवाचा, (६) फरुसा-वाचा, (७) सम्फप्पलापा, (८) अभिज्झा, (९) व्यापादो, (१०) मिच्छादिट्ठि।

भावार्थ-हिंसा, चोरी, कामभाव, असत्य, चुगली, कठोर वचन, बकवक, लोभ, द्वेष, मिथ्यादृष्टिपना ये अकुशल मार्ग हैं।

(५) अंगुत्तरनिकाय ५-१७७।

"पंच इमा भिक्खवे वणिज्ज उपासकेन अकरनीया: । कतमे पंच:-सत्थवणिज्जा, सत्तवणिज्जा, मंसवणिज्जा, मज्जवणिज्जा, विसवणिज्जा।

भावार्थ-हे भिक्षुओ ! पांच वाणिज्य उपासकको नहीं करना चाहिये-(१) शस्त्र वाणिज्य, (२) सजीव प्राणी वाणिज्य, (३) मांसका वाणिज्य, (४) मदिराका वाणिज्य, (५) विषका वाणिज्य।

(६) बुद्धचर्या—

(१) पृ० १०० महावग्ग १०-भिक्षु संघमें कलह। जो पीछे गांवसे पिंड भार करके लौटता हैं वह भोजनमेंसे जो बचा रहता है। यदि चाहता है, खाता है, यदि नहीं चाहता है तो ऐसे स्थानमें जहां हरियाली न हो छोड़ देता है या जीव रहित पानीमें छोड़ देता है।

नोट-इससे स्थावर कायकी भी हिंसाकी रक्षाका विचार झलकता है।

(२) बु० च० पृ० १४४ पाराजिका १। "बुद्धोंका आचार है कि वर्षावास समाप्त करके प्रवारणा (आश्विन पूर्णिमाको उपोसथ) करके लोक संग्रहके लिये देशाटन करते हैं। नौ मासमें देशाटन समाप्त करते हैं।

यदि भिक्षुओंकी शमथ-विषमपना (समाधिप्रज्ञा) अपरिपक्व होती है....कार्तिककी पूर्णमासीको प्रवारणा करके मार्गशीर्षके पहले दिन निकलकर....आठ मासमें चारिका समाप्त करते हैं।

नोट—वर्षामें विहार न करना अहिंसाका सूचक है।

(३) बु० च० पृ० १६७—महावग्ग ६ केणियजटिल—"श्रमण गौतम भी रातको उवरत=विकाल भोजनसे विरति हैं। अर्थात् गौतम बुद्ध रात्रिको भोजन नहीं करते हैं।"

(४) बु० च० पृ० १७३—अं० नि० अ० क० ३: ४. ४ चूळ हत्थिपदोपमसुत्त।

"बुद्ध भगवान—बीज समुदाय-भूत समुदायके विनाशसे विरत होता है। एकाहारी, रातको उपरत=विकाल (मध्यान्होतर) भोजनसे विरत होता है। माला, गंध और विलेपनके धारण, मंडन और विभूषणसे विरत होता है।

नोट—यहां रात्रि आहारका निषेध हिंसाके बचावके लिये ही है।

(५) बु० च० २३२–२४० कुटदंतसुत्त दी० नि० नं० १-५।

यज्ञमें पशुबलि निषेधपर—

ब्राह्मण! उस यज्ञमें गाएं नहीं मारी गईं, बकरे, भेड़े नहीं मारे गए, मुर्गे, सुअर नहीं मारे गए, न नाना प्रकारके प्राणी मारे गए, न यूपके लिये वृक्ष काटे गए, न पर हिंसाके लिये दर्भ काटे गए, घी, तेल, मक्खन, दही, मधु, गुड़से ही वह यज्ञ समाप्तिको प्राप्त हुआ। ब्राह्मण, वह जो प्रसन्नचित्त हो शिक्षापद (यमनियम) ग्रहण करता है। (१) प्राणातिपात विरमण (अहिंसा)। (२) अदत्तादान विरमण (अचोरी)। (३) काम मिथ्याचार विरमण (अव्यभिचार) (४) मृषावाद विरमण (झूठ त्याग)। (५) सुरामेरय-मद्य-प्रमाद-स्थान विरमण (नशात्याग) यह यज्ञ ब्राह्मण! महा फलदायी महामहात्म्यवान है। हे गौतम! मैं भगवान गौतमकी शरण जाता हूं, धर्म और भिक्षु संघकी भी, आप गौतम आजसे मुझे अंजलिबद्ध उपासक धारण करें। हे गौतम! यह मैं सातसै बैलोंको, सातसौ बछड़ोंको, सातसौ बक-

रोंको, सातसौ भेड़ोंको छोडवा देता हूं, जीवनदान देता हूं, वे हरी घासें खावें, ठंडा पानी पीवे, ठंडी हवा उनके लिये चले।

नोट—इससे वृक्षादि व दर्भपर भी दया सूचित होती है।

(६) बु० च० पृ० २९५—कीटागिरिसुत्त म० नि० २-८-१० एक समय बड़े भारी भिक्षु संघके साथ भगवान काशी देशमें चारिका करते थे। तब भगवानने भिक्षुओंको आमंत्रित किया।

"भिक्षुओ" मैं रात्रि भोजनसे विरत हो विहार करता हूं। रात्रि भोजन छोडकर भोजन करनेसे—आरोग्य, उत्साह, बल, सुखपूर्वक विहार अनुभव करता हूं। आओ भिक्षुओं! तुम भी रात्रि भोजन विरत हो भोजन करो।

(७) बुद्धचर्या पृ० ३७१—अंगुलिमालसुत्त—म० नि० २-४-६ वह परम शांतिको पाकर स्थावर जंगमकी रक्षा करेगा।

(८) बु० च० पृ० ३९० सुन्दरिका भारद्वाजसुत्त। सं० नि० ७-१-९ इस द्रव्यशेषको तृण रहित स्थानपर छोड़ दे या प्राणी रहित पानीमें डाल दे।

(९) बु० च० पृ० ४६४ सामंजफलसुत्त दी० नि० १: १: २: इस सूत्रमें साधु धर्म कहा है—

साधु बीज-ग्राम-भूत-ग्रामके नाशसे विरत होता है। एकाहारी, रातको (भोजनसे) विरत, विकाल भोजनसे विरत होता है। मूल बीज स्कंध बीज (डाली जो उगती है), फल बीज, अग्रबीज, और पांचवा बीज बीज—यह या इस प्रकारके बीज ग्राम-भूतग्रामके विनाशसे विरत होता है।

नोट—यहां वनस्पतिकायकी रक्षाका अच्छा विवेचन है। ऐसा ही कथन जैन शास्त्र श्री गोमटसार जीवकांडकी योग मार्गणामें किया है। देखो:—

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंद बीज बीजरुहा ।
समुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंत कायां य ॥ १८६ ॥

भावार्थ–वनस्पति नीचे प्रकारकी कहलाती हैं—

(१) मुल बीज–जिसका मूलबीज होता है जैसे अदरक, हलदी।
(२) अग्रबीज–जिनका अग्र भाग बीज होता है जैसे आर्यक।
(३) पर्वबीज–जिनकी गांठ बीज होती है जैसे साठा।
(४) कंदबीज--जिनका कंद बीज होता है जैसे पिंडाळू सूरण।
(५) स्कंधबीज--जिनका स्कंध बीज होता है जैसे पलास।
(६) बीजबीज--जिनका बीज ही बीज होता है जैसे गेहूं, चना।
(७) सम्मूर्छन--निश्चित बीज विना घास आदि।

(7) Some sayings of the Budha by F. H. Woodword (1925)

Page 68-In rainy season recluses tread down the green grass, they crush the living thing that has one sense, they trample to death many a tiny life, I enjoin on you, brethren, that ye observe the retreat during the rains (Vin. Pit. Mahavagga III. I)

भावार्थ–वर्षातमें साधु हरी घासपर चलते हैं, वे एकेन्द्रियवाले प्राणियोंको कुचलते हैं, वे बहुत छोटे छोटे जंतुओंको मारते हैं। हे भ्राताओ ! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि वर्षातमें एक स्थानपर रहो।

(8) Manuscript remains of Budhist literature in Eastern Turkestan by Hoornle (1916)

Page 4-Vinaya text.

संप्रजानेन गंतव्यं ईर्यापथ सम्पन्नेन सुसंवृत्तेन युगान्तर प्रेक्षिणा सगौरवेण ज्ञानपूर्वक जाना चाहिये। जमीन देखकर संवरपूर्वक चार हाथ आगे देखकर गौरव सहित चलना चाहिये।

(9) The Doctrine of Budha by Geote Grinner (1926)

Page 339-Inflamed by desire, evil-disposed by hate, confused by delusion, overcome entirely, influenced internally, O Brahman, we think of hurting ourselves, we think

of hurting both ourselves and others, and feel mental pain and grief. But if we have abandoned desire, then we donot think any more of hurting ourselves, nor of hurting others, nor hurting both ourselves & others and we donot feel mental pain & grief. Thus, O Brahman, Nibban is visible and present, inviting to come and see, leading to the goal, intelligent to the wise, each for himself.

(M. I P. 303, A III P. 53)

भावार्थ–इच्छासे पीड़ित होकर, द्वेषसे दुष्टचित्त होकर, मोहसे क्षोभित होकर पूर्णपने दबा हुआ, अतंगसे आंकुलित होकर ए ब्राह्मण! हम अपनेको हानि पहुंचाना चाहते हैं, हम दूसरोंको हानि पहुंचाना चाहते हैं, हम अपनेको व दूसरोंको हानि पहुंचाना चाहते हैं और हम मनमें खेद व दुःख अनुभव करते हैं, परन्तु यदि हम इच्छा त्याग दें, दोष निकाल दें, मोह तज दें, तब हम फिर कभी अपनेको हानि पहुंचाना नहीं ख्याल करेंगे, न दूसरोंको न अपने व दूसरोंको दोनोंको हानि पहुंचाना चाहेंगे। तब हमें मानसिक कष्ट व खेद न होगा। ऐ ब्राह्मण! इस तरह निर्वाण दिखलाने लगेगा। सामने आजायगा। निर्जरा स्वयं बुलाएगा। हम उद्देश्यपर चल पड़ेंगे। पंडितोंको समझमें आजायगा। हरएकके अपने लिये यह मार्ग है।

नोट–यहां भाव अहिंसाका अच्छा विवेचन है—

Page 434-F. Note-What is sinful in the taking of food lies in this that other life is destroyed and thereby suffering is caused in the world. Since animal life is more highly organised and much more sensible to pain than plant life & the good man will in no case, either directly or indirectly be the cause of killing of animals for his food. In consequence of this he will not eat the flesh of any animal in any case where he has seen or heard or supposes that it has been killed for his sake. There are three cases, Jivak, where I say

that meat shall not be accepted. seen, heard or supposed (M. I. P. 369). For the same reason, no one may offer the Perfected one or his disciples the flesh of an animal killed for this purpose. Whoever, Jivaka, takes life for the sake of the perfected one or off a disciple of the perfected one incurs five fold serious guilt. Because, he commands " go & fetch that animal, thereby the first time he incurs serious guilt; because then the animal, led to him in fear and trembling, experiences pain and torment, he for the second time incurs serious guilt. Because, he then says, go & kill the animal; he for the third time incurs serious guilt, because the animal then in death, experiences pain & torment, he for the fourth time incurs serious guilt. Because he then gives unfitting refreshment to the perfected one or the perfected one's desciple, he for the fifth time incurs serious guilt (M. I. 369)

भावार्थ—आहार लेनेमें दोष यही है जो दूसरोंके प्राण लिये जाते हैं, इससे जगतमें कष्ट होता है। क्योंकि पशु जीवन वृक्ष जीवनकी अपेक्षा अधिक उन्नति प्राप्त है व अधिक दुख अनुभव कर सक्ता है। इसलिये आर्य पुरुष किसी भी तरह न प्रत्यक्ष, न परोक्ष पशुओंके वधका कारण अपने भोजनके लिये होगा। इसीलिये वह किसी भी तरह किसी पशुका मांस नहीं खाएगा। चाहे उसके देखा हो या सुना हो या यह संकल्प किया हो कि यह उसके लिये मारा गया है। ऐ जीवक! तीन ऐसे कारण हैं जिससे मैं कहता हूं कि मांस नहीं स्वीकार करना चाहिये। देखा हो सुना हो या संकल्प किया हो। इसी कारणसे बुद्धको या उनके शिष्यको कोई पशुमांस न देवे, जो इसीलिये मारा गया हो तथा ऐ जीवक! जो कोई बुद्ध या उनके शिष्यके लिये किसीके प्राण लेता है वह पांच तरहसे घोर अपराध करता है। क्योंकि वह आज्ञा करता है। जाओ, उस पशुको लाओ इस तरह उसने पहली

दफे घोर पाप किया। फिर वह पशु भयमें कांपता हुआ लाया जाता है, तब दुःखका अनुभव करता है। इस तरह वह दूसरी दफे घोर पाप करता है। फिर वह कहता है जाओ इस पशुको मारो तब वह तीसरी दफे घोर पाप करता है। फिर वह पशु मरते हुए कष्ट पाता है, इससे वह चौथी दफे घोर अपराध करता है। फिर वह इस अयोग्य वस्तुको बुद्धको या उनके शिष्योंको देता है इससे वह पांचमी दफे घोर अपराध करता है।

Page-469. As a mother protects her only child with her own life, cultivate such boundless love towards all beings (Metta Sutta of Sutta Nipate)

भावार्थ–जिस तरह माता अपनी जी जानसे अपने बच्चेकी पालना करती है इसी तरह ऐसा अनंत प्रेम सर्व प्राणी मात्रपर करो।

(१०) सुत्तनिपात धम्मिक सुत्त—

पाणं न हाने न च घातयेय्य न चानुजञ्ञा हनतं परेसं।
सब्बेसु भूतेसु निधायदंडं ये थावरा ये चतसंति लोके॥

भावार्थ–सर्व प्राणियोंपर दया रखके जो लोकमें स्थावर जीव हो या त्रस जीव हो उनमेंसे किसीके प्राण न लेना चाहिये न उनका घात कराना चाहिये न घात होनेकी अनुमोदना करना चाहिये।

नोट–जैनदर्शनमें स्थावर एकेन्द्रिय जीवोंको कहते हैं–पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक। त्रस द्वेन्द्रियसे पन्चेन्द्रिय तक सबको कहते हैं।

(११) म० नि० वत्थुपथ सुत्त (७)

सेय्यथापि भिक्खवे वत्थं संकिलिट्ठं मलग्गहीतं अच्छं उदके आगम्म परिसुद्धं होति परियोदातं....एवमेव भिक्खे भिक्खु एवं सीलो एवं धम्मो एवं पञ्ञो सालिनं चेदि पिंडं पातं भुंजति विचिकालिकं अनेकसूपं अनेक व्यंजनं नेव ये अस्स तं होति अंतराय—"

भावार्थ–जैसे ऐ भिक्षुओ ! कोई मैला वस्त्र स्वच्छ जलसे साफ होता है वैसे शीलवान धर्मात्मा प्रज्ञावान साधु चावलकी भिक्षा लेता है इसके सिवाय अनेक प्रकार व्यंजनोंको नहीं लेता है जिनसे विघ्न हो।

Sacred book of the East Vol. xi (188 I) by Maxmuller.
Chap. II. Kulasilam–

(1) He abstains from destroying life. Full of modesty and pity, he is compassionate and kimd to all creatures that have life. (8) refrains from injuring any herb or any creature he takes but one meal a day; abstains from food at night time or at the wrong time.

भावार्थ–साधु किसीके प्राण नहीं लेता है। नम्रता व दयासे पूर्ण वह सर्व प्राणी मात्रपर दयालु रहता है, (८) किसी घासकी पत्ती या किसी जंतुको कष्ट नहीं पहुंचाता है। दिनमें मात्र एक दफे आहार लेता है। रात्रिको भोजन नहीं करता है। अकालमें नहीं खाता है।

Maddlyam shilam.

(1) He lives on food provided by the faithful, refrains from injuring plants or animals.

भावार्थ–वह श्रद्धावानोंके द्वारा दिये हुए भोजनपर वसर करता है। वृक्षों व पशुओंको कष्ट नहीं पहुंचाता है।

Sutta Nipata translated by Fanshold (1881)
III. Mahavagga II Nalak Sutta.

27–705 As I am, so are these, as these are, so am I, in-entifying with others, let him not kill nor cause (any one) to kill.

" यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहम्। "

भावार्थ–जैसा मैं हूं वैसे ये हैं, जैसे वे हैं वैसा मैं हूं। अपने समान दूसरोंको जानकर न तो किसीकी हिंसा करनी चाहिये न हिंसा करानी चाहिये।

(१४) Path of purity विशुद्ध मग by बुद्ध घोष P. I & II

Page-79. Diseases caused by eating do not harm the monk who at one sitting eats his food.

भावार्थ—जो साधु एक आसन भोजन करता है उसको भोजन सम्बन्धी रोग नहीं होते हैं—

Several Books of the East by F. Maxmuller.

Vol. XLIX Budhist Mahayan.

Page 121-(65) To kill a helpless victim through a wish for future reward, it would be an unseemly action for a merciful-hearted good man, even if the reward of the sacrifice were eternal; but what if, after all, it is subject to decay ?

(67) Even that happiness which comes to a man (while he stays in this world), through the injury of another, is hateful to the wise compassionate heart; how much more if it be something beyond our sight in another life ?

भावार्थ—असहाय प्राणीको किसी भविष्य फलकी इच्छासे मार डालना एक दयावान आर्य पुरुषके लिये अयोग्य काम है। यदि कदाचित् ऐसी बलि करनेका फल अविनाशी भी हो। उस फलकी तो बात ही क्या जो नाशवंत है।

इस जगतमें रहते हुए यदि दूसरोंको कष्ट देकर सुख होता हो तो ऐसा सुख दयावानोंको पसंद नहीं है। तब ऐसेके लिये क्या, जिसका प्रत्यक्ष नहीं है, आगेके जन्ममें हैं।

नोट—इन ऊपर दिये हुए कुछ वाक्योंसे यह प्रगट हो जायगा कि अहिंसाका यथार्थ स्वरूप बौद्ध शास्त्रोंमें है। नीचे हम दिखलाएंगे उससे प्रगट होगा कि जैन शास्त्रोंमें कथित अहिंसासे यह बात मिल जाती है।

मांसाहारका विचार–मांसाहारका प्रचार बौद्धानुयायियोंमें अधिकतर पाया जाता है। इसके सम्बन्धमें यदि विचार किया जाता है तो पाली पुस्तकोंका निर्माण सीलोनमें प्रथम शताब्दीमें पहले पहल हुआ जैसा बुद्धचर्याकी भूमिकामें लिखा है "लंकामें ही ईसाकी प्रथम शताब्दीमें सूत्र, विनय और अभि धर्म–तीनों पिटक (त्रिपिटक) जो अबतक कंठस्थ चले आते थे, लेखबद्ध किये गए और यही आजकलका त्रिपिटक है।" पाली पुस्तकोंमें कहीं साफ तौरसे मांस खानेका निषेध नहीं है।

The life of Budha by Edward J. Thomas (1927).

इसके पृष्ठ १२९ में मांसाहारपर यह लेख है जिसका भाव यह है कि मांसाहार चारित्रका विषय था। इसको खास तौरसे निंदा नहीं गया। मात्र यह तो कहा गया कि मांस लेनेवाला किसी तरह हिंसाका भागी न हो। मज्झिमनिकायके जीवक सुत्त (१–१३८) में कथन है कि एक दफे जीवक वैद्यने बुद्धसे पूछा कि उसने सुना है कि लोग पशुओंको बुद्धके लिये मारते हैं और बुद्ध उस मांसको खाते हैं क्या ऐसे कहनेवाले सत्यवादी हैं और क्या वे झूठी निन्दा नहीं करते हैं? इसपर बुद्धने जवाब दिया कि यह सच नहीं है। तीन तरहसे मांस नहीं लेना चाहिये। यदि वह उस मानवने तय्यार करते हुए देखा हो या सुना है या ऐसी शंका हो कि उसीके लिये तय्यार किया गया है। यदि एक साधु किसी ग्रामका निमन्त्रण मानकर भिक्षाके लिये जाता है वह यह नहीं खयाल करता है कि यह गृहस्थ मुझे बढ़िया भोजन दे व कैसा दे। उसे जो कुछ भोजन मिलता है उसको वह विना मोहके खा लेता है। क्या ऐ जीवक! वह उस समय यह खयाल करता है कि मैं अपनी या दूसरोंकी या दोनोंकी हिंसा करता हूं। ऐ स्वामी! वास्तवमें नहीं। क्या वह निर्दोष भोजन नहीं लेता है? ऐ स्वामी! जरूर निर्दोष लेता है। यही बात विनयसे कही

है । एक दफे जैन सेनापति सींहके यहां बुद्धने भोजन किया तब यह बाजारोंमें खबर हुआ कि सींहने बुद्धके लिये बैलका वध कराया है। विनयमें लिखा है कि मानवका, हाथीका, घोड़ेका, कुत्तेका व कुछ जंगली जानवरोंका मांस न खाओ। मच्छके मांसकी मनाई नहीं है। इत्यादि।

पाली पुस्तकोंमें एक दो जगह ऐसा कथन कर दिया है कि गौतंम बुद्धने मांस खाया। यह कहांतक ठीक है सो विचार योग्य है।

बुद्धचर्या पृ० १४८ सीहसुत्त अ० नि० ८: १: २: २ से ऐसा झलकता है कि वैशालीका जैन सेनापति सिंह था उसने बुद्धको मांसका भोजन कराया। नोट—वह बात बिलकुल असंभव है कि एक जैनधर्मको माननेवाला राजाका मंत्री मांसका भोजन करावे। न तो यह समझमें आता है कि स्थावर व त्रस सर्व जीव मात्रके दयाका उपदेश करनेवाले बुद्ध मांसाहार स्वीकार करें। ऊपर यह भी दिखाया गया है कि बुद्ध ऐसे दयावान थे कि रात्रिको भी भोजन नहीं लेते थे व साधुओंको भी रात्रि भोजनकी मनाई की थी।

बुद्धचर्या पृ० ४३३ चुल्लवग्ग ७ देवदत्त विद्रोह—

इसमें यह कथन है कि देवदत्तने बुद्धसे कहा कि जो जिंदगीभर मछली मांस न खाये उसे संघमें स्वीकार किया जावे तब भ० गौतमने कहा—" अदृष्ट, अश्रुत व अपरि शङ्कित इन तीन कोटिसे परिशुद्ध मांसकी भी मैंने अनुज्ञा दी है।"

नोट—यह वचन कहांतक ठीक है यह विचारने योग्य है बुद्धचर्या पृ० ५३९ महापरि निब्बाणसुत्त दी० नि० २--३।

(१६) यहां लिखा है कि गौतम बुद्धने अन्त समय पखरमें चुन्द सोनारके वहांका सुकर मद्दव ग्रहण किया। इस शब्दका अर्थ कोई शूकर पशुका मांस करते हैं कोई नर्म चावलको गोरसके साथ पका हुआ ऐसा अर्थ करते हैं। बुद्धचर्याभरमें मांस सम्बन्धी कथन इतना ही आया है।

(Sacred book of Budhist Vol. III Rys Davids Digha Nikaya P. II (1910) to *Page 110*-AtVesali-he had finished eating the rice.

वैशालीमें बुद्धने भातका भोजन किया ।

Page 138-Now when the exalted one had eaten the rice prepared by Chunda the worker in metals, there fell upon him a dire sickness, the disease of dysentry and sharp pain came upon him, even unto death".

भावार्थ-जब गौतम बुद्धने चुंदा सुनारका तैयार किया हुआ भात खालिया तब उनको पेचिसकी भारी बीमारी होगई जो मरण-पर्यंत कष्टदायक रही ।

नोट—यहां सुकर मद्दवका अर्थ भात ही किया है और कहीं बुद्ध साहित्यमें यह नहीं पाया गया कि बुद्धने या उनके शिष्योंने मांस मछलीका या अन्यका खाया हो ।

पाली पुस्तकोंमें जब मांसाहारमें सशंकित कथन है तब बौद्धोंके प्राचीन संस्कृत साहित्यमें मांसका बिलकुल निषेध है । एक लंका-वतार सूत्र है जिसको Bunyin nanjid M. A. (oxen) D. litt. Otani university Kyoto (Japan)ने १९२३में संस्कृतमें मुद्रित कराया है । इसका प्रथम चीनी भाषामें उल्था मध्यभारतके किसी गुणभद्रने सन् ४४३ में किया था व दूसरा भारतके बोधिरुचिने चीनामें उल्था सन् ५१३ में किया था व भारतके शिक्षानंदने इसीका चीनामें उल्था सन् ७०० में किया था ।

इसमें एक आठवां अध्याय **मांसभक्षणपरिवर्तो** नामका है । इसको पढनेसे यह पूर्ण रूपसे सिद्ध होता है कि बुद्धके अनुयायी किसी भी गृहस्थ या साधुको मछलीका व अन्य कोई पशुका मांस कभी भी नहीं लेना चाहिये । ऐसी स्पष्ट आज्ञा है । इस अध्यायमेंसे कुछ संस्कृत वाक्य यहां देकर उल्था किया जाता है—

"देशयतु मे भगवांस्तथागतोऽर्हन् सम्यक् संवुद्धो मांसभक्षणे गुणदोषं येनाहं चान्ये च बोधिसत्वा महासत्वा अनागतप्रत्युत्पन्नकाले सत्वानां कुत्पादसत्वा गति वासना वासितानां मांसभोजनगृद्धाणां रस तृष्णा प्रहाणाय धर्मं देशयाम ।

भावार्थ–भगवान् तथा गत अर्हन् सम्यक्ज्ञाता हमको मांस भक्षणके गुणदोष उपदेश करें जिससे मैं व अन्य बौद्धमतानुयायी वर्तमानमें या भविष्यकालमें मांस भोजनकी वासनासे वासित प्राणियोंको उनकी तृष्णाके नाशके लिये धर्मका उपदेश कर सकें ।

"भगवांस्तस्यैतदवोचत् । अपरिमितैर्महामते कारणैर्मांसं सर्वमभक्ष्यं कृपात्मनो बोधिसत्वस्य तेभ्यस्तूपदेशमात्रं वक्ष्यामि"

भावार्थ–भगवानने उससे ऐसा कहा–हे महामते ! अनगिनती कारणोंसे सर्व मांस दयावान बौद्धानुयायीके लिये अभक्ष्य है, उनहीके लिये उपदेश मात्र कहता हूं ।

(१) इह महामते अनेन दीर्धेणाध्वना संसरतां प्राणिनां नास्त्यसौ कश्चित्सत्वः सुलभरूपो यो न माताभूत्पिता वा भ्राता वा भगिनी वा पुत्रो वा दुहिता वा अन्यतरान्तरो वा स्वजनबन्धुबंधूभूतो वा तस्यान्यजन्मपरिवृत्ताश्रयस्य मृगपशुपक्षियोन्यन्तर्भूतस्य बंधोः बंधूभूतस्य वा सर्वभूतात्मभूतानुयागन्तुकामेन सर्वजन्तुप्राणिभूतसंभूतं मांसं कथमिव भक्ष्यं साद्धुद्धर्मकामेन बोधिसत्वेन महासत्वेन ।

भावार्थ–हे महामते ! इस अनादि संसारमें भ्रमण करते हुये प्राणियोंमेंसे ऐसा कोई नहीं है जो कभी माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री या अन्य कोई अपना स्वजन बन्धु न हुआ हो । वही अन्य जन्मोंमें घूमता हुआ मृग, पशु या पक्षी योनिमें जन्म लेकर अपना भाई बंधु ही हैं । जो सर्व प्राणियोंको अपने समान जाननेवाला है वह

इन सर्व प्राणियोंके वधसे उत्पन्न हुए मांसको कैसे भक्ष्य समझेगा ? बौद्धानुयायी छोटे या बड़े सबके लिये यह कैसे भक्ष्य होगा ?"

(२) " श्वखरोष्ट्राश्वबलीवर्दमानुषमांसादीनि हि महामते लोकस्याभक्ष्याणि मांसानि तानि च महामते वीथ्यन्तरेष्वौरभ्रिका भक्ष्याणीति कृत्वा मूल्यहेतोर्विक्रीयंते यतस्ततोपि महामते मांसमभक्ष्यं बोधसत्वाय।"

कुत्ता, गधा, ऊँट, घोड़ा, बैल व मनुष्य आदि प्राणियोंके मांस लोकमें जब अभक्ष्य हैं तब गलियोंमें उन्हीको मेढ़ोंका मांस भक्ष्य है ऐसा करके मूल्यके लिये विक्रय किया जाता है इसलिये भी हे महामते ! एक बौद्धके लिये मांस अभक्ष्य है।

(३) "शुक्रशोणितसंभवादपि शुचिकामतामुपादाय बोधिसत्वस्य मांसमभक्ष्यं। "

भावार्थ–यह मांस वीर्य और रुधिरसे उत्पन्न होता है इसलिये पवित्रताको चाहनेवाले बौद्धके लिये मांस अभक्ष्य है।

(४) उद्वेजनकरत्वादपि महामते भूतानां मैत्रीमिच्छतो योगिनो मांसं सर्वमभक्ष्यं बोधिसत्वस्य। तद्यथापि महामते डोम्बचांडालकैवर्तादीच्छपिशिताशिनः सत्वान् दूरत एव दृष्ट्वा श्वानः प्रभयंति भयेन मरणप्राप्ताश्चैकेभवन्त्यस्यानपि मारयिष्यन्तीति, एवमेव महामतेऽन्येऽपि खभूजलसंश्रितानसूक्ष्मजन्तवो ये मांसाशिनो दर्शनाद्दूरादेव वटुना घ्राणेनाध्राय गन्धं राक्षसस्येव मानुषाद्द्रुतमुपसर्पयन्ति मरणसंदेहाश्चैके भवन्ति। "

भावार्थ–यह भय उत्पन्न करानेवाला है। इस हेतुसे भी महामते ! सर्व प्राणियोंके साथ मैत्री चाहनेवाले बौद्ध योगीको सर्व मांस अभक्ष्य है। जैसे डोम चांडाल मछलीमार मांसाहारी मानुषोंको दूरसे ही देखकर कुत्ते डर जाते हैं, भयसे मरतक जाते हैं, उनको होता है कि अपनेको मारेंगे, इसी तरह हे महामते ! अन्य जो आकाशगामी, पृथ्वीगामी, जलगामी छोटे जंतु हैं वे मांसाहारीको दूरसे देखकर व

अपनी नाशिकाके द्वारा उनकी गंध जानकर राक्षसके समान मनुष्यको जानकर मरणके संदेहसे शीघ्र भाग जाते हैं।

"अनार्यजनजुष्टं दुर्गन्धमकीर्तिकरत्वादपि महामते आर्यजन विवर्जितत्वात्तु मांसमभक्ष्यं बोधिसत्वस्य, ऋषिभोजनाहारोहि महामते आर्यजनो, न मांसरुधिराहार इत्यतोऽपि बोधिसत्वस्य मांसमभक्ष्यं।"

यह मांस दुर्गन्धमय है, अपयशका कारक है, म्लेच्छोंद्वारा सेवित है, आर्यजनोंके द्वारा वर्जनीय है। ऐसा मांस बौद्धानुयायीके लिये अभक्ष्य है। आर्यजन ऋषियोंके भोजनके समान भोजन करते हैं, मांस रुधिरका आहार नहीं करते हैं। इसलिये भी बौद्धको मांस अभक्ष्य है।

(६) "बहुजनचित्तानुरक्षणतयाप्यपवादपरिहारं चेच्छतः शासन्य महामते मांस मक्ष्यं कृपात्मनो बोधिसत्वस्य। तद्यथा महामते भवन्ति लोके शासनापवादवक्तारः किंचित्तेषां श्रामण्यंकुतो वा ब्राह्मण्यं यन्नामैते पूर्वर्षिभोजनान्यपास्य क्रत्पादा इवामिषाहारा परिपूर्ण कुक्षयः खभूमि-जलसंश्रितानसूक्ष्मांस्त्रासयंतो जन्तून्समुत्रासयन्त इमं लोकं समन्ततः पर्यटन्निहतमेषां श्रामण्यं ध्वस्तमेषां ब्राह्मण्यं नास्त्येषां धर्मो न विनय इत्यनेकप्रकारप्रतिहतचेतसः शासनमेवापवदन्ति।"

भावार्थ—बहुत जनोंके चित्तको रक्षण करते हुए अपवाद न होने पावे, ऐसी इच्छा करनेवाले दयालु बौद्धको मांस अभक्ष्य मानना चाहिये। जैसे इस लोकमें कितने ही शासनका अपवाद करनेवाले होते हैं। वे कहते हैं कि उनका साधुपना क्या, उनका ब्राह्मणपना क्या, जो पूर्व ऋषियोंके योग्य भोजनको छोड़कर मांसाहारियोंके समान मांस खाते हैं। मांससे पेट भरते हैं। वे आकाश, भूमि, जलपर रह-नेवाले छोटे जंतुओंको त्रास देते हैं। जंतुओंको कष्ट देते हुए इस लोकमें घूमते हैं उनका साधुपना नष्ट है, उनका ब्राह्मणपना भ्रष्ट है न उनमें धर्म है, न विनय है। इस तरह अनेक तरहसे शासनका अपवाद करते हैं।

(७) मृतशवदुर्गंधप्रतिकूलसामान्यादपि महामते मांसमभक्ष्यं बोधिसत्वस्य। मृतस्यापि महामते मनुष्यस्य मांसे दह्यमाने तदन्य प्राणिमांसे च न कश्चिद्गंधविशेषः। सममुभयमांसयोर्दह्यमानयोर्दौर्गन्ध्य-मतोऽपि महामते शुचिकामस्ययोगिनः सर्वं मांसमभक्ष्यं बोधित्वस्य।"

भावार्थ–हे महामते! मुर्देकी प्रतिकूल दुर्गंधकी समानता होनेसे भी बौद्धको मांस अभक्ष्य हैं। हे महामते! मनुष्यके मुर्दे मांसको जलानेपर कोई गंधका अंतर नहीं रहता है, दोनों ही मांसको जलाते हुए दुर्गंध समान होगी। इसलिये जो पवित्रताका चाहनेवाला बौद्ध योगी है उसको सर्व मांस अभक्ष्य है।

(८) "योगाचाराणां....विद्याधराणां....विद्यासाधनमोक्षविघ्नकर-त्वान्महायानसंप्रस्थितानां कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां च सर्वयोगसाध-नान्तरायकरमित्यपि समनुपश्यतां महामते स्वपरात्मार्हतकामस्य मांसं सर्वमभक्ष्यं बोधिसत्वस्य।"

भावार्थ–योगीगणोंके व विद्याधरोंके विद्यासाधनमें व मोक्षमें विघ्नकारी होनेसे महायान पर चलनेवाले कुल पुत्र व कुल पुत्रियोंको सर्व योगके ध्यानमें विघ्नकारी हैं ऐसा देखनेवाले आत्महितके इच्छुक बौद्धको सर्व मांस अभक्ष्य है।

(९) "क्रिमिजन्तुप्रचुरकुष्ठनिदानकोष्ठश्च भवति व्याधिबहुलं न च प्रतिकूलसंज्ञां प्रतिलभते। पुत्रमांस भैषज्यवदाहारं देशयंश्चाहं महामते कथमिव नार्यजनसेवितमार्यजनविवर्जितमेवमनेकदोषावहमनेकगुणविव-र्जितमऋषिभोजनप्रणीतमकल्प्यं मांसरुधिराहारं शिष्येभ्योऽनुज्ञापयामि।"

भावार्थ–कीड़े जंतु बहुत कोढ़ व कोष्टका रोग आदि अनेक रोग मांसाहारीके होते हैं। पुत्रके मांसके समान (मांस) आहारको बताता हुआ मैं किस तरह म्लेच्छोंसे सेवित व आर्योंसे निषेध योग्य अनेक दोषोंको देनेवाला, अनेक गुणोंसे रहित, ऋषि भोजनके अयोग्य न लेने योग्य मांस व रुधिरके आहारकी आज्ञा देसकता हूं?

(१०) " अनुज्ञातवान्पुनरहं महामते पूर्वर्षिप्रणीतभोजनं यदुत शालियवगोधूममुद्गमाषमसूरादिसर्पितैलमधुफाणितगुडखण्डमत्सपिंडिकादिषु समुपद्यमान भोजनं कल्प्यमिति कृत्वा। "

भावार्थ–मैं हे महामते यह आज्ञाकर चुका हूं कि पूर्व ऋषि प्रणीत भोजन चावल, जौ, गेंहूं, मूग, उरद, मसूरादि, घी, तेल, दूध कची शकर, गुड, खांड, मिश्री आदिसे उत्पन्न लेना योग्य है।

भूतपूर्व महामते अतीतेऽध्वनि राजाऽभूत् सिंहसौदासो नाम। स मांसभोजनाहारातिप्रसंगेन प्रतिसेवमानो रसतृष्णाध्यवसानुपरमतया मांसानि मानुष्याण्यपि भक्षितवान्। तन्निदानं च मित्रामात्यज्ञाति बन्धुवर्गेणापि परित्यक्त: प्रागेव पौरजानपदैः स्वराज्यविषयपरित्यागाच्च महद्व्यसनमासादितवान् मांसहेतोः।"

भावार्थ–हे महामते! पूर्वकालमें एक राजा सिंह सौदास होगये हैं, जिसको मांसाहारकी अति लोलुपता होगई थी। मांसकी तृष्णावश वह मनुष्योंका मांस खाने लगा। इस लिये उसके मित्र मंत्री जातिबन्धु आदिने उसे त्याग दिया। पहले ही नगरवासियोंने अपने राज्यसे निकाल दिया। वह मांसके हेतु बहुत कष्टोंको पाता हुआ।

नोट–यह सिंह सौदासकी कथा दिगम्बर जैनोंके पद्मपुराणमें इसी भांति लिखी है—

" इहैव च महामते जन्मनि सप्तकुटीरकेऽपि ग्रामे प्रचुरमांस लौल्यादतिप्रसंगेन निषेवमाना मानुषमांसादाघोराडाकाडाकिन्यश्च संजायन्ते। जातिपरिवर्ते च महामते तथैव मांसरक्षाध्यवसानतया सिंहव्याघ्रद्वीपिवृकतरक्षुमार्जारजंबूकोलूकादिप्रचुरमांसादयोनिषु विनिपात्यन्ते।"

भावार्थ–इसी जन्ममें प्रचुर मांसकी लोलुपतासे मनुष्य मांसके खानेवाले अघोर डाक डाकनी होजाते हैं। फिर मरनेपर उसी ही मांस रसके संकल्पके कारण सिंह, वाघ, चीता, कौआ, भेडिया व विलाव स्यार, उल्लू आदि घोरतर योनियोंमें [

" यदि च महामते मांसं न कथंचन केचन भक्षयेयुर्न तन्निदानं घातेरन् । मूल्यहेतोर्हि महामते प्रायः प्राणिनो निरपराधिनो वध्यन्ते स्वल्पादन्यहेतोः, कष्टं महामते रसतृष्णायामतिसेविना मांसानि मानुष्याण्यपि मानुषैर्भक्ष्यन्ते किंपुनरितरमृगपक्षिप्राणिसंभूतमांसानि प्रायो महामते मांसरसतृष्णार्तैरिदं तथा जालयंत्रादिर्रं मोहपुरुषैश्चशाकुनि कौरभ्रककैवर्तादिभिः स्थलचरजलचरा प्राणिनोऽनपराधिनोऽनेकप्रकारं मूल्यहेतोर्विशसन्ति ।"

भावार्थ—मांसको न कभी खाना चाहिये और न उसके लिये घातना चाहिये । मूल्यके लिये ही प्रायः निरपराधी प्राणी वध किये जाते हैं अन्य हेतुसे कम। यह बड़ा कष्ट है कि रसकी तृष्णासे, मांसकी लोलुपतासे मनुष्य मनुष्यको खाने लगते हैं तो फिर मृग पक्षी आदिके मांसकी तो बात ही क्या । मांस खानेवालोंके लिये चिड़ीमार, भेड़-मार, मछली मार, जाल व यंत्रोंसे पक्षी, मृग, मत्स्य आदि निरपराध प्राणियोंकी अनेक प्रकार मात्र पैसेके लिये हिंसा करते हैं ।"

" न च महामतेऽकृतकमकारितमसंकल्पितं नाम मांसं कल्प्यमस्ति यदुपादायानुजानीयं श्रावकेभ्यः । भविष्यति तु पुनर्महामतेऽनागतेऽध्वनि ममैव शासने प्रव्रजित्वा शाक्यपुत्रीयत्वं प्रतिजानाना: काषायध्वजधारिणो मोहपुरुषा मिथ्यावितर्को पहतचेतसो विविधविनयकल्पवादिनः सत्कायदृष्टियुक्ताः रसतृष्णाध्यवसितास्तां मांसभक्षणहेत्वाभासां ग्रंथयिष्यति । मम चाभूताख्यानं दातव्यं मनस्यन्ते तत्तदर्थोत्पत्ति निदानं कल्पयित्वा वक्ष्यन्ति । इयं अर्थोत्पत्तिरस्मिन्निदाने भगवता मांसभोजनमनुज्ञातं कल्प्यमिति । प्रणीतभोजनेषु चोक्तं स्वयं च किल तथागतेन परिभुक्तमिति । न च महामते कुत्रचित्सूत्रे प्रतिसेवितव्यमित्यनुज्ञातं प्रणीतभोजनेषु वा देशितं कल्प्यमिति ।

भावार्थ—हे महामते ! कोई मांस अकृत अकारित व असंकल्पित

लेने योग्य नहीं है जिसे लेकर मैं श्रावकोंको आज्ञा करूं। हे महामते! भविष्यकालमें मेरे ही शासनमें ऐसे होंगे जो साधु दीक्षा लेकर शाक्य पुत्रकी आज्ञा माननेवाले होकर कषाय बीजकी ध्वजा धारनेवाले होकर मोही पुरुष मिथ्या तर्क चित्तमें उठाकर आचारके विविध भेद कहेंगे। शरीरमें ही जिनकी दृष्टि होगी रसकी तृष्णामें रागी होंगे वे मांस भक्षणके लिये खोटे हेतुओंको गूँथ लेंगे। जो बात मैंने नहीं कही है उसे वे मानेंगे व उससे मांसाहार पुष्ट हो ऐसी बात कहेंगे। इसी कारण भगवानने मांसकी आज्ञा दी है ऐसी कल्पना करेंगे। भक्ष्य भोजनोंमें मांस कहा है व स्वयं भगवानने मांस खाया है। परन्तु हे महामते! मैंने किसी भी सूत्रमें मांसको सेवने योग्य नहीं कहा है न आज्ञा दी है न उत्तम भोजनोंमें कहा है न लेने योग्य कहा है।

"न हि महामते आर्यश्रावकाः प्राकृत मनुष्याहारमाहरन्ति कुत एव मांसरुधिराहारमकल्प्यं। धर्माहारा हि महामते मम श्रावकाः प्रत्येकबुद्धा बोधिसत्वाश्च नामिषाहाराः प्रागेव तथागताः। धर्मकाया हि महामते तथागता धर्माहारस्थितयो नामिषकाया न सर्वामिषाहार स्थितयो वान्तसर्वभवोपकरणतृष्णैषणावासनासर्वक्लेशदोषवासनापगताः सुविमुक्तचित्तप्रज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः सर्वसत्वैकपुत्रकसमदर्शिनो महाकारुणिकाः। सोऽहं महामते सर्वसत्वैकपुत्रकसंज्ञी सन् कथमिव स्वपुत्रमांसमनुज्ञास्यामि परिभोक्तुं श्रावकेभ्यः कुत एव स्वयं परिभोक्तुम्। अनुज्ञातवानस्मिन्श्रावकेभ्यः स्वयं वा परिभुक्तवानिति महामते नेदं स्थानं विद्यते—"

भावार्थ—हे महामते! आर्य श्रावकगण स्वाभाविक मनुष्यका आहार भी नहीं लेते हैं तब फिर वे असेवने योग्य मांस रुधिरका आहार कैसे लेंगे। हे महामते! मेरे श्रावक धर्मपर चलनेवाले हैं। ऐसे ही प्रत्येक बुद्ध व बोधिसत्व हैं, मांसाहारी नहीं हैं। पहले भी तथागत ऐसे ही थे। हे महामते! तथागत धर्मरूप शरीर धारते हैं

उनकी स्थिति धार्मिक आहारसे है, उनका शरीर मांसाहारी नहीं है। सर्व प्रकारके मांसको वे नहीं लेते हैं, उन्होंने सर्व संसारकी वस्तुओंकी तृष्णाकी वासनाका त्याग कर दिया है, वे सर्व क्लेशकारी दोषकी वासनासे दूर हैं। वैरागवान व प्रज्ञावान हैं, सर्वज्ञ है सर्वदर्शी हैं। सर्व प्राणियोंको एक पुत्रवत् देखनेवाले हैं। महा दयावान है। हे महामते! सो ही मैं सर्व प्राणी मात्रपर पुत्रकी बुद्धि रखनेवाला कैसे अपने ही पुत्रके मांसकी आज्ञा दूंगा। श्रावकोंको खानेके लिये व कैसे स्वयं खाऊंगा। मैंने श्रावकोंको आज्ञा दी व स्वयं मांस खाया है। महामते! इसका कोई स्थान नहीं है। उसीके कुछ उपयोगी श्लोक–

मद्यं मांसं पलांडुं च न भक्षयेयं महामुने।
बोधिसत्वैर्महासत्वैर्माषादिवजिनपुंगवैः ॥ १ ॥
मांसानि च पलांडूंश्च मद्यानि विविधानि च।
गृंजनं लशुनं चैव योगी नित्यं विवर्जयेत् ॥ ५ ॥
लाभार्थं हन्यते सत्वो मांसार्थं दीयते धनं।
उभौ तौ पापकर्माणौ पच्येते रौरवादिषु ॥ ९ ॥
हस्तिकक्ष्ये महामेघे निर्वाणांगुलिमालिके।
लंकावारसूत्रे च मया मांसविवर्जितम् ॥ १६ ॥
यथैव रागो मोक्षस्य अन्तरायकरो भवेत्।
तथैव मांसमद्याद्या, अन्तरायकरो भवेत् ॥ १० ॥
तस्मान्न भक्षयेन्मांसमुद्वेजनकरं नृणान्।
मोक्षधर्मविरुद्धत्वादार्याणामेष वैध्वजः ॥ २४ ॥

भावार्थ–हे महामते! बौद्धमती महाबौद्धमती किसीको भी मांस, मदिरा, प्याज नहीं खाना चाहिये ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है। १॥ मांस, प्यांज, नाना प्रकारकी मदिरा, गाजर, लशुन योगीको सदा निषेध हैं। ५॥ जो प्राणी लोभके लिये प्राणीको मारते हैं व मांसके

लिये धन देते हैं। दोनों ही पापी हैं वे रौरवादि नरकोंमें जांयगे ॥९॥ हस्तिकक्ष सूत्रमें, महामेघमें, निर्वाणिगुलिमालिकामें व लंकावतार सूत्रमें मैंने मांसका निषेध किया है ॥११॥ जैसे मोक्षके लिये राग विघ्नकारी है वैसे मांस मद्यादि विघ्नकारी है ॥२०॥ इसलिये मांसको नहीं खाना चाहिये। यह प्राणियोंको भयोत्पादक है। यह मोक्ष धर्मके विरुद्ध है। मांस न खाना यही आर्योंकी ध्वजा है ॥ २४ ॥

नोट यह सूत्र भी बहुत पुराना है। मालूम होता है जिस लंकामें पाली सूत्र पहली शताब्दीमें रचे गए और उसमें मांसाहारका पोषण किसी युक्तिसे किया गया तब उसीके उत्तरमें यह सूत्र लिखा गया मालूम होता है। इससे बिलकुल मांसका निषेध है। किसी बौद्धको नहीं खाना उचित है। जो लोग ऐसा कहते हैं कि हम नहीं मारते हैं हम तो बाजारसे लेआते हैं हम तो हिंसक नहीं है, उनका कहना इस सूत्रसे खंडन होजाता है। जब वे मांसके बदलेमें धन देते हैं तब वे परोक्षरूपसे (indirectly) हिंसक ही हुए। वे कसाई व मछलीमार इसलिये मारते हैं कि हमारा मांस बिकता है, लोगोंके काममें आता है। उनको जब द्रव्य मिलता है तब वे बराबर पशु घात करते हैं, उस घातके उत्तेजक वे ही होते हैं जो मांस खरीदते हैं। जो साधु ऐसा कहते हैं कि हमको यदि कोई भिक्षामें देदेगा हम लेलेंगे, हमने मांसका संकल्प नहीं किया, हम हिंसाके भागी न होंगे, उनको यह विचारना चाहिये कि जो वस्तु स्वीकार कीजाती है उसमें अपनी पसंदगी आजाती है। यह पसंदगी ही श्रावक दातारोंके मनमें यह श्रद्धा जमाती है कि जब साधु खालेते हैं तब हम यदि खालेंगे तो क्या हर्ज है अतएव वे स्वयं मांसाहारी होते हुए मांसके लिये हिंसा करानेवाले होते हैं। यदि साधुको कोई मानवका मांस दे व कुत्तेका दे तो वे नहीं लेंगे, उसी तरह मांस मात्रको न लेना ही हिंसाके पूर्ण दोषसे बचना है। मांसका लेना प्राह्य भोजनमें आजाता है, जब कि वह सर्वथा लेने योग्य नहीं है जैसा

लंकावतार सूत्रमें कहा है। यदि कोई स्वदेश हितके लिये स्वदेशी वस्त्रादिका व्यवहार करता हो और परदेशी वस्त्रादिका त्याग करता हो तो उसका अभिप्राय यही है कि परदेशीको उत्तेजन मिलेगा तो मेरा देश भूखा रहेगा। यदि कोई देशभक्त साधुको परदेशी वस्त्र दिया जावे जो उसके लिये नहीं बना है न उसमें उसका संकल्प है तौभी वह नहीं ग्रहण करेगा। क्योंकि परदेशी वस्त्रका स्वीकार देश हितमें बाधक होगा। इसी तरह मांसका स्वीकार पशु हिंसाके प्रचारमें सहायक होगा।

सीलोनमें कई साधु ऐसा समझकर कि मांस त्रिकोटि शुद्ध है भिक्षामें लेकर खाते हैं, कई साधु नहीं भी खाते हैं। परन्तु सीलोन ब्रह्मा, श्याम, जिसमें यह भ्रम फैला है कि हम न मारे फिर मांस चाहे जैसे मिले ले लेवें तो हमें हिंसाका दोष नहीं है, परन्तु यह भाव ठीक नहीं है। उन्हींके लिये बाजारवाले भेड, बकरी, मुरगी, मछली मारते हैं और धनके लोभसे मांस बेचते हैं, लेनेवाले अवश्य उस हिंसाकी अनुमोदनाके भागी होंगे।

विद्यालँकार कालेजमें एक चीना गृहस्थ Mr. Wong Mow Lam 19 Harel Road Shanghai ठहरे हुए थे उनसे बात करनेपर मालूम हुआ कि चीन, जापानवाले लंकावतार सूत्रको मानते हैं। सम्पूर्ण बौद्धके मठोंमें नियमसे मांसका व्यवहार नहीं होता है। गृहस्थ भी लेना बुरा समझते हैं, बहुतसे नहीं खाते हैं Tioist ताऊ मतवाले बिलकुल शाकाहारी हैं।

ऐसा मालूम होता है कि लंकामें मछलीका अधिक रिवाज होनेसे पालीमें ऐसा निकाल रख लिया गया कि साधुको मांस भिक्षामें मिले तो लेलेवे तब ही यह लंकावतार सूत्र रचा गया। जिसमें पूर्णरूपसे हरएक बौद्धको मांसाहारकी व मछलीके आहारकी पूर्ण मनाई है। बौद्धानुयायी सज्जनोंको लंकावतार सूत्रपर ध्यान देकर मांसका प्रचार

रोकना उचित है। साधुओंको तो नियमसे न लेना चाहिये और मांसाहार हिंसाका कारण है ऐसा उपदेश गृहस्थोंको करना चाहिये।

जैन शास्त्रोंसे कुछ अहिंसा वर्णन।

(१) समयसारमें कहते हैं—

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारे हि भाव मारे हि।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ २७४ ॥

भावार्थ–हिंसाके भावसे पाप बंध हो जायगा चाहे जीव मारे जावें या नहीं। यहीं बंधका संक्षेप स्वरूप निश्चयसे जीवोंके लिये कहा गया है।

(२) तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

" प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा " ।३।७

भावार्थ–कषाय सहित मन वचन काय योगोंके द्वारा भाव और द्रव्य प्राणोंको बिगाड़ना सो हिंसा है। भाव प्राण आत्माके ज्ञान सुख शांति आदि हैं। द्रव्य प्राण कुल १० होते हैं। स्थावर एकेन्द्रिय वनस्पति आदिके चार, द्वेन्द्रियके ६, तेन्द्रियके ७, चौन्द्रियके ८, मनरहित पंचेन्द्रियके ९, व मन सहित पंचेन्द्रियके १० होते हैं। ऐसा वर्णन दूसरे अध्यायमें अंतमें किया गया है।

(३) पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ग्रन्थमें अहिंसाका बहुत विस्तारसे स्वरूप लिखा हुआ है—

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणां।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥ ४३ ॥
आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय ॥ ४२ ॥
अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

कृतकारितानुमननैर्वाक्कायमनोभिरिष्यते नवधा ।
औत्सर्गिकी निवृत्तिर्विचित्ररूपापवादिकी त्वेषा ॥ ७६ ॥
धर्ममहिंसारूपं संश्रण्वन्तोऽपि ये परित्यक्तुम् ।
स्थावरहिंसामसहास्त्रसहिंसां तेऽपि मुंचतु ॥ ७५ ॥
स्तोकैकेन्द्रियघाताद्गृहिणां सम्पन्नयोग्यविषयाणां ।
शेषस्थावरमारणविरमणमपि भवति करणीयम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ—जो कषाय अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभसे मलीन मन, वचन कायके योगोंके द्वारा भावप्राण व द्रव्यप्राणोंका बिगाड़ना सो वास्तवमें हिंसा है ॥४३॥ जहां आत्माके शुद्ध भावोंकी हिंसा हो वहां सर्वत्र हिंसा है। अनृत वचन चोरी कुशील परिग्रह आदि हिंसाके ही उदाहरण हैं। क्योंकि अपने भावोंमें विकार होता है ॥४२॥ अपनेमें रागद्वेषादिका नहीं प्रगट होना सो अहिंसा है और उन्हींका प्रगट होना सो ही हिंसा है, यह जिन आगमका संक्षेप है ॥ ४४ ॥ मन, वचन, काय द्वारा करना, मन, वचन, काय द्वारा कराना, मन, वचन, काय, द्वारा अनुमोदना करना इस तरह हिंसा नौ प्रकारसे होती है। नौ तरह त्यागना तो पूर्ण त्याग है। इससे कम नानाप्रकार त्यागना सो अपूर्ण या अपवादरूप त्याग है ॥ ७६ ॥ जो अहिंसा धर्मको सुनकर पूर्ण हिंसाको न छोड़ सकें वे स्थावर हिंसाको न छोडते हुए त्रस हिंसाको तो छोड़ो ॥ ७५ ॥ योग्य सामग्रीके धारक गृहस्थ थोड़ी एकेन्द्रियकी हिंसा करते हुए शेष स्थावर जीवोंकी हिंसासे अवश्य बचें।

विदित हो कि जो साधु हैं व आरम्भ त्यागी श्रावक हैं वे स्थावर व त्रस दोनों प्रकारके जीवोंकी रक्षा कर सकते हैं। परन्तु जो गृहारम्भ करनेवाले श्रावक हैं वे संकल्पी हिंसा तो त्याग सकते हैं परन्तु आरम्भी नहीं त्याग कर सकते।

जहां कुछ प्रयोजन न निकले व वृथा ही पशुओंको कष्ट पहुंचे वह संकल्पी हिंसा है। जैसे धर्मके नामसे पशुकी बलि करना, शिकार

खेलना, मांसाहारके लिये हिंसा करना, मौज शौकके लिये पशुओंको कष्ट देना।

आरंभी हिंसाके तीन भेद हैं—

(१) उद्यमी हिंसा—जो गृहस्थोंको असि कर्म (सिपाहीका रक्षक काम), मसि कर्म (लिखनेका), कृषि, वाणिज्य, शिल्प व विद्याकर्म (कला हुन्नर) इन छः तरहसे आजीविका करते हुए करना पड़ती है जैसे हल चलानेमें, सवारीपर चढ़नेमें गाड़ीपर भार ढोनेमें, मकान, वर्तन, शस्त्रादि बनानेमें।

(२) गृहारम्भी हिंसा—घरको साफ करने, पानी भरने, रसोई बनाने, कूप खुदाने, बाग लगाने व मकान बनवाने आदिमें होती है।

(३) विरोधी हिंसा—जो अपने, अपने कुटुम्ब, अपना धन, देश आदिकी रक्षा निमित्त जो विरोध करें उनको हटानेमें करनी पड़ती है, जब कोई दूसरा उपाय बाकी नहीं रहता है। जैसे डाकू लुटेरोंको हटानेमें बदमाशोंको व अपराधियोंको शिक्षा देनेमें, शत्रुसे युद्ध करनेमें। तीन तरहकी आरम्भी हिंसा साधारण आरम्भ करनेवाले गृहस्थियोंसे छूट नहीं सकती है तौभी वे वृथा न करें, यथाशक्ति कम करे, दयाभावसे वर्तन करें। साधु तो सर्व हिंसाके त्यागी होते हैं इसीसे पृथ्वी देखकर पैदल चलते हैं, रात्रिको गमन नहीं करते हैं। घासपर नहीं चलते हैं, वृक्षादि नहीं तोड़ते हैं।

(५) अमितगति श्रावकाचारमें कहा है—

हिंसा द्वेधा प्रोक्ताऽरम्भानारंभजत्वतोदऽक्षैः।
गृहवासतो निवृत्तो द्वेधापि त्रायते तां च॥ ६–६॥
गृहवाससेवनरतो मंदकषायः प्रवर्तितारम्भाः।
आरम्भजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम्॥ ७–६॥

भावार्थ—हिंसा दो प्रकारकी है—एक आरम्भ जनित दूसरी अनारम्भ जनित या संकल्पित। जो गृह त्यागी हैं वे दोनों ही तरहकी हिंसाको त्यागते हैं, जो गृही हैं वे मन्द कषायसे आरम्भमें प्रवर्तते हैं, वे निश्चयसे आरम्भ जनित हिंसाके त्यागनेको असमर्थ हैं। मंद कषायरूप कषायके उदयसे जो व्यापार आरम्भमें उपजे सो आरम्भ-जनित हिंसा है। विना ही प्रयोजन आप ही तीव्र कषायरूप हिंसा करना सो अनारम्भ जनित हिंसा है।

मांसाहार—अहिंसाके पालनेवालेको मांस नहीं खाना चाहिये।

(६) पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहते हैं—

न विना प्राणविघातान्मांसस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मांसं भजतस्तस्मात्प्रसरत्यनिवारिता हिंसा ॥ ६५ ॥
यदपि किल भवति मांसं स्वयमेव मृतस्य महिषवृषभादेः।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोतनिर्मथनात् ॥ ६६ ॥
आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥ ६७ ॥

भावार्थ—विना प्राणियोंके मारे मांस नहीं होता है इसलिये मांस खानेवालेके अवश्य हिंसा होती है ॥ ६५ ॥ यद्यपि स्वयं मरे हुए भैंस, बैलादिका भी मांस होता है तौभी नहीं खाना चाहिये क्योंकि उनमें उनके आश्रयसे पैदा होनेवाले अनेक जंतुओंकी हिंसा होगी ॥ ६६ ॥ मांसकी डली चाहे कच्ची हो, चाहे पक्की हो, चाहे पक रही हो उसमें उसी जातिके जन्तु निरंतर पैदा होते हैं जिस जातिके पशुका वह मांस होता है। नोट--इसीसे मांसमेंसे कभी दुर्गंध नहीं जाती है।

मदिरा भी अहिंसाव्रतीको नहीं पीना चाहिये। लिखा है पुरु०—

रसजानां च बहूनां जीवानां योनिरिष्यते मद्यम्।
मद्यं भजतां तेषां हिंसा संजायतेऽवश्यम् ॥ ६३ ॥

भावार्थ—मदिराके रसमें बहुतसे जंतुओंकी उत्पत्ति होती रहती है। इसलिये जो मदिरा पीता है वह अनेक जंतुओंकी अवश्य हिंसा करता है।

रात्रिभोजन सागरमें भी पुरु०में कहा है—

रात्रौ भुंजानानां यस्मादनिवारिता भवति हिंसा।
हिंसाविरतैस्तस्मात्यक्तव्या रात्रिभुक्तिरपि ॥ १२९ ॥

अर्कालोकेन विना भुंजानः परिहरेत् कथं हिंसां।
अपि बोधितः प्रदीपे भोज्यजुषां सूक्ष्म जंतूनाम् ॥ १३३ ॥

भावार्थ—रात्रिको भोजन करनेसे अवश्य हिंसा होती है। जो हिंसाके त्यागी हैं उन्हें रात्रिको भोजन भी छोड़ना चाहिये। सूर्यके प्रकाशके विना भोजन करनेसे हिंसाका त्याग नहीं होसक्ता, क्योंकि दीपक जलानेसे भी बहुतसे छोटे२ जंतु आकर भोजनमें गिर पड़ेंगे।

नोट—जैसे बौद्ध वाक्योंसे प्रगट है कि अहिंसाके लिये स्थावर व त्रसकी रक्षा करे, देखकर चले, घासको न रौंदे, रात्रिको भोजन न करे उसी तरह जैन शास्त्रोंमें कथन है। यदि मांसका प्रचार बौद्धोंके भीतरसे हटा दिया जावे तो बुद्ध धर्मकी शोभा यथार्थ प्रगट होजावे क्योंकि गौतम बुद्धके जो वाक्य हैं व जिससे वे प्राणीमात्रपर मैत्री-भाव सिखाते हैं उससे यह बिलकुल बोध नहीं होता है कि उनका उपदेश किसी भी तरह मांस लेनेका हो व स्वयं उन्होंने कभी मांस लिया हो। बुद्ध धर्मके विद्वानोंको पक्षपात छोड़कर इस विषयपर विचार करना चाहिये।

Chapter VI.

अध्याय छठा ।

जैन और बौद्धधर्मकी साम्यता क्यों?

गौतम बुद्धने २९ वर्षकी आयुमें घर छोड़ा तथा छः वर्ष तक भिन्न २ तपस्या की। फिर ३५ वर्षकी उम्रमें उन्होंने अपना मार्ग निश्चित करके पहले पहले बनारसमें उपदेश दिया। इस छः वर्षके भीतर बुद्धने दिगम्बर जैन मुनिका आचरण भी पाला जिसका कथन स्वयं बुद्धने किया है—

देखो मज्झिमनिकाय महासीहनाद सुत्त (१२)

इस सूत्रमें सारिपुत्रसे गौतम बुद्ध अपना पुराना हाल अपनी वृद्धावस्थामें कहते हैं:—

" अचेलको होमि....हत्थापलेखनो....नाभिहतं न उद्दिस्सकतं न निमंतणं सादियामि; सो न कुंभीमुखा पटिगण्हामि न कलोपि मुखा पटिगण्हामि, न एलकमंतरं न दंडमंतरं न मुसलमंतरं, न द्विन्नं भुंजमानानं न गब्भनिया, न पायमानया, न पुरिसंतरगताम्, न संकित्तिसु न यथ सा उपट्ठितो होति, न यथ मक्खिका संड संड चारिनी, न मच्छं न मांसं न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवामि सो एकागारिको वाहोमि, एकालोपिका, द्वागारिको होमि द्वालोपिको—सत्तागारिकोवा होमि सत्तालोपिको, एकाहं व आहारं आहारेमि द्वीहिकं व आहारं आहारेमि—सत्ताहिकम्पि आहारं आहारेमि। इति एयरूपं अद्धमासिकंपि परियाय भत्तभोजनानुयोगं अनुयुतो विहरामि....केसस्स मस्सुलोचको विहोमि केसयस्सु लोचनानुयोगं अनुयुत्तो—यावउद विन्दुम्हि पिमे दया पच्च पट्ठिताहोति। माहं खुद्दके पाणे विसमगते संघातं आयादेस्संति।

गाथा—

सो तत्तो सो सीनो एको भिंसनके वने।
नंगो न च अंग्गि असीनो एसनापसुतो मुनीति ॥

भावार्थ–मैं वस्त्ररहित रहा, मैंने आहार अपने हाथोंसे किया। न लाया हुआ भोजन लिया, न अपने उद्देश्यसे बना हुआ लिया, न निमंत्रणसे जाकर भोजन किया, न वर्तनसे खाया, न थालीसे खाया, न घरकी ड्योढीमें (within a threshold) खाया, न खिडकीसे लिया, न मूसलसे कूटनेके स्थानसे लिया, न दो आदमियोंको एकसाथ खाते हुए स्थानसे लिया, न गर्भिणी स्त्रीसे लिया, न बच्चेको दूध पिलानेवालीसे लिया, न भोग करनेवालीसे लिया, न मलीन स्थानसे लिया, न वहांसे लिया जहां कुत्ता पास खड़ा था, न वहांसे जहां मक्खियां भिनभिना रहीं थीं। न मछली, न मांस, न मदिरा, न सड़ा-मांड खाया, न तुसका मैला पानी पिया। मैंने एक घरसे भोजन किया सो भी एक ग्रास लिया, या मैंने दो घरसे भोजन लिया सो दो ग्रास लिये। इस तरह मैंने सात घरोंसे लिया सो भी सात ग्रास, एक घरसे एक ग्रास लिया। मैंने कभी १ दिनमें एक दफे, कभी दो दिनमें एक दफे, कभी सात दिनमें एक दफे लिया, कभी पन्द्रह दिन भोजन नहीं किया। मैंने मस्तक, डाढ़ी व मूछोंके केशलोंच किये। इस केशलोंचकी क्रियाको जारी रक्खा। मैं एक बूंद पानीपर भी दयावान था। क्षुद्र प्राणीकी भी हिंसा मुझसे न होजावे ऐसा सावधान था।

इस तरह कभी तप्तायमान कभी शीतको सहता हुआ भयानक वनमें नग्न रहता था, न आग तपता था। मुनि अवस्थामें ध्यानमें लीन रहता था।

नोट–ऊपर जितनी क्रियायें बतलाई हैं वे सब सिवाय निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैन) मुनिके और किसी भी मुनिचर्यासे नहीं मिलती हैं।

दिगम्बर जैनोंमें पुराना ग्रन्थ श्री वट्टकेर स्वामीकृत प्राकृतमें मूलाचार है जिसमें सर्व मुनिकी क्रिया ही वर्णित हैं। तथा वे ही क्रिया आजकल भी दि० जैन साधुओंमें प्रचलित हैं। नीचे हम उसी ग्रंथके कुछ वाक्य प्रमाणमें देते हैं—

मूलाचार—

पंचय महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छप्पि य अ वासया लोचो ॥ २ ॥
अचेलकमण्हाणं खिदिसयगमदंतघंसणं चेव।
ठिदिभोयरेण्यमत्तं मूलगुणा अट्ठवीसा दु ॥ ३ ॥

भावार्थ–साधुके अठाईस मूलगुण होते हैं—

५–महाव्रत–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह।

५–समिति–ईर्या, भाषा एषणा, आदाननिक्षेपण, प्रतिष्ठापणा (पहले कह चुके हैं)।

५–इंद्रिय निरोध।

६–आवश्यक–प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समता, स्तुति, वंदना, कायोत्सर्ग। १ केशलोच, १ अचेलकपना, १ स्नान न करना, १ भूमिशयन, १ दंतधोवन त्याग, १ खड़े होके भोजन, १ एक भुक्त=२८

लोचः–हस्तेन मस्तककेशश्मश्रूणाम् अपनयनं=हाथसे मस्तक डाढी मूछके बाल उपाड़ लेना। (गाथा २९ व्याख्या) यह केशलोंच करना खास जैनियोंकी क्रिया है।

अचेलकका लक्षण कहा है—

वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्ताइणा असंवरणं।
णिब्भूसण णिग्गंथं अचेलक्कं जगदि पूज्जं ॥ ३० ॥

भावार्थ–वस्त्र, चर्म, वल्क, पत्ते आदिसे शरीरको न ढकना, आभूषण न होना सो निर्ग्रन्थ अचेलक जगतपूज्य है।

स्थिति भोजन हाथमें करनेका स्वरूप है—

अंजलिपुडेण ठिचा कुड्डाइविवज्जणेण समपायं ।
पडिसुद्धे भूमितिये असणं ठिदिभोयणं णाम ॥ ३४ ॥

भावार्थ–अपने हाथोंसे खड़े होकर दीवालादिके सहारेको छोड़कर पैरोंको सम रखते हुए शुद्ध भूमिमें भोजन करना सो स्थितिभोजन है।

साधुके उद्देश्यसे किये भोजनका निषेध है। जैसे—

जावदियं उद्देसो पासंडोत्ति य हवे समुद्देसो ।
समणोत्ति य आदेसो णिग्गंथोत्ति य हवे समादेसो ॥७–६॥

भावार्थ-किसी साधु श्रमण या निर्ग्रन्थको उद्देश्य करके बनाया हुआ भोजन उद्दिष्ट है, उसे साधु नहीं लेते। ऐसा इसी अध्यायकी तीसरी गाथामें कहा है। गौतम बुद्धने ऐसा आहार नहीं लिया।

सात घरों तकका आहार लेने योग्य है।

उज्जु तिहिं सत्तहिं वा घरेहिं जदि आगदं तु आचिण्णं ।
परदो वा तेहिं भवे तव्विवरीदं अणाचिण्णं ॥ २०--६ ॥

भावार्थ–पंक्तिरूप तीन या सात घरोंसे लाया हुआ भोजन साधुको देनेपर ग्रहण योग्य है। उससे अधिकका लाया नहीं। ऐसा ही गौतम बुद्धने किया था, सात घर तकका ग्रास लिया था।

गर्भिणी स्त्रीके हाथका भोजन साधु नहीं लेते, गौतम बुद्धने भी नहीं लिया था। जैसा मूलाचारमें कहा है—

अतिबाला अतिवुड्ढा घासत्ती गब्भिणी व अंधलिया ।
अंतरिदा व णिसण्णा उच्चत्था अहव णीचत्था ॥ ५०--६ ॥

भावार्थ–अति बाला, अति वृद्धा, भोजन करती, गर्भिणी, अंधी, भीतकी आड़में बैठी हुई ऊँची या नीची बैठी हुईके हाथका भोजन साधु न लेवे।

नोट--गौतम बुद्धने खिड़कीसे या डिढ़ीसे भोजन नहीं लिया था तुसका मैला पानी गौतम बुद्धने नहीं लिया, उसीका निषेध मूलाचारमें किया है। जैसे—

तिलतंडुलउसणोदय चणोदय तुसोदयं अविद्धुत्थं ।
अण्णं तहाविहं वा अपरिणदं णेव गेण्हिज्जो ॥ ५८ ॥

भावार्थ–तिलका धोवन, तंदुलका धोवन, गर्म जल चनेका धोवन, तुसका धोवन जिसका वर्ण, गंध, रस, स्पर्शन बदला हो वह न लेवे, यदि वर्णादि बदल जावे तो लेवे ।

बच्चेको दूध पिलानेवालीके हाथका भोजन गौतम बुद्धने न लिया ऐसा ही निषेध मूलाचारजीमें है–

लेवणमज्जणकम्मं पियमाणं दारयं च णिक्खदिय ।
एवंविहादिया पुण दाणं जदि दिंति दायगा दोसा ॥ ९२–६ ॥

भावार्थ–लीपती हुईका, स्नान करती हुईका, बच्चेको दूध पिलाती हुई उसे छोड़कर दान देनेवालीका इत्यादिक दातारसे भोजन लेना दायक दोष है ।

मूलाचार अनगारभावना अधिकारमें साधु भोजनके लिये कहा है–

असणं जदि वा पाणं खज्जं भोजं च लिज्ज पेज्जं वा ।
पडिलेहिऊण सुद्धं भुंजंति पाणिपत्तेसु ॥ ९४ ॥

भावार्थ–भात आदि असन, दूध, जलादि पान, लड्डू आदि भोजनको देखकर शुद्ध हाथरूपी वर्तनमें साधु खाते हैं ।

इस तरह जैन पुस्तकोंसे सिद्ध है, जिस तरह गौतमने नग्नावस्थामें आचरण पाला ।

प्रथम ईसाकी शताब्दीमें सीलोनमें लिखा बौद्ध पाली साहित्यसे पता चलता है कि गौतम बुद्धने अपने घरसे निकलनेके पीछे ६ वर्ष बाद अर्थात् ३९ वर्षकी आयुमें मध्यम मार्ग चलाया ।

बुद्धचर्या पृ० २२ में संयुक्तनिकाय ९९ : २·१ विनय महावग्गसे दिया है–

" ऐसा मैंने सुना। एक समय भगवान् वाराणसीके ऋषिपतन मृगदावमें विहार करते थे। वहां भगवान्ने पंचम वर्गीय भिक्षुओंको संबोधित किया" भिक्षुओ! इन दो अंतोंको (अतियों) को प्रव्रजितोंको नहीं सेवन करना चाहिये! कौनसे दो (१) जो यह हीन, ग्राम्य, पृथग्जनोंके (योग्य), अनार्य (सेवित), अनर्थोंसे युक्त, कामवासनाओंमें काम लिप्त होना है, और (२) जो दुःख (भय), अनार्य (सेवित), अनर्थोंसे युक्त कायक्लेश (आत्म पीड़ा) में लगता है। भिक्षुओ! इन दोनों ही अंतोंमें न जाकर तथागतने मध्यम मार्ग खोज निकाला है (जोकि) आंख देनेवाला, ज्ञान करनेवाला, उपशमके लिये, अभिज्ञ होनेके लिये, सम्बोध (पूर्ण ज्ञान) के लिये निर्वाणके लिये है। वह कौनसा मध्यम मार्ग है–वह यही आर्य आष्टांगक मार्ग है। सम्यक्दृष्टि आदि।"

यह पहला भाषण बुद्धका हुआ है। इससे यह झलकता है कि शरीरके नग्न रहने आदिकी परीसहको कठिन समझकर अथवा अनावश्यकीय समझकर न बहुत कठिन न बहुत सरल ऐसा मध्यम मार्ग प्रचलित किया। जो एक जैनधर्मका नहीं माननेवाला है वह तो यही कहेगा कि जैनकी साधुचर्या कठिन व अनावश्यक पाकर गौतम बुद्धने उसमें सुधार किया और साधुको वस्त्र रखना ठहराया तब वह जैनधर्मी जो साधुके नग्न निर्ग्रंथ मार्गपर विश्वास रखता है और कहता है कि वह प्राकृतिक जीवन साधुके ध्यान सिद्धिके लिये आवश्यक है जिसपर श्री महावीरस्वामी व उनके पूर्वज तीर्थंकर व पीछे अनेक साधु चले थे। वह मात्र सहायक है। संक्लेशभाव पैदा करनेवाले तो वह तप योग्य नहीं है। जहां आनन्द मनसे प्राकृतिक जीवनमें रहकर तप किया जाता है वह साधुका निर्ग्रंथ मार्ग है। गौतमबुद्धने इस चर्याको कठिन समझा और मध्यम मार्ग जो श्रावकोंका व ब्रह्मचारी श्रावकोंका है उसका प्रचार गौतम बुद्धने किया।

दि० जैन शास्त्रानुसार ब्रह्मचारी सातवीं प्रतिमाधारी श्रावक जैसे वस्त्र दो तीन रखते हैं, निमंत्रणसे भोजन करते हैं, शयनासन पर सोते हैं, ठीक वह सब क्रिया प्रचलित की। वैसी ही क्रिया सीलोनके बौद्ध साधुओंमें आजकल देखनेमें आई। मध्यम मार्ग वहांतक जैन शास्त्रोंमें है जहांतक एक लंगोटी मात्र भी रखा जाता है। ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लक ऐलक निमन्त्रणसे भोजन नहीं करते हैं, वे भिक्षासे लेते हैं। क्षुल्लक एक खंड वस्त्र व १ लंगोटधारी होते हैं, ऐलक मात्र एक लंगोट रखते हैं। इस विवादग्रस्त बातको छोड़ दिया जाय कि गौतम बुद्धने नग्न मुनिकी चर्याको अनावश्यक समझा या कठिन समझा, जो कुछ भी समझा हो; पाली ग्रन्थोंसे सिद्ध होता है कि वस्त्र सहित साधुचर्याकी प्रवृत्ति चलाई गई। जैसी कि श्वेताम्बर जैनोंमें साधुओंकी प्रवृत्ति है। श्वेताम्बर जैन साधु यह जानते हैं कि निर्वाणके लिये साधन करनेमें वस्त्र त्याग आवश्यक नहीं है। शायद ऐसा ही समझकर गौतम बुद्धने सुगमचर्या बाहरी स्थापित की। बारह बजे पहले एक दफे खाना, रात्रिको न खाना, अकालमें न खाना ये सब जैन साधुचर्याके करीब २ बराबर है। हरे पत्ते न तोड़ना, वर्षामें एक स्थल रहना यह सब चर्या बराबर है। अंतरंग तत्वज्ञान तो जैन और बौद्धका बिल्कुल समान है, जैसा हम पहले अध्यायोंमें दिखला चुके हैं। केवल बाहरी साधु चारित्रमें दिगम्बर साधुओंकी अपेक्षा अंतर है। परन्तु श्वेताम्बर साधुओंके साथ बहुत कुछ साम्यता है। जैसे श्वेताम्बर साधु भिक्षापात्रमें भोजन लाकर खाते हैं वैसे बौद्ध साधु खाते हैं। बौद्ध साधु निमन्त्रणसे भी जाते हैं जैसा दिगम्बर जैन ब्रह्मचारी जाते हैं। श्वेताम्बर साधु निमन्त्रणसे नहीं जाते। बौद्ध साधु दिगम्बर जैन ब्रह्मचारियोंके समान वस्त्र, शय्या रखते व सवारीपर भी चढ़ते हैं। श्वेतांबर साधु सवारीपर नहीं चढ़ते हैं। ध्यान समाधिकी अपेक्षा जैन और बौद्धमें कोई भी अन्तर देखनेमें नहीं आता है।

जैन बौद्ध मंदिर, प्रतिमा और पूजा।

जैसी जैनोंकी मूर्ति ध्यानाकार होती है वैसे ही बौद्धोंकी मूर्ति ध्यानाकार होती है। दि० जैनोंकी मूर्ति खड्गासन व पद्मासन या अर्ध पद्मासन नग्न होती है, श्वेतांबर जैनोंकी लंगोट चिह्न सहित होती है जबकि बौद्धोंकी मूर्तिमें नीचे व ऊपर दोनों वस्त्रोंके चिह्न सहित होती हैं। आसन वैसे ही पद्मासन अर्द्धपद्मासन व कार्योत्सर्ग होता है, मात्र दोनों हाथ या तो दोनों जैन मूर्तिके समान एक हाथपर एक हाथ गोदीमें होता है या एक हाथ छातीमें लगा हुआ व एक हाथ जांघपर रक्खा हुआ या दोनों हाथ जांघपर रखे हुए व खडे आसनमें हाथ एक ऊपरको उठा हुआ उपदेश देते हुए होता है। एक विशेपता यह है कि बौद्धकी लेटे आसन भी मूर्ति बनती है जो निर्वाणकालकी कहलाती है। भारतमें एलोरा, अजंता, सांची, काशी, नासिक, बम्बई, तक्षिला आदिमें व सीलोनमें बौद्ध मंदिर व मूर्तियोंको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारतमें प्रायः पाषाणकी मूर्तियें ध्यानाकार पाई गईं जब कि सीलोनमें पाषाणकी व किसी पक्की मिट्टीकी बनी मूर्तियें देखनेमें आईं। सीलोनकी मूर्तियोंमें यह विशेषता है कि वहां जिस प्रकारके शरीरके अंगोंका रंग चाहिये वैसा रंग देकर बड़ी ही सुन्दर व शांत मूर्ति बनाते हैं। वैसी मूर्तियें भारतमें देखनेमें नहीं आईं। यहां जैन मूर्तियोंके समान एक ही पत्थरमें एक प्रकारके रंगकी मूर्ति देखनेमें आई। सीलोनमें बौद्धोंके प्राचीन मंदिर कंडी, अनुराधपुर, कोलम्बो, केलेनिया, दम्बलमें जो देखनेमें आए उनमें बहुत ही सुन्दर ध्यानाकार मूर्तियें हैं जो अपने वैराग्यसे चित्तको आकर्षण कर लेती हैं। उनके विराजमान करनेका तरीका जैनोंके समान उच्च वेदीपर है। भारतमें बौद्धोंको पूजा व वन्दना करते हुए सिवाय बनारसके कहीं देखा नहीं गया। परन्तु सीलोनमें देखा गया तो उनकी भक्ति व वन्दना बिलकुल जैनोंके समान होती है। उसी तरह दंडवत् करते व

वन्दना करते हैं, श्रुत पढ़ते हैं, पूजामें प्राय: पुष्पोंका व धूप देनेका व दीपक जलानेका व्यवहार करते हैं। सो भी प्रतिमाके आगे चढ़ाते हैं प्रतिमाके ऊपर नहीं। दि० जैनोंमें व श्वेतांबर जैनोंमें बहुत पूजाका दुरुपयोग होगया है जिससे बहुत लोग प्रतिमाको पुष्पादिसे ढक देते हैं। श्वेतांबर जैनोंमें तो मुकुट व आभूषण आदि पहनाकर और भी अधिक शृंगारित कर देते हैं। बौद्ध मूर्तियोंमें यह बात नहीं है। वहां बड़ी स्वच्छता रहती है। केवल अग्रभागमें ही पुष्प चढ़ते हैं। दिगम्बरोंमें उत्तर हिन्दुस्तानके जैनी जो अपनेको तेरहपंथी कहते हैं वे प्रतिमाको बिलकुल स्वच्छ रखते हैं, ऊपर फूलादि नहीं चढ़ाते हैं इससे वीतरागताका दर्शन बहुत अच्छा होता है। हमने सीलोनमें वैशाख सुदी १४ व जेठ सुदी १४ को दो मेले बुद्ध जन्म व अशोक पुत्र मिहिन्दके लंकागमनके देखे तब हजारों बौद्ध नर नारियोंको नंगे पैर बहुत विनयसे जैनियोंके समान यात्रा वन्दना करने पाया। स्त्रियोंमें कोई शृंगार नहीं। पवित्र सादगीसे वन्दना करनेको जाती पाई गई। उने लोगोंसे यदि कोई पूछता तो वे यही उत्तर देते कि हम वन्दनाको जा रहे हैं। जैनियोंमें जैसे मूर्तियोंको रोज स्नान करानेकी प्रथा है वैसी बौद्धोंमें देखनेमें नहीं आई। वे मूर्तियोंके आगे शीशा जड़ देते हैं, दूरसे दर्शन करते हैं, कभी २ स्वच्छ करते होंगे। गन्दगी मैलापन गीलापन उनके मंदिरोंमें देखनेको नहीं आया।

स्वयं उन्नति करनी होगी।

जैन और बौद्ध दोनोंका एक यह सिद्धांत है कि कोई परमात्मा ईश्वर हमें सुख दुख नहीं देसक्ता न मोक्ष भेज सक्ता है। आपही अपने पुरुषार्थसे अपनी मुक्ति होसक्ती है—

The doctrine of the Budha by grimm. में यही लिखा है।

Page-29 Liberation from suffering cannot be realized through any kind of grace especially not by the help of some

personal god, but exclusively by our own strength and by personal action.

भावार्थ-दुःखोंसे मुक्ति किसीकी कृपासे विशेषकर किसी खास ईश्वरकी कृपासे नहीं होसक्ती है। किंतु केवल अपने ही बल व अपने ही उद्योगसे होती है। जैसे जैन लोग केवल परिणामोंको उज्वल करनेके लिये अरहंत सिद्धोंकी व उनकी मूर्तियोंकी भक्ति करते हैं वैसा ही अभिप्राय बौद्ध मतका है। भावोंको उज्वल करनेके लिये ही भक्ति व स्तुति व बुद्ध मूर्तिकी पूजा है। जैन शास्त्रोंमें कहा है:—

(१) समाधिशतकमं।

नयत्यात्मानमात्मैव जन्मनिर्वाणमेव वा।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः॥ ७५॥

भावार्थ-यह आत्मा आप ही अपनेको चाहे संसारमें भ्रमण करावे चाहे निर्वाणमें लेजावे। इसलिये अपना गुरु निश्चयसे आप ही है, और कोई नहीं हैं।

(२) पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें—

सर्वविवर्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।
भवति तदा कृतकृत्यः सम्यक्पुरुषार्थसिद्धिमापन्नः॥ ११॥

भावार्थ-सर्व रागादि भावोंसे पार होकर जो कोई निश्चल अपने चैतन्य भावको प्राप्त करता है वही भलेप्रकार मुक्तिके पुरुषार्थकी सिद्धिको प्राप्त करता हुआ कृतकृत्य होजाता है।

(३) स्वयंभूस्तोत्र—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवांतवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः॥५७॥

भावार्थ-हे वीतराग! आपको हमारी पूजासे कोई प्रयोजन नहीं। और हे नाथ! आप वैर रहित हैं, आपकी निन्दा हम करें तो

भी आपको द्वेष नहीं। तौभी आपके पवित्र गुणोंका स्मरण हमारे चित्तको पापके मैलसे दूर रखता है।

सर्व स्कन्ध या बनी वस्तुएँ नाशवंत हैं।

जैन और बौद्ध दोनोंका यह सिद्धांत है कि जितने स्कन्ध हैं या बने पदार्थ हैं या जगतकी अवस्थाएं हैं वे सब क्षणिक हैं।

The doctrine of the Budha by Grimm.
Page-89. Impermanent are all the compound of existence. Painful are all the compound of existence.
(Theravad 277-279)

भावार्थ–सर्व जीवनके स्कन्ध क्षणिक हैं, सर्व जीवनके स्कन्ध दुःखरूप हैं।

बुद्धचर्या–पृ० ५४१ महापरिणिव्वाण सुत्त दी०नि० २-३ (१६)–

गौतम बुद्धके अन्तिम वाक्य।

हन्त! भिक्षुओ! अब तुम्हें कहता हूं। संस्कार (कृत वस्तु) व्ययधर्मा (नाशमान) हैं, अप्रमादके साथ (आलस न कर) (जीवनके लक्ष्यको) संपादन करो, यह तथागतका अन्तिम वचन है।

बुद्धचर्या–पृ० ५१८ चन्दसुत्त (सं० नि० ४५–२–३) साधु सारिपुत्रकी निर्वृत्तिको सुनकर गौतम बुद्ध कहते हैं–

"आनन्द–जो कुछ उत्पन्न (जाता है) हुआ है, (भूत) संस्कृत है वह सब नाश होनेवाला है। हाय! वह न नाश हो वह संभव नहीं है, इसलिये आनन्द! आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्य शरण होकर विहरो, धर्मद्वीप धर्मशरण, अनन्य शरण होकर विहरो।

जैन शास्त्र ज्ञानार्णवमें—

वस्तुजातमिदं मूढ प्रतिक्षणविनश्वरं।
जानन्नपि न जानासि ग्रहः कोऽयमनौषधः॥ १४–२॥

भावार्थ–हे मूढ ! इस जगतमें जो वस्तुओंका समूह उत्पन्न है वह क्षण २ में नाशवंत है ऐसा जानता हुआ भी तू क्यों अज्ञान है ? क्या कोई पिशाच है जिसकी कोई दवा नहीं है।

मनोज्ञविषयैः सार्द्धं संयोगाः स्वप्नसन्निभाः।
क्षणादेव क्षयं यान्ति वंचनोद्धतबुद्धयः ॥ ४०–२ ॥

भावार्थ–मनोज्ञ पदार्थोंके साथ संयोग सब स्वप्नके समान हैं। ये सब पदार्थ क्षणमें नष्ट होजाते हैं। ये ठगोंकी तरह किंचित् चमत्कार दिखानेवाले हैं।

धनमालानुकारीणि कुलानि च बलानि च।
राज्यालंकारवित्तानि कीर्तितानि महर्षिभिः ॥ ४१–२ ॥

भावार्थ–महान् ऋषियोंने जीवोंके कुल कुटुम्ब बल, राज्य, अलँकार, सम्पदा मेघ पटलके समान क्षणिक कहे हैं।

ये चात्र जगतीमध्ये पदार्थाश्चेतनेतराः।
ते ते मुनिभिरुद्दिष्टाः प्रतिक्षणविनश्वराः ॥ ४६–२ ॥

भावार्थ–इस जगतमें जो जो चेतन और अचेतन पदार्थ हैं उन्हें सब महर्षियोंने क्षणिक व विनाशीक कहा है। भावार्थ–पर्यायकी अपेक्षा सब विनाशीक हैं।

गगननगरकल्पं संगमं वल्लभानां।
जलदपटलतुल्यं यौवनं वा धनं वा ॥
सुजनसुतशरीरादीनी विद्युच्चलानि।
क्षणिकमिति समस्तं विद्धि संसारवृत्तम् ॥ ४७–२ ॥

भावार्थ–स्त्रियोंका संगम आकाशमें नगरके समान चंचल हैं। युवानी या धन मेघ पटल समान विला जानेवाला हैं। बंधु, पुत्र, शरीरादि विजलीवत् चंचल है। इस सर्व संसारके चरित्रको क्षणिक जानो।

जगत् अनादि अनंत है।

जैन और बौद्ध दोनोंका सिद्धांत है कि यह जगत् अनादि अनंत है तथा इसका कर्ता कोई ईश्वर परमात्मा नहीं है—

The Doctrine of the Budha by Grimm.

Page-90 Without beginning or end, ye monks, is this round of re-brith (samsara). There cannot be discerned a first beginning of beings, who, sunk in ignorance and bound by thirst ceaselessly transmigrating again & again run to a new birth. Five, in number, sariputra, are the fates they may befall after death; namely the passage into hell world, the animal kingdom, the realm of Preta, the world of men and the abodes of gods.

Page-94 Amoung these five fates ultimately only the last one, the abode in the heaven world, could be desirable. But according to the Budha, this one is just as much subject to the great law of transmigration as the abode in the four other ones.

Page-96 Running down birth to death, from death to birth, you have shed on this long way truly more tears than water is contained within the four great oceans.

Page-106 How can human in sight bear the thought of a God who ought to be the sum of infinite goodness, wisdom and power, creating beings whom he knows to be condemned in an overwhelming majority : to eternal damnation in a hell. What would we think of a father who would send his child into the world. Knowing for certain that it would later on commit " voluntarily " a crime that would be punished with life-long imprisonment. It is conceivable that the same god who orders men to overlook and to forgive every offence, acts himself in quite a different manner, inflicting eternal punishment even after death.

भावार्थ-ऐ भिक्षुओ ! यह संसार अनादि अनंत है, संसारी प्राणियोंका प्रथम आदि नहीं ढूंढ़ा जासक्ता। जो अविद्या और तृष्णामें फंसे हुए लगातार भ्रमण करते हुए बराबर नवीन जन्म धारते रहते हैं। ऐ सारिपुत्र ! पांच गति मरणके पीछे होसक्ती है। अर्थात् नर्क-गति, तिर्यचगति, प्रेत्यगति, मनुष्यगति व स्वर्गवासी देवगति।

इन पांच गतियोंमेंसे अंतिम स्वर्गगति मात्र अच्छी कही जासक्ती है। परन्तु गौतमबुद्धकी शिक्षाके अनुसार इस गतिवालेको भी पुनर्जन्म लेना होता है। जैसे अन्य चार गतिके जीव, जन्मसे मरण और मर-णसे जन्म लेते हुए तुमने, इस दीर्घ संसारमें वास्तवमें इतने आंसू बहाए हैं कि जिनका संग्रह चार महासमुद्रोंके जलसे भी अधिक है।

एक मानवकी बुद्धि ऐसे ईश्वरका ख्याल कैसे कर सक्ती है जो अनंत भलाई, बुद्धि व शक्तिका स्वामी होकर ऐसे प्राणियोंको अधि-कांश पेदा करे जिन्हें " दीर्घकालतक नरकमें डालना पड़े। हम ऐसे पिताका कैसे ख्याल कर सक्ते हैं कि जो अपने बच्चेको संसारमें भेजे और फिर उसको स्वयं ऐसा अपराध करने दे जिससे यह सदाके लिये कैदमें पड़ जावे। क्या यह खयालमें आ सकता है कि जो ईश्वर आदमियोंको आज्ञा दे कि उनका हरएक पाप क्षमा कर दिया जायगा, फिर स्वयं बिलकुल भिन्न रीतिसे व्यवहार करे कि मरणके बाद उसे सदाके लिये दण्डित करदें।

जैन सिद्धांतमें भी ऐसे ही वाक्य हैं कि जगत अनादि अनंत है व इसका कर्ता कोई ईश्वर नहीं है।

ज्ञानार्णवमें कहा है—

अनादिनिधनः सोऽयं स्वयं सिद्धोऽप्यनश्वरः।
अनीश्वरोऽपि जीवादिपदार्थैः संभृतो भृशम्॥ ४-११॥

भावार्थ—यह जगत अनादि अनन्त है, स्वयं सिद्ध है, अविनाशी है, इसका कोई ईश्वरकर्ता नहीं है। यह जीवादि पदार्थोंसे भरा है।

यत्रैते जन्तवः सर्वे नानागतिषु संस्थिताः।
उत्पद्यंते विपद्यंते कर्मपाशवशं गताः॥ ६–११॥

भावार्थ—इस जगतमें सर्व प्राणी नाना गतियोंमें रहते हैं, कर्म-जालसे बंधे हुए जन्मते व मरते हैं।

नोट—जैन सिद्धांतमें नरक, पशु, देव व मानव चारगति मानी हैं। प्रेत (व्यंतरादि) देवगतिमें गर्भित हैं। ये प्रेत असुर आदि अधो-लोकके भागमें रहते हैं।

मूलाचारमें कहते हैं—

लोओ अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिप्पण्णो।
जीवाजीवेहिं भुडो णिच्चो तालरुक्ख संठाणो॥२२।८॥

तत्थणु हवंति जीवा सकम्म णिव्वत्तियं सुहं दुक्खं।
जम्मण मरण पुणब्भवमशांतमवसायरे भीमे॥ २९॥

भावार्थ—यह लोक किसीका किया हुआ नहीं है अनादि अनंत है। स्वभावसे स्थित है जीव अजीवोंसे भरा है। सर्व काल रहनेवाला नित्य है। ताल वृक्षके आकार है। यहां जीव अपने २ कर्म द्वारा सुख दुःख जन्म मरण पुनर्भव अनुभव करते हैं यह संसार सागर भयानक व अनंत है।

स्याद्वादका सिद्धान्त।

प्राचीन पाली साहित्यके लेखोंमें स्याद्वादका सिद्धांत उसी तरह झलक रहा है जैसा कि जैन साहित्यमें एक पदार्थमें अनेक विरोधी स्वभाव भिन्न २ अपेक्षासे कहे जाते हैं, इसीलिये वस्तु अनेक स्वभाव-वाली अर्थात् अनेकांत है। जैसे एक मानव पिताकी अपेक्षा पुत्र है

तथा अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता है। अपने भतीजेकी अपेक्षा चाचा है, अपने चाचाकी अपेक्षा भतीजा है इसलिये एक मानवमें अनेक सम्बन्ध भिन्न २ अपेक्षासे एक ही समयमें रहते हैं परन्तु उनको एक साथ कहाजा नहीं सक्ता। जब एक बात कहेंगे तब दूसरी बात नहीं कह सकेंगे। इसलिये जब किसी बातको कहना तो यह बात किसी अपेक्षासे कही गई है, इस बातको सूचित करनेवाला स्यात् या कथंचित् या किसी अपेक्षासे from some point of View शब्द है। वादके अर्थ कहनेके हैं। स्याद्वादके अर्थ किसी अपेक्षासे कहनेके हैं। एक जीव मनुष्य था, मरकर घोड़ा पैदा हुआ। यहां उस घोड़ेका जीव वही है जो मनुष्य था तथा घोड़ेका जीव दूसरा है, मनुष्यका जीव दूसरा था। दोनों बात विरोधरूप हैं, परन्तु दोनों बातें भिन्न२ अपेक्षासे ठीक हैं।

यदि मूल द्रव्यकी अपेक्षा देखा जावे तो जो मानवका जीव था वही घोड़ेका जीव है। यदि अवस्थाके पलटनेकी अपेक्षा देखा जावे तो मानवके जीवकी अवस्था दूसरी थी, घोड़ेके जीवकी अवस्था दूसरी है। इसलिये हम कहेंगे कि किसी अपेक्षा दोनों एक हैं, अन्य किसी अपेक्षासे दोनों भिन्न२ हैं।

इसी ही प्रकारका सिद्धांत बौद्ध पुस्तकोंसे प्रगट है–

The doctrine of Budha by George grimm.

Page–104 There a reasonable man reflects thus; if some of these dear recluses and Brahmans teach personal continuance, I cannot see it and if other dear recluses and Brahmans teach there is no personal duration, neither do I perceive this. But if, without having seen or perceived it, I now decide in favour of one of these doctrines, and say:–This one is only true and the other teaching is foolish; then this would not be well done. For we may easily trust to something

-that is hallow and empty aud wrong, and we may fail to trust to scmething that is right and true and real. And thus who seeks for truth, if he is a reasonable man, will not draw readily the one-sided conclusion. Only this opinion is true, and the other opinion is foolish, bnt to gain in sight into these statements, it is of importance to regard their content.

(M. I. P. 41 II. P. 270)

भावार्थ–एक बुद्धिमान मानव इस तरह विचार करता है। "यदि कोई प्रिय साधु और ब्राह्मण यह शिक्षादें कि यही प्राणी बराबर बना रहता है तो मैं ऐसा नहीं देखता हूं और यदि प्रिय साधु और ब्राह्मण यह शिक्षादें कि वह प्राणी बना नहीं रहता है न मैं इस बातको देखता हूं। परन्तु यदि विना इस बातको विचार किये हुए मैं इनमें सिद्धांतोंमेंसे किसी एकके लिये निश्चय करदूं और कहूं कि यही एक बात सच है और दूसरी शिक्षा गलत है तब यह ठीक नहीं होगा। क्योंकि इससे हम सहजमें ऐसी किसी बातका विश्वास कर लेंगे जो शून्य व गलत है और उस बातके विश्वास करनेमें भूल जायगे जो ठीक, सत्य व असली है। इसलिये जो सत्यका खोजी है और प्रज्ञावान पुरुष है वह जल्दीसे एक तरफी फैसला नहीं करेगा कि वही बात सच है व दूसरी बात मिथ्या है, परन्तु इन दोनों वचनोंका भाव समझनेके लिये यह आवश्यक है कि उनके भीतरी मतलबको समझें।

जैनाचार्य कुंदकुन्दस्वामीने पंचास्तिकायमें यही बात दिखलाई है–

मणुसत्तणेण णट्ठो देहीदेवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्तजीव भावो ण णस्सदि ण जायदे पुण्णो ॥ १७ ॥

भावार्थ–यह देही प्राणी मनुष्यपनेकी अपेक्षा नष्ट हुआ तथा देव या अन्य कोई पैदा होगया। इसलिये अन्य ही मरा, अन्य ही

उत्पन्न हुआ परन्तु दोनों पर्यायोंमें जीव भावकी अपेक्षा न कोई नष्ट हुआ, न पैदा हुआ—जीव वही है।

भावार्थ—किसी अपेक्षा वही जीव है, किसी अपेक्षा दूसरा है।

साधु परीषह सहते हैं।

जैसे जैन साधु परीषह सहते हैं वैसे बौद्ध साधुओंके लिये भी परीषह सहनेकी बात बौद्ध साहित्यमें है:—

The doctrine of the Budha by George Grimm.

Page-326 This is a monk who bears cold and heat, hunger and thirst, wind and rain, mosquitoes wasps and vexing crewling blings is malicious and spiteful words painful feelings of the body striking him, violent cutting, piercing, disagreeable, tedious, life endangering, he patiently endures. He is entirely free from greed, hate and delusion, disjoined from misconduct, sacrifice and gifts, service and greetings he deserves as the holiest state in the world. Those who cause me pain and those who cause me pleasure, towards all of them I behave in the same way; affection or hate I know not, in joy and sorrow I ramain unmoved; in honor and dishonor, everywhere I am the same. This is the perfection of my equanimity (Charujapitak III 15)

भावार्थ—यही साधु है जो शीत, उष्ण, भूख, प्यास, हवा, वर्षा, दंशमशक व कष्टदायक कीड़ोंकी बाधा, दुर्वचन व कठोर वचन, शरीरपर कष्ट व वध व शरीरका काटा जाना, छेदा जाना, जीवन भयकारी कष्टोंको समताभावसे सहता है। वह रागद्वेष मोहसे बिलकुल अलग रहता है। असद् आचरणसे जुदा रहता है। अपनी बलि व दान सेवा व प्रसन्नताको वह दुनियांमें पवित्र दशा समझता है, जो मुझे कष्ट देते हैं व जो मुझे सुख देते हैं उन सबके ऊपर मैं समभाव रखता हूं। मैं रागद्वेषको नहीं अनुभव करता हूं। हर्ष व विषादमें

क्षोभित नहीं होता हूं। प्रतिष्ठा व अप्रतिष्ठामें हरजगह मैं समान हूं। यही मेरे साम्यभावकी पूर्णता है। इसी तरह जैन साधुको बाइस परीषहको समताभावसे जीतनेकी आज्ञा हैं।

देखो तत्वार्थसूत्र—

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥ ८–९ ॥

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयांचालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानाऽदर्शनानि॥९–९॥

भावार्थ–रत्नत्रय मार्गसे न गिरनेके लिये व कर्मोंकी निर्जराके लिये परीषह सहन करना चाहिये। वे २२ हैं–१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डांस मच्छर, ६ नग्नता, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चलनेकी, १० बैठनेकी, ११ सोनेकी, १२ गाली, १३ वध, १४ याचना १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान, २२ अदर्शन।

जैन साधु भी समभावधारी होता है।

सारसमुच्चयमें कहा है—

निन्दास्तुतिसमं धीरं शरीरेपि च निस्पृहं।
जितेंद्रियं जितक्रोधं जितलोभमहाभटं ॥ २०५ ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तं सिद्धिसंगमनोत्सुकम्।
ज्ञानभ्यासरतं नित्यं नित्यं च प्रशमे स्थितं ॥२०६॥
एवं विधं हि यो दृष्ट्वा स्वगृहांगणमागतं।
मात्सर्यं कुरुते मोहात् क्रिया तस्य न विद्यते ॥२०७॥
समः शत्रौ च मित्रे च समो मानापमानयोः।
लाभालाभे समो नित्यं लोष्ठकांचनयोस्तथा ॥२२०॥

सम्यत्त्वभावनाशुद्ध ज्ञानसेवापरायणं ।
चारित्राचरणासक्तमक्षीणसुखकांक्षिणं ॥ २२१ ॥
ईदृशं श्रमणं दृष्ट्वा यो न मन्येत दुष्टधीः ।
नृजन्म निष्फलं सारं संहारयति सर्वथा ॥ २२२ ॥

भावार्थ–जो साधु निन्दा व स्तुतिमें समान धीर हैं, शरीरमें भी इच्छा रहित हैं, इंद्रियोंके विजयी हैं, क्रोधको जीतनेवाले हैं, लोभ महाभटके वशकर्ता हैं, रागद्वेषसे रहित हैं। मोक्षकी प्राप्तिके उत्सुक हैं, नित्य ज्ञानाभ्यासमें रत हैं, नित्य शांत भावमें स्थिर हैं, ऐसे साधुको अपने घरके आंगनमें आते हुए देखकर जो गृहस्थ मोहके कारण आदर नहीं करता है वह क्रियाहीन है। साधु शत्रु व मित्रमें समान हैं, मान अपमानमें समान हैं, लाभ अलाभमें तथा सुवर्ण व कंकडको देखनेमें नित्य समभावधारी हैं। जिनके सम्यग्दर्शनकी भावनामें शुद्धता है, जो ज्ञानकी सेवामें लीन हैं, चारित्रके आचरणमें आसक्त हैं, अविनाशी सुखके प्रेमी हैं, ऐसे श्रमणको देखकर जो आदर नहीं करता है वह अपने सारे मानव जन्मको निष्फल करता हुआ नाश करता है।

गृहस्थीको निर्वाण नहीं।

जबतक गृहत्याग कर साधु हो ध्यानका अभ्यास न करे तबतक निर्वाणका लाभ नहीं होसक्ता। संसारके दुःखोंका अंत नहीं होसक्ता। यही बात दिगम्बर जैन शास्त्रोंमें है व यही बौद्ध शास्त्रोंमें है—

The doctrine of the Budha by George Grimm.

Page–399 There is no house-holder whatever, O Pach-ha, who, not having left off household ties, upon the dissolution of the body, makes an end of suffering (M. I. P. 483)

Page 416 Cramped and confined is household life, a den of dirt. But the homeless life is as the open air of heaven. It is hard to live the holy life in all its perfection and purity while bound to home. Let me go. forth to homelessness.

(M. I. P. 267.)

भावार्थ--ऐ वच्छ ! ऐसा कोई गृहस्थ नहीं है जो विना गृहस्थके वचनोंको तोड़े शरीरके वियोगपर दुःखोंका अन्त कर सके।

गृहस्थका जीवन अपवित्रताका घर है, आकुलित व बन्धन है परन्तु गृहरहित जीवन स्वर्गका, खुली हवाका मैदान है, पूर्णता व पवित्रताके साथ घरमें जीवन विताना कठिन है। इसलिये मुझे घर त्याग करना चाहिये।

जैन शास्त्र ज्ञानार्णवमें कहा है—

न प्रमादजयं कर्तुं धीधनैरपि पार्यते ।
महाव्यसनसंकीर्णे गृहवासेऽतिनिन्दिते ॥ ९ ॥
शक्यते न वशीकर्तुं गृहिभिश्चपलं मनः ।
अतश्चित्तप्रशान्त्यर्थं सद्भिस्त्यक्ता गृहे स्थितिः ॥ १०--४ ॥

भावार्थ--अनेक दुःखोंसे भरे हुए, अति निन्दनीक गृहके वासमें बुद्धिमानोंके द्वारा भी प्रमाद नहीं जीता जासक्ता है। गृहस्थी चंचल मनको वश नहीं कर सकता। इसलिये चित्तकी शांतिके लिये सत्पुरुषोंने घरेका वास त्यागा है।

साधुको एकांतमें ध्यान करना चाहिये।

The doctrine of the Budha by George Grimm.

Page-350 Whoso once has experienced this state within himself, is lost to the turmoil of the world, even if he again

awakes to it. His mind inclines to solitude, bends towards solitude, sinks itself in solitude. To him this is highest blessedness (M. I. P. 306)

भावार्थ—जिसने एक दफे अपने भीतर इस अवस्थाका अनुभव किया है वह संसारके प्रपंचसे दूर होजाता है। यदि वह कभी संसारकी तरफ फिर आता है उसका मन एकांतकी तरफ जाता है, वह एकांतमें लीन होजाता है। यही उच्चतम सुखकी अवस्था है।

Sacred book of the East vol x.
Dhammapada Ch. XXI.

Page-305 He alone who, without ceasing, practices the duty of sitting alone, sleeping alone, he subdues himself, will rejoice in the destruction of all desires alone, as if living in a forest.

भावार्थ—वही अकेला जो लगातार एकांतमें बैठनेका और एकांतमें सोनेका अभ्यास करता है अपनेको जीत लेता है। वह सब इच्छाओंके नाशमें ही एकांतमें आनंद मानेगा। मानों वह एक वनमें रहता है। जैन शास्त्रमें भी एकांतकी महिमा बताई है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

अभवच्चित्तविक्षेप एकांते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥३६॥

भावार्थ—जहां चित्तको कोई आकुलता न हो ऐसे एकांतमें तत्वमें ठहरा हुआ योगी आलस्य छोड़कर अपने आत्माके तत्वका अभ्यास करे।

ज्ञानार्णवमें कहा है:—

रागादिवागुराजालं निकृत्याचिन्त्यविक्रमः।
स्थानमाश्रयते धन्यो विविक्तं ध्यानसिद्धये ॥२०-२७॥

भावार्थ--अपूर्व पराक्रमधारी महाभाग्य साधु रागादिकी फांसीके जालको काटकर ध्यानकी सिद्धिके लिये निर्जनस्थानमें वसता है।

नोट--जिनको सत्य जानना हो उनको उचित है कि जैन और बौद्धोंके प्राचीन ग्रन्थ पढ़ें। मुझे विश्वास है कि उनकी यह धारणा होजायगी कि दोनोंका तत्वज्ञान एकसा है। जो संसारके दुःखोंसे छूटना चाहे वह चाहे बौद्धोंका अष्टांग मार्ग चाहे जैनका रत्नत्रय मार्ग धारण करे। दोनोंका प्रयोजन यही है कि आत्माके बलपर खड़े होकर दृढ़ श्रद्धा व ज्ञानके साथ आत्मध्यानका अभ्यास किया जावे जिससे निर्वाणकी प्राप्ति हो। जैन और बौद्धोंको परस्पर एक दूसरेके ग्रन्थ पढ़कर मित्रता रखनी चाहिये और यही विचारना चाहिये कि दोनोंका तत्वज्ञान एक ही श्रोतसे उत्पन्न हुआ है।

ऐतिहासिक खोजपूर्ण

ग्रन्थ।

भगवान महावीर	२)
भ० महावीर व महात्मा बुद्ध	१॥)
भ० पार्श्वनाथ	२॥)
संक्षिप्त जैनइतिहास प्र० भाग	॥≡)
,, ,, दूसरा भाग	२॥।=)
दिगंबरत्व और दिगंबर मुनि	१)

मैनेजर,

दिगंबर जैन पुस्तकालय,

कापड़ियाभवन—सूरत।